मूल्य 200 रुपए
ISSN 2582-4481

वर्ष : 42
अंक : 1

जनवरी - मार्च 2021

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

मीडिया विशेषांक-1

श्री नरेन्द्र मोदी
प्रधानमंत्री

मध्यप्रदेश शासन

उन्नत सिंचाई सुविधाओं से आत्मनिर्भर बनते किसान

श्री शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री

मध्यप्रदेश ने सिंचाई सुविधाओं के विस्तार में अभूतपूर्व उपलब्धियाँ हासिल की हैं। बेहतर प्रबंधन एवं स्मार्ट तरीके से सिंचाई परियोजनाओं को जमीन पर उतारने का परिणाम है कि प्रदेश में अधिक-से-अधिक क्षेत्र में सिंचाई के लिए पानी की उपलब्धता सुनिश्चित हो रही है। मध्यप्रदेश सरकार द्वारा सिंचाई की उन्नत सुविधाओं के निर्माण से कृषि उत्पादन में बढ़ोतरी कर किसानों की आय बढ़ाने के हरसंभव प्रयास सुनिश्चित किये जा रहे हैं।

"उन्नत सिंचाई सुविधाओं का विकास सुनिश्चित करने में मध्यप्रदेश तेजी से आगे बढ़ रहा है। कृषि उत्पादन को बढ़ाकर किसानों की आय में वृद्धि के लिए हर खेत को सिंचित बनाना हमारी सर्वोच्च प्राथमिकताओं में है।"

- शिवराज सिंह चौहान

उपलब्धियाँ अब तक

- वर्ष 2020 तक कुल 40.27 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई सुविधाएं विकसित।
- प्रदेश में 19 वृहद, 97 मध्यम एवं 5344 लघु सिंचाई योजनाओं का कार्य पूर्ण।
- 27 वृहद, 47 मध्यम एवं 287 लघु सिंचाई योजनाएं निर्माणाधीन।
- अगले 5 सालों में 65 लाख हेक्टेयर में सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराने का लक्ष्य।

निर्माणाधीन प्रमुख वृहद परियोजनाएं

- **मोहनपुरा परियोजना-** राजगढ़ जिले के 1,45,661 हेक्टेयर क्षेत्र में होगी सिंचाई, 800 गांव होंगे लाभान्वित।
  लागत- ₹ 3866.34 करोड़
- **बाणसागर परियोजना-** टीका, सीधी, शहडोल, सतना जिलों के 2,91,620 हेक्टेयर क्षेत्र में होगी सिंचाई, 2695 गांव होंगे लाभान्वित।
  लागत- ₹ 3858.73 करोड़
- **कुण्डलिया परियोजना-** राजगढ़ जिले के 1,39,599 हेक्टेयर क्षेत्र में होगी सिंचाई, 800 गांव होंगे लाभान्वित।
  लागत- ₹ 3448 करोड़
- **बीना संयुक्त सिंचाई एवं बहुउद्देशीय परियोजना-** सागर एवं विदिशा जिले के 90,000 हेक्टेयर क्षेत्र में होगी सिंचाई, 305 गांव होंगे लाभान्वित।
  लागत- ₹ 3255.31 करोड़
- **बण्डा परियोजना-** सागर जिले के 80,000 हेक्टेयर क्षेत्र में होगी सिंचाई, 332 गांव होंगे लाभान्वित।
  लागत- ₹ 2610.54 करोड़
- **पेंच व्यपवर्तन परियोजना-** सिवनी, छिंदवाड़ा जिले के 1,26,400 हेक्टेयर क्षेत्र में होगी सिंचाई, 410 गांव होंगे लाभान्वित।
  लागत- ₹ 2544.57 करोड़
- **लोअर ओर परियोजना-** शिवपुरी जिले के 1,19,535 हेक्टेयर क्षेत्र में होगी सिंचाई, 222 गांव होंगे लाभान्वित।
  लागत- ₹ 2208.03 करो
- **पार्वती वृहद परियोजना-** राजगढ़, सीहोर और भोपाल जिलों के 48,000 हेक्टेयर क्षेत्र में होगी सिंचाई, 157 गांव होंगे लाभान्वित।
  लागत- ₹ 1815.54 करोड़
- **बाणसुजारा परियोजना-** टीकमगढ़ जिले के 75,000 हेक्टेयर क्षेत्र में होगी सिंचाई, 183 गांव होंगे लाभान्वित।
  लागत- ₹ 1768.50 करोड़
- **क्षामगढ़ सुवासरा सूक्ष्म सिंचाई परियोजना-** मंदसौर जिले के 85,117 हेक्टेयर क्षेत्र में होगी सिंचाई, 226 गांव होंगे लाभान्वित।
  लागत- ₹ 1662.47 करोड़
- **सुठालिया सिंचाई परियोजना -** राजगढ़ जिले के 49,800 हेक्टेयर क्षेत्र में होगी सिंचाई, 220 गांव होंगे लाभान्वित।
  लागत- ₹ 1375.24 करोड़
- **गठोठ सूक्ष्म सिंचाई परियोजना-** मंदसौर जिले के 21,400 हेक्टेयर क्षेत्र में होगी सिंचाई, 62 गांव होंगे लाभान्वित।
  लागत- ₹ 360.20 करोड़

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना

में मंडला, डिंडोरी, शहडोल, उमरिया एवं सिंगरौली जिलों में ₹ 1707 करोड़ की लागत से 24,364 भू-जल संरचनाओं के निर्माण से सीमांत एवं लघु किसानों की 62,133 हेक्टेयर भूमि में सिंचाई

आत्मनिर्भर मध्यप्रदेश रोडमैप के लक्ष्य

- आगामी तीन वर्षों में नर्मदा जल का पूर्ण उपयोग सुनिश्चित करने के लिए राशि ₹ 15,000 करोड़ की व्यवस्था।
- अगले एक वर्ष में प्राथमिकता के आधार पर तीन नर्मदा नदी परियोजनाओं को पूर्ण करने के लिए ₹ 4000 करोड़ की अग्रिम राशि की व्यवस्था।
- आगामी एक वर्ष में ₹ 30,000 करोड़ की राशि के कार्यों को प्रारंभ करना।

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

उन्नत सिंचाई-समृद्ध किसान-आत्मनिर्भर मध्यप्रदेश

आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2020

₹ 200/-

अतिथि संपादक
श्री अच्युतानंद मिश्र

संपादक मंडल
श्री राम बहादुर राय
श्री अच्युतानंद मिश्र
श्री बलबीर पुंज
श्री अतुल जैन
डॉ. भारत दहिया
श्री इष्ट देव सांकृत्यायन

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

वर्ष : 42, अंक : 1 **जनवरी-मार्च 2021**

गणतंत्र दिवस पर

मीडिया विशेषांक -1

संपादक
डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

प्रबंध संपादक
श्री अरविंद सिंह
+91-9868550000
arvindvnsingh@gmail.com

सज्जा
श्री नितिन पंवार
nitin_panwar@yahoo.in

मुद्रण
कुमार ऑफसेट प्रिंटर्स
381, पटपड़गंज औद्योगिक क्षेत्र,
दिल्ली-110092

प्रकाशक
एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली–110002
दूरभाष : 011–23210074
ईमेलः manthanmagzin@gmail.com, ekatmrdfih@gmail.com
Website: www.manthandigital.com

अनुक्रम

1.	लेखकों का परिचय		03
2.	संपादकीय		04
3.	पत्र		05
4.	भारत में मीडिया और लोकतंत्र	अशोक कुमार टंडन	06
5.	ब्रिटिश साम्राज्य एवं भारतीय पत्रकारिता	अच्युतानंद मिश्र - मनीषचंद्र शुक्ल	15
6.	समाचार की आत्मा तो बचानी ही होगी	जवाहरलाल कौल	24
7.	सोशल मीडिया : इकतरफा आख्यानों का अंत	इष्ट देव सांकृत्यायन	31
8.	भाषा संवर्द्धन में हिंदी पत्रकारिता की भूमिका	कुमुद शर्मा	40
9.	आपातकाल की पत्रकारिता	प्रो. अरुण कुमार भगत	45
10.	भारतीय प्रिंट मीडिया : उपलब्धियाँ और चुनौतियाँ	विजय क्रान्ति	56
11.	भारतीय मीडिया का भविष्य सोशल और डिजिटल ही है	सिद्धार्थ ज़राबी	63
12.	पत्रकारिता का मेरुदंड आंचलिक पत्रकारिता	विजयदत्त श्रीधर	69
13.	पत्रकारिता शिक्षा के अग्रदूत पी.पी. सिंह	डॉ. संतोष कुमार तिवारी	74
14.	भूमंडलीकरण के दौर में भाषाई मीडिया	उमेश चतुर्वेदी	78

आनुषंगिक आलेख

1.	प्रजातांत्रिक संस्थाओं की जननी भारत	07
2.	रूस का विवादास्पद कानून	08
3.	अमेरिका का मैग्ना कार्टा	12
4.	ब्रिटेन में प्रेस	14
5.	सर्वोच्च न्यायालय के विचार	23
6.	सोशल मीडिया की लत	39
7.	भारत में इंटरनेट और मोबाइल फोन के 25 वर्ष	66

लेखकों का परिचय

अच्युतानंद मिश्र उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले में 6 मार्च 1937 को जन्मे अच्युतानंद मिश्र की गिनती देश के लब्धप्रतिष्ठ पत्रकारों में होती है। एक महत्वपूर्ण संपादक, पत्रकार, लेखक और शिक्षाविद होने के अलावा वह पत्रकार संगठनों के अगुआ और सामाजिक कार्यकर्ता भी रहे हैं। आपने पत्रकारिता की शुरुआत पांचजन्य से की तथा बाद में अमर उजाला, लोकमत समाचार, जनसत्ता और नवभारत टाइम्स आदि प्रतिष्ठित समाचार पत्रों के संपादक रहे। माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय के संस्थापक कुलपति के रूप में आपके योगदान स्मरणीय हैं। संपर्क: mailtoachytanand@gmail.com

अशोक कुमार टंडन वरिष्ठ पत्रकार, स्तंभकार एवं राजनीतिक टिप्पणीकार अशोक कुमार टंडन को सक्रिय पत्रकारिता एवं मीडिया अध्यापन का करीब पाँच दशकों का अनुभव है। दिल्ली विश्वविद्यालय से राजनीति विज्ञान में स्नातक उपाधि के बाद विभिन्न मीडिया संस्थानों में कार्य करते हुए आप लंदन में पीटीआइ के ब्यूरो प्रमुख एवं कूटनीतिक संपादक भी रहे। आप माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के अलावा आप प्रेस काउंसिल, एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया, प्रेस एसोसिएशन और इंडिया इंटरनेशनल सेंटर के सदस्य भी रहे हैं। संप्रति आप प्रसार भारती बोर्ड के सदस्य हैं। संपर्क: ashokkumar.tandon@gmail.com

जवाहरलाल कौल पद्मश्री से सम्मानित। पत्रकारिता का आरंभ 1964 में 'हिंदुस्तान समाचार' से। जनसत्ता से वरिष्ठ सहायक संपादक के तौर पर सेवानिवृत्त। बिड़ला फेलोशिप के अंतर्गत 'हिंदी पत्रकारिता का बाजार भाव' पुस्तक लिखी। जम्मू-कश्मीर अध्ययन केंद्र के अध्यक्ष। संपर्क: kauljawaharlal@gmail.com

इष्ट देव सांकृत्यायन वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक। एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान से संबद्ध। कुछ कृतियों का लेखन एवं अनुवाद। संपर्क : idsankrityaayan@gmail.com

कुमुद शर्मा दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन। साहित्य सृजन के लिए कई पुरस्कारों एवं सम्मानों से अलंकृत। हिंदी के निर्माता, भूमंडलीकरण और मीडिया, स्त्रीघोष, विज्ञापन की दुनिया, गाँव के मन से रू-ब- रू, नई कविता में राष्ट्रीय चेतना, अमृतपुत्र, 1000 हिंदी साहित्य प्रश्नोत्तरी और काव्य मंजरी आदि प्रमुख पुस्तकें। सन् 1979 से ही राष्ट्रीय स्तर की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखन। सन् 1996 से 2004 तक साहित्यिक पत्रिका 'साहित्य अमृत' की संयुक्त संपादक। दूरदर्शन एवं आकाशवाणी पर साहित्यिक कार्यक्रमों की प्रस्तुति।

प्रो. अरुण कुमार भगत हिंदी साहित्य और पत्रकारिता के सुपरिचित हस्ताक्षर प्रोफेसर अरुण कुमार भगत को पत्रकारिता के क्षेत्र में सुदीर्घ अनुभव है। माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के नोएडा परिसर में 14 वर्षों तक अध्यापन के बाद वह नेहरू मेमोरियल म्यूजियम ऐंड लाइब्रेरी, दिल्ली में अटल बिहारी वाजपेयी अध्येता भी रहे हैं। संप्रति, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय,मोतिहारी में मीडिया अध्ययन विभाग के अध्यक्ष और अधिष्ठाता हैं। अब तक आपके द्वारा लिखित और संपादित कुल 24 पुस्तकें प्रकाशित हैं। वह पैनल डिस्कशन के लिए सुदर्शन न्यूज, एबीपी न्यूज, लोकसभा टीवी इत्यादि चैनलों पर भी नियमित रूप से जाते रहे हैं। साहित्य और समालोचना के क्षेत्र में प्रो. भगत की उल्लेखनीय सेवा-साधना के लिए उन्हें राष्ट्रधर्म पत्रिका, लखनऊ से राष्ट्रधर्म गौरव सम्मान : 2016 से अलंकृत किया गया। सन 2018 में उत्तर प्रदेश भाषा संस्थान, लखनऊ ने उत्तर प्रदेश स्थापना दिवस के अवसर पर आपको 'भाषा मित्र सम्मान' 2018 से अलंकृत किया। संपर्क: arunkumarbhagat174@gmail.com

विजय क्रान्ति वरिष्ठ भारतीय पत्रकार, तिब्बतविद और कुशल छायाकार हैं। पिछले करीब पांच दशकों से वे कई प्रतिष्ठित भारतीय और अंतरराष्ट्रीय मीडिया समूहों में कार्य कर चुके हैं। चीन अधिकृत तिब्बत के भीतर निर्वासित तिब्बती समुदाय और जनजीवन की उनकी 47 वर्षों की फोटोग्राफी तिब्बत पर फोटोग्राफी संबंधी एक व्यक्ति का सबसे बड़ा कार्य है।

सिद्धार्थ ज़राबी सुविख्यात मीडियाकर्मी परिणाम केंद्रित एवं निर्णायक नेतृत्व के लिए जाना जाता है। दो दशकों के बहुआयामी अनुभव के साथ-साथ सिद्धार्थ जी का पाठ्य एवं दृश्य श्रव्य सामग्री के सृजन तथा नवाचार के मामले में भारतीय एवं वैश्विक मीडिया प्रतिष्ठानों में अत्यंत सफल रिकार्ड रहा है। तकनीक की शक्ति के साथ-साथ सामग्री सृजन एवं उपभोग पर भी इसके प्रभाव में आपका दृढ़ विश्वास है तथा भारतीय समाज, राजनीति और अर्थव्यवस्था की गहरी समझ के कारण भारत की नब्ज पर आपकी बहुत अच्छी पकड़ मानी जाती है।

विजयदत्त श्रीधर पत्रकारिता इतिहास के गंभीर अध्येता हैं। माधवराव सप्रे स्मृति समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल की स्थापना, पत्रकारिता विषयक शोध एवं इतिहास प्रलेखन के प्रामाणिक प्रयत्नों तथा सामाजिक सरोकारों की पत्रकारिता के लिए वर्ष 2012 में भारत सरकार द्वारा पद्मश्री अलंकरण से सम्मानित। 'भारतीय पत्रकारिता कोश' महत्वपूर्ण कृति। 'पहला संपादकीय' को भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने भारतेन्दु हरिश्चंद्र पुरस्कार (वर्ष 2011) से सम्मानित किया। 'मध्यप्रदेश में पत्रकारिता: उद्भव और विकास' और 'चौथा पड़ाव' आपकी बहुपठित पुस्तक है। शिक्षा एवं शोध में असाधारण अवदान के लिए स्वराज संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के महर्षि वेद व्यास राष्ट्रीय सम्मान (वर्ष 2012-2013) से सम्मानित किया गया। छत्तीसगढ़ सरकार ने 'माधवराव सप्रे राष्ट्रीय रचनात्मकता सम्मान' (2015) से सम्मानित किया है। सितंबर 1981 से पत्रकारिता, जनसंचार और विज्ञान संचार की शोध पत्रिका 'आंचलिक पत्रकार' का संपादन कर रहे हैं।
संपर्क: editor.anchalikpatrakar@gmail.com

डॉ. संतोष कुमार तिवारी लखनऊ विश्वविद्यालय से एमएससी एवं एलएलएम तथा ब्रिटेन की कार्डिफ यूनिवर्सिटी से पत्रकारिता में पीएचडी डॉ. संतोष कुमार तिवारी झारखंड केंद्रीय विश्वविद्यालय के जनसंचार विभाग से अवकाश प्राप्त प्रोफेसर हैं। इसके पूर्व वह वडोदरा स्थित महाराज सयाजीराव बड़ोदा विश्वविद्यालय तथा उसके भी पूर्व सिलचर स्थित असम केंद्रीय विश्वविद्यालय में जनसंचार के आचार्य रह चुके हैं। इसके पूर्व दो दशक तक वे पत्रकारिता में सक्रिय रहे और टाइम्स ऑफ इंडिया, अमृत बाजार तथा दैनिक जागरण समूह को अपनी सेवाएँ दीं। उन्हें दो ब्रिटिश और एक केनेडियन स्कॉलरशिप भी मिली। 'अ स्टडी ऑफ फ्री स्पीच वर्सस हेट स्पीच' संतोष जी की बहुचर्चित शोधकृति है।
संपर्क: santoshtewari2@gmail.com

उमेश चतुर्वेदी आकाशवाणी के समाचार प्रभाग में मीडिया कंसल्टेंट उमेश चतुर्वेदी को अखबार, टेलीविजन, रेडियो और इंटरनेट आदि जनसंचार की सभी विधाओं में कार्य का अनुभव है। 'बाजारवाद के दौर में मीडिया' और 'दिनमान का मोनोग्राफ' उनकी चर्चित कृतियाँ हैं। उमेश जी भारतीय जनसंचार संस्थान सहित कई विश्वविद्यालयों में विजिटिंग फैकल्टी हैं।
संपर्क: uchaturvedi@gmail.com

मनीषचंद्र शुक्ल दिल्ली विश्वविद्यालय के लक्ष्मीबाई महाविद्यालय में सहायक प्रोफेसर मनीषचंद्र शुक्ल का 'पत्रकारिता की नैतिकता एवं स्टिंग ऑपरेशन' विषय पर महत्वपूर्ण शोधकार्य है। देश की कई प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में उनके आलेख प्रकाशित हो चुके हैं। संप्रति वह 'स्वाधीन भारत में हिंदी पत्रकारिता के आदर्श सृजन में दिनमान की भूमिका' विषय पर शोधरत हैं। संपर्क: mcshukla27@gmail.com

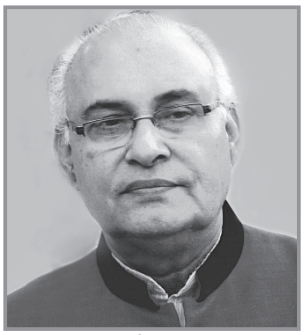

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

संपादकीय

मंथन का प्रत्येक अंक विषय केंद्रित होने के कारण विशेषांक ही होता है। 'स्त्री शक्ति विशेषांक' को आप लोगों ने पसंद किया, आभारी हूँ।

नवीन वर्ष 2021 का यह प्रथमांक जनवरी-मार्च, 'मीडिया विशेषांक' है। 'मीडिया' ने पत्रकारिता के वितान एवं समाचार की परिभाषा को इतना विस्तार दे दिया है, कि ये शब्द 'मीडिया' की व्यापकता को व्यक्त करने में छोटे पड़ने लगे हैं। अत: हिंदी में भी मंथन का यह अंक 'मीडिया विशेषांक' ही है। भारतीय भाषाओं ने भी 'मीडिया' को मीडिया के रूप में स्वीकार कर लिया है।

पत्रकारिता में ही मीडिया का उत्स है। अत: इसका इतिहास भी है एवं कुछ सामान्यीकृत धारणाएँ भी। इतिहास में लोकतंत्र एवं मीडिया ने संभवत: साथ-साथ आँखें खोलीं। समाचार-पत्र स्वत: ही राज्य के चौथे खंभे के रूप में स्थापित हो गए। विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका तो संवैधानिक तौर पर लोकतांत्रिक-राज्य के तीन स्तंभ हैं, 'मीडिया' स्वघोषित एवं समाज स्वीकृत चौथा स्तंभ है। यह चौथा स्तंभ है, अत: महत्वपूर्ण है, लेकिन यह संवैधानिक मर्यादा से मुक्त है। यह स्वायत्तता एवं अराजकता के मध्य जूझता रहता है। इतने महत्वपूर्ण स्तंभ का स्वायत्त होना जहाँ वांछनीय माना जाता है, वहीं अराजक होने पर यह स्वयं लोकतंत्र के लिए खतरनाक बन जाता है। क्या करना चाहिए?

जरूरी है कि हम पत्रकारिता से 'मीडिया' तक पहुँचने की कहानी को समझें। आरोह-अवरोह युक्त उस यात्रा को जानें जिसने इसके रूप, स्वरूप एवं चरित्र को बदल दिया है। दुनिया भर के समाजशास्त्री इस विषय से जूझ रहे हैं। जूझने की यह प्रक्रिया ही समुचित संवाद को जन्म देती है, जब संवाद होता है तो थोड़ा विवाद भी होता ही है, लेकिन विवाद कभी भी लक्ष्यभूत नहीं हो सकता, लक्ष्य तो समुचित संवाद ही है।

'मंथन' का यह विशेषांक उसी वांछित संवाद का सूत्रपात करता है। यह हमारा सौभाग्य है कि इस अंक के अतिथि संपादक के रुप में हमें आदरणीय अच्युतानंद मिश्र प्राप्त हुए। उनका संपूर्ण जीवन पत्रकारिता की सेवा में ही लगा है। उनके अनुभवपूर्ण मार्गदर्शन ने इस अंक को संवारा है, उन्होंने ही हमें योग्य लेखकों तक भी पहुँचाया।

एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान से अनेक सुधी विद्वान एवं पत्रकार जुड़े हुए हैं। आदरणीय श्री राम बहादुर राय, श्री अशोक टंडन तथा श्री जवाहर लाल कौल का नाम यहाँ उल्लेखनीय है। इन सबके सक्रिय सहयोग, विमर्शन एवं मार्गदर्शन से यह विशेषांक दो भागों में रचित है। प्रथम भाग आपके हाथों में है।

अनुसंधानपरक आलेखन एक साधनापूर्ण कला है। पत्रकारिता में औपचारिक रूप से इसका प्रयोग नहीं होता। पत्रकारीय आलेखन दीर्घजीवी नहीं होता, जबकि अनुसंधानपरकता में दीर्घजीविता अंतर्निहित है। इस अंक के भी अधिकतर लेखक पत्रकार ही हैं। आलेखन को अनुसंधानपरक बनाने के लिए मैंने लेखकों को किंचित परेशान भी किया है। मैं क्षमाप्रार्थी हूँ, लेकिन 'मंथन' की प्रकृति के अनुकूल संपादन के लिए यह जरूरी था।

विशेषांक के ये दोनों भाग अपनी गाथा स्वयं ही कहेंगे। संपादक तो एक निमित्तमात्र है। स्नेह बनाए रखें। आप सभी को नववर्ष एवं गणतंत्र दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ। शुभम्।

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
mahesh.chandra.sharma@live.com

भाई महेश जी,
सस्नेह नमस्कार।

मंथन के स्त्री विशेषांक में रंगा हरि जी का लेख पढ़कर अत्यंत प्रसन्नता हुई। अनुसंधानपरक लेख है। मलयालमभाषी का हिंदी पर अपूर्व अधिकार है।

रासमणि का उल्लेख है। मंदिर निर्माण के इस कार्य के लिए उन्हें जितना संघर्ष करना पड़ा, उसका थोड़ा भावात्मक आभास भी इस लेख में आ पाता तो और अच्छा लगता। धनी जमींदारों ने जब सुना कि रासमणि मंदिर के लिए जमीन खरीद रही हैं तो सबने मिलकर उनके विरुद्ध गुटबंदी कर ली और उन्हें जमीन नहीं खरीदने दी। गंगा का पश्चिमी तट ही आध्यात्मिक दृष्टि से श्रेष्ठ माना जाता रहा है। आखिर उन्हें पूर्वी तट पर एक इसाई से जमीन खरीदनी पड़ी। सर्वाधिक खर्च से वह उस समय का सबसे आलीशान मंदिर बना। इसके बावजूद उन्हें कोई पुजारी नहीं मिला। अंततः परमहंस के परिवार के ही एक व्यक्ति के प्रयास से पुजारी मिला। बाद में इसके लिए भी गुटबंदी हुई कि मंदिर में कोई जाए ही नहीं। अंततः पुजारी को भी मंदिर छोड़ देना पड़ा। इन्हीं सब दुखों में रासमणि का भी निधन हो गया। बाद में रासमणि के परिवार में भी मतभेद हो गया। मामला कचहरी तक गया और सौ वर्ष बाद जगमोहन के मंत्रित्व में कचहरी से छुटकारा मिल पाया।

रासमणि का व्यक्तित्व अद्‌भुत था। मंदिर में ठाकुर को भजन सुनाने को कहा। ठाकुर गा रहे थे – ठाकुर तो अंतःप्रज्ञ थे। समझ गए कि रासमणि का ध्यान तो मुकदमे पर है – थप्पड़ लगा दी। इतने कर्मचारियों के सामने अपमान कर दिया पर रासमणि ने सबको शांत रहने की आज्ञा दी। कहा मेरे दोष का दंड दिया है। बहादुर महिला थीं। अंग्रेज सिपाही शराब पीकर उनके घर में घुस आए – तो स्वयं उनसे लड़ने के लिए घर से बाहर आ गईं। अंग्रेज सरकार से मुकदमा लड़ कर जीती।

मैडम कामा ने विदेशी महिला होकर भी भारतीय स्वाधीनता के लिए कितने प्रयास यूरोप में किए? सावरकर की सहायता की। जहाज से कूदकर फ्रांस की भूमि पर सावरकर को बचाने के लिए जी जान से लड़ीं। पंचतंत्र में स्त्री विरोधी निंदनीय सामग्री के बारे में मैंने तो कहीं नहीं पढ़ा है। बुद्ध व उनके अनुयायियों व जैन साध्वियों का उल्लेख देखकर प्रसन्नता होती है।
मंथन का तिब्बत अंक भी अत्यंत सुंदर था।

लक्ष्मी निवास झुंझुनुवाला

श्रदेय श्री महेश चंद्र शर्मा जी

मंथन पत्रिका का त्रिविष्टप विशेषांक १ पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कुछ मिष्ठान्नप्रेमी अवसर पाते ही प्रसाद सम्मिलित मिष्ठान्न लपक लेते हैं। कभी-कभी उन्हें भगवान के प्रसाद में अच्छी प्रकार की मिठाई भी प्राप्त हो जाती है। ठीक वैसे ही मेरे जैसे पाठक को भगवान के प्रसाद स्वरूप बहुत ही सुरुचिपूर्ण पुस्तकें प्राप्त हो जाती हैं। आपके द्वारा संपादित मंथन पत्रिका मेरे लिए वही भगवान का मिष्ठान्न सम्मिलित प्रसाद प्राप्त हुआ है।

मंथन पत्रिका को अगर मैं मंथन परियोजना कहूँ तो अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा। इस परियोजना के कई अंक मैंने पढ़े हैं जैसे कश्मीर, गांधार एवं त्रिविष्टप का पहला अंक। मंथन पत्रिका के प्रत्येक अंक के विषय को पढ़ने के पश्चात यह आभास होता है कि पत्रिका का प्रकाशन परिवार कितने अच्छे प्रयासों से आर्यावर्त के इतिहास, धरोहर, ऐतिहासिक ग्रंथों, हिंदू एवं बौद्ध के संगमस्थल तिब्बत को पिरोकर वर्तमान पीढ़ी को आम जनता की भाषा हिंदी एवं अंग्रेजी में भी प्रकाशित कर उपकृत कर रहा है। इस पत्रिका को संग्रहणीय रखने के अतिरिक्त और अन्य कोई विकल्प नहीं है। ऐसी शोधपरक सामग्री बड़े सघन उद्यम से ही संभव हो पाती है। साधारण हिंदी-अंग्रेजी पत्रिकाओं में रूचि रखने वालों के लिए आपने घर बैठे शोध संस्थान प्रस्तुत किया है।

त्रिविष्टप का पहला अंक अध्ययन करने के पश्चात मेरे जैसे पाठक को समझ आया कि कुछ लेख तो समझदार बौद्धिकों की बौद्धिक क्षमता से भी परे हैस तिब्बती एवं संस्कृत अथवा देवनागरी दोनों भाषा के संदर्भों को एक साथ पिरो कर पाठक के समक्ष उसकी समझ अनुसार रखना एक चुनौती है, बौद्धिक क्षमता का कथन इसी संदर्भ में किया गया है। आदि से अंत तक विद्वान लेखकों के लेख विषय के प्रति उनकी गहन अंतर्दृष्टि, आम भाषा में संकलित कर प्रस्तुत करने का प्रयास एवं ऐतिहासिक घटनास्थलों का सजीव प्रस्तुतीकरण, अमृतरूपी बूंदों का उपहार मंथन के माध्यम से पाठकों हेतु प्रस्तुत किया गया है।

पुनः आपको एवं मंथन पत्रिका प्रकाशन परिवार को ऐसी शोधपूर्ण पत्रिका प्रकाशित करने हेतु बधाई। सेक्युलरिस्टों, कम्युनिस्टों एवं मुसलिम शासकों द्वारा लिखे गए विकृत इतिहास को वर्तमान पीढ़ी के समक्ष पिछले ७० वर्षों से परोसा गया है, उसमें बहुत सुधार और बदलने की आवश्यकता है। मेरा सुझाव है भविष्य में प्रकाशित होने वाले मंथन में भारत से संबंधित देश में या विदेश में नई खोजी गई धरोहर तथा पुरातात्विक सामग्री के वैज्ञानिक आधार से युक्त गौरवपूर्ण भारतीय इतिहास से समन्वित कर मंथन का अंक प्रकाशित करने का कार्य होगा तो अति उत्तम होगा।

बृजनाथ पंडित
गुलशन विवांत, नोएडा 137

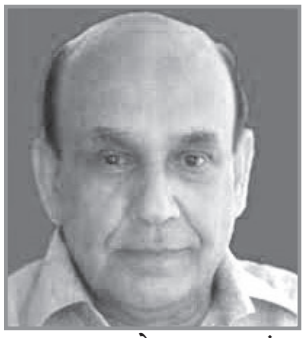

अशोक कुमार टंडन

भारत में मीडिया और लोकतंत्र

"विवेक, शिक्षा, संभाषण एवं सम्मेलन की स्वतंत्रताएँ लोकतंत्र के मूल तत्व हैं। प्रेस की स्वतंत्रता छिन जाए, तो ये सभी निरर्थक हो जाएंगी।
-फ्रैंकलिन डी. रुजवेल्ट"

मीडिया के नियमन संबंधी सभी व्यवस्थाएँ अभी पुराने दौर की ही हैं, जब अखबार के अलावा मीडिया का कोई और रूप सशक्त नहीं था। लेकिन आज संचार माध्यमों और उन पर कंटेट के प्रवाह की स्थिति विस्फोट जैसी है। इसका नियमन पुरानी व्यवस्था के अधीन लगभग असंभव है। नई व्यवस्था की संभावनाओं पर एक दृष्टि

साप्ताहिक समाचार पत्र ऑर्गेनाइजर को स्वातंत्र्योत्तर भारत में ऐसा पहला पत्र होने का गौरव प्राप्त है जिसने संविधान के अनुच्छेद 19(1)क में प्रदत्त भाषण और अभिव्यक्ति के अधिकार को अक्षुण्ण बनाए रखने का प्रयास किया।[1]

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के इस साप्ताहिक मुखपत्र को दिल्ली के चीफ कमिश्नर द्वारा पूर्वी पंजाब सुरक्षा अधिनियम 1949 में प्रदत्त शक्तियों के अधीन 2 मार्च 1950 को यह आदेश दिया गया कि सरकार की जाँच पड़ताल के पश्चात ही कोई विषय इसमें प्रकाशित करें।

बृजभूषण (जो उस समाचार ऑर्गेनाइजर पत्रिका के मुद्रक और प्रकाशक थे जब के आर मलकानी इसके संपादक थे) बनाम भारत सरकार के उच्चतम न्यायालय के ऐतिहासिक निर्णय में यह घोषित किया गया कि दिल्ली के चीफ कमिश्नर का आदेश अवैध है क्योंकि पत्रिका ने अनुच्छेद 19(2), जो भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कुछ निश्चित प्रतिबंध लगाता है, के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन नहीं किया है।[2]

ऑर्गेनाइजर संबंधित इस निर्णय तथा 1950 के ही रोमेश थापर (भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के मुखपत्र क्रॉसरोड्स के मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक) बनाम मद्रास राज्य विषयक निर्णय ने एक संवैधानिक संकट को जन्म दिया।[3]

प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 19(2) की ऐसी व्याख्या से इतने क्रोधित हुए कि उन्होंने तत्कालीन कानून मंत्री बीआर अंबेडकर से कहा कि मौलिक अधिकारों को लेकर सरकार और न्यायपालिका के बीच संकट पैदा हो गया है तथा अनुच्छेद 19(2) के प्रावधान में संशोधन की आवश्यकता है।

गृहमंत्री सरदार पटेल ने भी नेहरू को लिखा कि इन दो निर्णयों ने "प्रेस को विनियमित और नियंत्रित करने वाले दंड विधान संबंधी हमारे अधिकतम कानूनों का आधार ही समाप्त कर दिया है। मेरा भी विचार है कि हमें शीघ्र ही संविधान संशोधनों पर मिल बैठकर विचार करना होगा।"

फरवरी 1951 में नेहरू ने प्रस्तावित संशोधनों के परीक्षण के लिए कैबिनेट कमेटी का गठन कर दिया।

12 मई 1951 को संशोधन का प्रस्तावित प्रारूप डॉ. अंबेडकर द्वारा कोई 'युक्तियुक्त' शब्द के बिना प्रस्तुत कर दिया गया। नेहरू ने इस संशोधन का समर्थन किया।

डॉ. मुखर्जी और एच.एन. कुंजरू ने इस संशोधन का डटकर विरोध किया और नेहरू को यह मनवाने में सफल रहे कि अनुच्छेद 19(2) में दत्त 'निर्बंधन' शब्द से पूर्व 'युक्तियुक्त' शब्द बनाए रखा जाए तथा 19(1)क में भी किसी तरह का परिवर्तन न किया जाए।

1951 में भारत की एकसदनी संसद ने प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया। जिसमें 'लोक-व्यवस्था' और 'विदेशी राज्यों के

साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों' विषयों को उचित प्रतिबंध, अनुच्छेद 19(2) के अधीन स्वीकार किया गया।

बंबई उच्च न्यायालय के अधिवक्ता अभिनव चंद्रचूड़ के अनुसार, "नेहरू इससे इतने अधिक परेशान हो गए थे कि उन्होंने पटेल को लिख कर हिंदू महासभा के श्यामा प्रसाद मुखर्जी और कलकत्ता की प्रेस पर नेहरू लियाकत समझौते के सहज कार्यकरण में बाधा उत्पन्न करने वाले 'मुख्य अपराधी' होने का आरोप लगाया था।"

अभिनव का कहना है कि 'विदेशी राज्यों से मैत्रीपूर्ण संबंध' विषयक निर्बंधन प्रावधान मुखर्जी पर ही लक्षित लगता है।

संसद में अपने एक भाषण में नेहरू ने कहा था, "यदि कोई व्यक्ति ऐसा कार्य करता है जिससे युद्ध छिड़ सकता है, तो यह बहुत गंभीर बात है। कोई भी राष्ट्र अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर ऐसे कार्यों की आज्ञा नहीं दे सकता जिसके परिणामस्वरूप बड़े युद्ध और विनाश की संभावना खड़ी हो जाए।"

दूसरी ओर मुखर्जी ने संसद में कहा था कि देश का विभाजन एक भूल थी जिसे समाप्त किया जाना चाहिए चाहे उसके लिए बल प्रयोग ही क्यों ना करना पड़े। डॉक्टर मुखर्जी ने कहा था कि "विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध" विषयक अपवाद "कहीं कुछ निश्चित क्षेत्रों में उठ रही उस माँग से संबंधित तो नहीं है जो पाकिस्तान और भारत के एकीकरण की संभावना से जुड़ी है।"

1950 में पटेल और नेहरू के बीच हुए पत्राचार से यह स्पष्ट है कि विदेशों से मैत्रीपूर्ण संबंध विषयक प्रावधान मुखर्जी द्वारा बल प्रयोग से भारत और पाकिस्तान के एकीकरण की मांग के परिणामस्वरुप ही जोड़ा गया था।[4]

भारत में प्रेस का उद्भव और विकास

पाश्चात्य इतिहासकार यह दावा करते हैं कि भारत में प्रेस की न्यू ब्रिटिश शासन के दौरान रखी गई थी। परंतु इस समय प्रेस को किसी प्रकार की आजादी नहीं थी और अनेक कठोर औपनिवेशिक कानूनों के द्वारा प्रेस का गला घोटने का प्रयास किया जाता रहा। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध लिखने वाले जाने-माने स्वतंत्रता सेनानियों पर अत्याचार किए जाते रहे। 'केसरी' और 'मराठा' के संस्थापक बाल गंगाधर तिलक, 'हिंद' और 'स्वदेश मित्र' के संस्थापक सुब्रमण्यम अय्यर और मलयालम के पत्रकार रामकृष्ण पिल्लै उन धन्य संपादकों में से थे जिन्होंने ब्रिटिश राज में कष्ट सहन किए।

ब्रिटिश राज में स्थानीय समाचार माध्यम अखबारों और पत्रिकाओं में प्रमुख स्थानीय घटनाओं को छापते थे क्षेत्रीय भाषाओं के समाचार पत्र अनेक विषयों पर लिखते थे यथा गांधी जी के भाषण, स्वतंत्रता सेनानियों और नेताओं पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में दिए गए भाषण भी होते थे और भगत सिंह पर चल रहे मुकदमे की कार्यवाही प्रमुख रूप से प्रकाशित होती थी।

भारत छोड़ो आंदोलन, पूर्ण स्वराज और नमक यात्रा में सभी बड़े समाचार पत्रों और पत्रिकाओं पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया गया था। जब शिवराम, राजगुरु और भगत सिंह ने संसद भवन में पर्चे फेंके और बम गिराया तक हिंदुस्तान टाइम्स ने इस विषय पर विस्तार से लिखा। जिसके परिणामस्वरूप बाद में सरकार ने प्रचार माध्यमों में भगत सिंह और राजगुरु के चित्र प्रकाशित करने

प्रजातांत्रिक संस्थाओं की जननी भारत

पश्चिमी इतिहासकारों को इस बात को लेकर संशय है कि भारत में प्रजातंत्र का उदय ईसा पूर्व छठी शताब्दी के आरंभ में हो चुका था।

यदि एक यूनानी इतिहासकार डियोडोरस के लेखन में दर्ज यह ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं होता, तो भारतीयों का यह दावा कभी सही नहीं हो पाता कि भारत सभी प्रजातंत्रों की जननी है।

सिकंदर के आक्रमण के बाद भारतीय प्रायद्वीप के लगभग दो शताब्दियों के राजनीतिक मानचित्र का वृत्तांत प्रस्तुत करते हुए, डियोडोरस ने लिखा कि 'स्वतंत्र प्रजातांत्रिक गणतंत्र', जिन्हें उन दिनों 'संघ' और 'गण' कहा जाता था, भारत में ईसा पूर्व छठी शताब्दी में अस्तित्व में थे।

कुछ भारतीय विद्वानों समेत आधुनिक विद्वान इस बात को मानने को तैयार नहीं हैं कि भारत 2500 वर्षों से अधिक समय तक प्रजातांत्रिक संस्थाओं का स्रोत रहा। उनका तर्क है कि यदि प्रजातांत्रिक गणतंत्र 'संघ' और 'गण' थे भी, तो ऐसा कैसे है कि यूनानी इतिहासकारों के लेखनों को छोड़कर उनका कोई ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं है। यदि 'तक्षशिला' और 'नालंदा' विश्वविद्यालयों जैसे ज्ञान के महान पीठों के पुस्तकालयों को आक्रांताओं ने तहस-नहस कर जलाया नहीं होता तो प्राचीन भारत के स्वर्णकाल की महिमा की पांडुलिपियों में लिखित साक्ष्य मिल सकते थे।

इसीलिए, पाश्चात्य विश्व एथेंस को प्रजातंत्र का स्रोतस्थल मानता है और उनके दावों को सही साबित करने के लिए एथेनियन साहित्य 'दि रिपब्लिक ऑफ प्लेटो' तथा 'पॉलिटिक्स ऑफ एरिस्टोटल' और मैकियावेली के व्याख्यानों का हवाला देता है।

वे विश्व को यह समझा पाने में सफल रहे हैं कि प्राचीन यूनान और रोम के लोग प्रजातांत्रिक प्रयोगों के संस्थापक थे। किंतु, इंगलैंड निरंतर दृढ़तापूर्वक इन दावों को चुनौती देता रहा है कि 15 जून, 1215 को इंगलैंड के विंडसर कैसल के निकट रुन्नीमीड में अपनाए गए मैग्ना कार्टा (एक लैटिन शब्द), 'ग्रेट चार्टर ऑफ फ्रीडम्स' अथवा 'रॉयल चार्टर ऑफ राइट्स', के रूप में प्रजातंत्रीकरण की प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी।

ब्रिटेन की पूर्व प्रधानमंत्री मार्गरेट थैचर हमेशा दावा करती रहीं कि ब्रिटेन आधुनिक विश्व का प्राचीनतम संसदीय प्रजातंत्र और वेस्टमिंस्टर 'संसदों की जननी' है।

पर प्रतिबंध लगा दिया।

1910 के प्रेस कानून से सभी समाचार पत्र प्रभावित हुए। ऐसा माना जाता है कि इस अधिनियम के अधीन 1000 प्रकाशनों पर मुकदमे चले और प्रथम 5 वर्ष में सरकार ने अखबारों से जमानत राशि और कुर्की के रूप में ₹ 5,00,000 की राशि जमा करवाई। अनेक पत्रकारों और प्रकाशनों पर सरकार विरोधी लेख प्रकाशित करने के लिए राजद्रोह के मुकदमे भी दायर किए गए जिनमें अमृत बाजार पत्रिका भी एक थी। बाद में, सत्याग्रह जैसे अहिंसक प्रतिरोध और प्रेस एडवोकेसी यानी प्रेस द्वारा ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जनमत भड़काने को लेकर 1931 के प्रेस इमरजेंसी एक्ट का सक्रिय प्रयोग किया गया।

तदनंतर संपादकों ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रेस की सुरक्षा को लेकर

रूस का विवादास्पद कानून

जहाँ एक ओर प्रेस की आजादी पर पूरी दुनिया में नए-नए प्रहार हो रहे हैं तो वहीं रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन ने एक विवादास्पद कानून पर हस्ताक्षर किए हैं, जिससे स्वतंत्र पत्रकारों और ब्लॉगरों पर आराम से 'विदेशी एजेंट' के रूप में ठप्पा लगाया जा सकता है।

(दिसंबर 3, 2019)

वर्ष 2012 में पारित रूसी अधिनियम द्वारा पहले ही अधिकारियों यह शक्ति दे दी थी कि वह मीडिया संगठनों और गैर-सरकारी संगठनों को एक विदेशी एजेंट के रूप में ब्रांड कर सकें, एक ऐसा शब्द जिसमें सोवियत युग की प्रतिध्वनि होती है। रूसी सरकार की वेबसाइट पर प्रकाशित एक दस्तावेज के अनुसार रूस के प्रत्येक नागरिक तक संप्रेषित किए गए इस नए कानून को तत्काल ही प्रभाव में लाया जाएगा।

विदेशी एजेंट जिन्हें ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया जाता है जो राजनीति में शामिल हैं और जिन्हें विदेशों से धन प्राप्त हो रहा है, उन्हें न्याय मंत्रालय के साथ पंजीकरण करना चाहिए, टैग के साथ प्रकाशन करना चाहिए और विस्तृत कागजी कार्रवाई जमा करनी चाहिए या फिर दंड भुगतने के लिए तैयार रहना चाहिए।

एमनेस्टी इंटरनेशनल और रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स (आरएसएफ) सहित नौ मानवाधिकार एनजीओ ने चिंता व्यक्त की है कि संशोधनों के शिकार केवल पत्रकार ही नहीं बल्कि ब्लॉगर्स और इंटरनेट उपयोगकर्ता भी हो सकते हैं, जिन्हें एक प्रासंगिक मीडिया आउटलेट से छात्रवृत्ति, वित्तपोषण या आय प्राप्त होती है।

आरएसएफ की 2019 की प्रेस स्वतंत्रता रैंकिंग में रूस 180 देशों में से 149 रैंक पर है। आरएसएफ ने मई में रूस में लागू किए गए 'संप्रभु इंटरनेट कानून' के विषय में अपनी रिपोर्ट में कहा है कि "रूस में इंटरनेट सेंसरशिप एक नए स्तर तक नीचे हो गई है" क्योंकि सरकार का पूरा का पूरा उद्देश्य वेब के आधारभूत ढाँचे पर नियंत्रण हासिल करना है।

"यह कानून कंटेंट को और भी अधिक प्रभावी तरीके से ब्लाक करनें का प्रयास कर रहा है, यह संवाद को पूरी तरह बंद करना चाहता है, और, यदि आवश्यक हो, तो दुनिया भर में वेब से रूसी इंटरनेट को काटने में सक्षम होगा। वसंत में, हजारों लोगों ने इस कानून के विरोध में और इंटरनेट की स्वतंत्रता अपना विरोध स्वर दर्ज कराया। गर्मियों में, हजारों लोग राजनीति में बेहतर आवाज सुने जाने को लेकर सड़कों पर उतर आए। सैकड़ों प्रदर्शनकारियों को गिरफ्तार किया गया था और काफी लोगों को जेल की सजा सुनाई गई थी।"

"उसी समय स्वतंत्र ऑनलाइन मीडिया और सिविल सोसाइटी संगठनों के उन सूचना पोर्टल्स को कल्पना से भी परे समर्थन मिला, जिन्होनें क्रेमलिन के इस आदेश का विरोध किया," रिपोर्ट में कहा गया है।

एनजीओ ने पिछले महीने एक संयुक्त बयान में कहा कि यह कानून "निष्पक्ष और स्वतंत्र मीडिया को प्रतिबंधित करने के लिए एक और कदम" और "विरोधी स्वरों को शांत कराने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण" है। परंतु बिल बनाने वाले कहते हैं कि यह विदेशी एजेंटों पर बने हुए वर्तमान कानून को सही करने के लिए उठाया गया कदम है जिसके अंतर्गत एनजीओ और मीडिया संस्थान सम्मिलित हैं। रूस का कहना है कि वह जैसे को तैसे के लिए कानून चाहता है, क्योंकि उसके पत्रकार पश्चिम में विदेशी एजेंट के रूप में परिभाषित किए गए हैं।

रूस ने सबसे पहले मीडिया संस्थानों पर वर्ष 2017 में विदेशी एजेंट जैसे ठप्पे लगवाने वाला कानून पारित किया था, जब क्रेमलिन द्वारा वित्त पोषित आरटी टेलीविजन को संयुक्त राज्य अमेरिका में एक विदेशी एजेंट घोषित किया गया था।

रूसी विपक्षी राजनीतिज्ञ एलेक्सी नवलनी के संगठन को अमेरिका द्वारा वित्तपोषित मीडिया आउटलेट रेडियो लिबर्टी, रेडियो फ्री यूरोप और वॉइस ऑफ अमेरिका के साथी होने के रूप में विदेशी एजेंट के रूप में परिभाषित किया है। 1970 और 1980 के दशक में स्टालिनवादी युग के दौरान पश्चिम द्वारा विरोधियों को धन दिए जाने के कारण विदेशी एजेंट शब्द का नकारात्मक उपयोग किया गया था।

मध्यप्रदेश शासन

श्री नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

श्री शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

विकास के प्रतिबद्ध प्रयास

- मुख्यमंत्री किसान कल्याण योजना में प्रधानमंत्री सम्मान निधि के हितग्राहियों को 4000 रुपये की अतिरिक्त राशि राज्य सरकार की ओर से।
- किसानों को ब्याजमुक्त ऋण के लिए बैंकों और समितियों को 800 करोड़ रुपये जारी।
- आदिवासी वनाधिकार पत्रों का वितरण- 2 लाख 70 हज़ार से अधिक व्यक्तिगत और 39 हज़ार 996 से अधिक सामुदायिक वनाधिकार पत्रों का वितरण।
- चम्बल प्रोग्रेस वे- भिण्ड, मुरैना और श्योपुर होते हुए राजस्थान सीमा तक कुल 316 कि.मी. लम्बा।
- रीवा सौर परियोजना- विश्व की सबसे बड़ी परियोजनाओं में से एक। 4000 करोड़ रुपये की लागत से निर्मित परियोजना में 750 मेगावॉट बिजली का उत्पादन।
- वर्ष 2018-19 के खरीफ एवं रबी फसलों के लिए 16 लाख किसानों को 3100 करोड़ रुपये की फसल बीमा राशि का भुगतान।
- विभिन्न योजनाओं में आर्थिक सहायता- जरूरतमंदों के खातों में 24 विभागों की विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत 40 हजार 500 करोड़ रुपये से अधिक की राशि अंतरित।
- प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना - उद्यानिकी फसलों को भी रबी 2020-21 से रबी 2022-23 के लिए सम्मिलित करते हुए क्रियान्वन।
- प्रदेश के इतिहास में पहली बार महिला स्व-सहायता समूहों को 479.44 करोड़ रुपये के ऋण स्वीकृत और 343 करोड़ रुपये के ऋण वितरित।
- संबल योजना- 6 माह में 25 हजार से अधिक हितग्राहियों को 268 करोड़ रुपये की सहायता।
- राष्ट्रीय जल जीवन मिशन- 3 हजार करोड़ रुपये से अधिक की योजनाएं स्वीकृत। ग्रामीण क्षेत्र के 26 लाख से अधिक घरों में नल कनेक्शन का लक्ष्य।
- प्रधानमंत्री आवास योजना (शहरी) के 8 हजार 241 हितग्राहियों को 82 करोड़ 41 लाख रुपये की राशि सिंगल क्लिक के माध्यम से उनके खातों में अंतरित।
- प्रधानमंत्री आवास योजना (ग्रामीण) के एक लाख 78 हजार 417 हितग्राहियों को कुल 451 करोड़ रुपये की राशि सिंगल क्लिक के माध्यम से अंतरित।
- बिजली बिलों में राहत- 97 लाख से अधिक बिजली उपभोक्ताओं को बिजली बिलों में 623 करोड़ रुपये से अधिक की राहत।

सरकार के फैसले हैं मददगार
आत्मनिर्भरता का सपना होगा साकार

दो गज की दूरी, मास्क है जरूरी

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2020

खुशहाली के बीज
57 वर्षों से भारतीय किसानों की सेवा में

भारत में अनाज, तिलहन और दलहन के सबसे बड़े बीज उत्पादक के रूप में राष्ट्रीय बीज निगम 1963 से गुणवत्ता वाले बीजों के भरोसेमंद आपूर्तिकर्त्ता के रूप में अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखे हुए है और देशभर में ऐसे बीजों के जरिए संपन्नता फैला रहा है, जो कि :-

- राष्ट्रीय बीज निगम के फार्मों और 12500 से अधिक पंजीकृत बीज उत्पादकों द्वारा आदर्श कृषि जलवायु परिस्थितियों में उपजाए जाते हैं;
- व्यापक श्रेणी में उपलब्ध हैं, जिनमें खद्यान्न, तिलहन, दलहन, चारा और रेशे तथा सब्जियों सहित 60 से अधिक फसलों की लगभग 600 प्रजाति/संकर किस्में शामिल हैं;
- स्वतंत्र बीज प्रमाणीकरण एजेंसियों द्वारा प्रमाणित हैं और
- देशभर में 11 क्षेत्रीय कार्यालयों, 8 फार्म, 48 प्रक्षेत्र तथा 107 विपणन केन्द्र के विभिन्न जिला क्षेत्रों में कार्यालयों/उप इकाइयों के अंतर्गत लगभग 3200 डीलर/वितरक हैं।

एन एससी
NSC
(An ISO 9001 : 2015 & 14001 : 2015 Certified Company)

राष्ट्रीय बीज निगम लिमिटेड

(भारत सरकार का उपक्रम-"मिनी रत्न" कम्पनी)

CIN : U74899DL1963GOI003913

आईएसओ 9001:2015 एवं 14001:2015 प्रमाणित कम्पनी

बीज भवन, पूसा परिसर, नई दिल्ली-110 012

दूरभाष: 011-25846292, 25846295, 25842383, 25842672

वेबसाइट : www.indiaseeds.com ईमेल:nsc@indiaseeds.com

अपनी चिंताएँ व्यक्त कीं। इसी अवधि में ऑल इंडिया पेपर्स एडिटर्स कान्फ्रेंस का गठन हुआ। इसके द्वारा प्रेस पर लगे प्रतिबंध हटाने की मांग की गई। 1941 में महात्मा गांधी ने प्रचार माध्यमों पर पाबंदियाँ लगाने की आलोचना की और कहा, "युद्ध के लिए तैयारियों के नाम पर सभी प्रकारों के जनमत की अभिव्यक्ति को कुचल दिया गया है।" अनेक प्रकार की आलोचनाओं पर ध्यान न देते हुए सरकार ने प्रेस पर प्रतिबंध लगाना जारी रखा। परिणामस्वरूप सरकार ने हितवाद समाचारपत्र को अपने संवाददाता का नाम बताने को विवश किया। सरकारी अधिकारियों ने हिंदुस्तान टाइम्स के कार्यालय की भी तलाशी ली। इसने 1915 के भारत सुरक्षा कानून के अंतर्गत प्रेस और विद्रोही गतिविधियों पर आम जनता के लिए घोषणाएँ प्रकाशित करने पर रोक लगाई। इसने जेल की सजा भी बढ़ाकर पाँच साल कर दी और ऑफिसियल सीक्रेट एक्ट पारित करके सरकार विरोधी संपादकीय लेखन पर मृत्युदंड तक का प्रावधान कर दिया गया।

1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के पश्चात प्रेस को आदेश दिया गया कि वह राजनीतिक दलों की गतिविधियों पर कुछ ना लिखें। ऑल इंडिया न्यूजपेपर एडिटर्स कॉन्फ्रेंस ने सरकारी आदेश का संकलन करते हुए कहा कि समाचार पत्र सावधानी बरतेंगे और भारत छोड़ो आंदोलन पर कुछ भी लिखने से बचेंगे।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में प्रेस

स्वातंत्र्योत्तर भारत में प्रेस को बोलने और अभिव्यक्ति की संवैधानिक स्वतंत्रता दी गई। सभ्य समाज में इसे जो गौरवपूर्ण स्थान दिया गया, उसके फलस्वरूप यह समाज के सामाजिक आर्थिक रूपांतरण और विकास में सहायक बनी। केवल 1975 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी द्वारा देश पर थोपे गए आपातकाल के काले अध्याय को छोड़कर, जब सभी मूल अधिकार स्थगित कर दिए गए थे और प्रजातंत्र पटरी से उतर गया था। भारतीय मीडिया को सामान्य रूप से अभिव्यक्ति की पूरी आजादी रही है।

प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया के पूर्व अध्यक्ष न्यायमूर्ति जी एन रे के अनुसार, "प्रेस ने न केवल प्रजातंत्र की यात्रा की प्रदर्शित किया है बल्कि हर कदम पर बहुमूल्य सुझाव और अंतर्दृष्टि भी प्रदान की है। गत 62 वर्षों में मीडिया के परिदृश्य में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है। इस परिवर्तन को दो रूपों में देखा जा सकता है। एक तो मीडिया की सकारात्मक उपलब्धियाँ और दूसरी मीडिया में नकारात्मक प्रवृत्तियाँ।"

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात के गत 7 दशकों में मीडिया ने प्रजातांत्रिक एवं सामाजिक मूल्यों के विकास में महत्वपूर्ण निभाई है। इसनें राजनीतिक व्यवस्था में विचलन एवं दोषों के विरुद्ध आवाज बुलंद करके प्रजातांत्रिक ढाँचे को मजबूत किया और इस तरह सुशासन सुनिश्चित करने में भी योगदान किया है।

भारत के संविधान तथा सभ्य समाज ने प्रचार माध्यमों को जनता तक स्वतंत्र, निष्पक्ष, सटीक, सभ्य और शिष्ट तरीके से समाचार, विचार टिप्पणियाँ और जन उपयोगी सूचनाएँ पहुँचाने का अधिकार दिया।

परंतु आज मीडिया अप्रत्याशित रूप से विश्वसनीयता के संकट से गुजर रहा है। तेज गति से विकास के साथ घटते दायित्व बोध के कारण वर्तमान परिदृश्य में यह आवश्यक हो गया है कि मीडिया अपने संवैधानिक दायित्व को निभाने के लिए अपनी कार्यसूची तैयार करे।

अनेक प्रकार की आलोचनाओं पर ध्यान न देते हुए सरकार ने प्रेस पर प्रतिबंध लगाना जारी रखा। परिणामस्वरूप सरकार ने हितवाद समाचारपत्र को अपने संवाददाता का नाम बताने को विवश किया। सरकारी अधिकारियों ने हिंदुस्तान टाइम्स के कार्यालय की भी तलाशी ली। इसने 1915 के भारत सुरक्षा कानून के अंतर्गत प्रेस और विद्रोही गतिविधियों पर आम जनता के लिए घोषणाएँ प्रकाशित करने पर रोक लगाई

परंतु वर्तमान संदर्भ में सबसे विवादास्पद प्रश्न यह है कि 'सार्वजनिक हित' का निर्णय कौन करेगा और क्या मीडिया को इस पद की किसी चुनिंदा व्याख्या को स्वीकार करने के लिए विवश किया जा सकता है।

सरकार और उसकी नियामक मशीनरी यथा प्रेस काउंसिल आफ इंडिया (पीसीआई) यह अनिवार्य मानती है कि प्रेस को "जनता के लिए क्या रुचिकर है" और "जनता के लिए क्या हितकर है" के बीच अंतर करना सीखना चाहिए। राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में होने वाले विकास का ही निष्पक्ष वर्णन ना करें, बल्कि जनता को परेशान करने वाले असली विषयों जैसे आर्थिक विषमता, सामाजिक वैषम्य, लिंगभेद, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएँ आदि को अपने लेखन का विषय बनाएँ, न कि निरर्थक विषयों को।

परंतु इन अत्यावश्यक बातों को भी कानूनों अथवा राजकीय आदेशों से लागू नहीं किया जा सकता।

मीडिया को विशेषकर उदारीकरण के इस दौर में अपने हितों की रक्षा का पूरा अधिकार है।

अनेक व्यावसायिक संगठन विशेषकर एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया प्रेस के एक वर्ग के व्यवहार को लेकर गंभीर रूप से चिंतित है। जिसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ है कि प्रेस से इतर वर्ग के लोग इसे नियंत्रित करने की मांग कर रहे हैं।

एन.डी.ए. सरकार भारत के अति संवेदनशील मीडिया के विषय को अत्यधिक सावधानी से ले रही है।

अभी तक किसी भी प्रकार के कानूनी प्रावधान लागू करने की अपेक्षा आपसी समझ बूझ से स्वीकृति पर बल दे रही है।

यहाँ तक कि पूर्ववर्ती यूपीए सरकार भी स्वतंत्र मीडिया के नाम पर पूर्ण स्वच्छंद आचरण के विरुद्ध थी।

भारतीय मीडिया की अनेक क्षेत्रों में इस बात को लेकर कटु आलोचना होती रही है कि यह 'सनसनी फैलाने' और 'ओछेपन को बढ़ावा देने' में रत रहता है।

कुछ राजनीतिज्ञों और सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा प्रयुक्त असंयत भाषा जो उनके लिंगभेद और जातीय पूर्वाग्रहों को प्रकट करती है इस बात को रेखांकित करती

अमेरिका का मैग्ना कार्टा

अमेरिकी संविधान के संस्थापकों ने 15 जून, 1215 को मैग्ना कार्टा को 'ग्रेट चार्टर ऑफ फ्रीडम' या 'रॉयल चार्टर ऑफ राइट्स' को अपने देश के सर्वोच्च कानून के रूप में इंग्लैंड में अपनाया और इससे प्रेरणा ली।

और 1786 में अमेरिकी संविधान में सम्मिलित किया गया यूनाइटेड स्टेट्स बिल ऑफ राइट्स विशेष रूप से अपने नागरिकों के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकार सुनिश्चित करता है। अमेरिकी संविधान में पहला संशोधन यह स्वतंत्रता देता है कि सरकार के हस्तक्षेप, विरोध या दंड के बिना विचारों, सूचना या दृष्टिकोण को व्यक्त किया जा सके। इसे 15 दिसंबर 1791 को उन दस संशोधनों के रूप में अपनाया गया था जो अधिकारों के कानून का निर्माण करते हैं।

यह अजीब लग सकता है, लेकिन यह सच है कि अमेरिकियों द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवाद से स्वतंत्रता की घोषणा करने से पहले, अंग्रेजी सरकार ने यह भरपूर प्रयास किया था कि अमेरिकी मीडिया को प्रतिकूल खबरें लिखने को लेकर प्रतिबंधित किया जाए।

अमेरिका में प्रेस की स्वतंत्रता से जुड़ा पहला अदालती मामला वर्ष 1734 में सामने आया था। ब्रिटिश गवर्नर विलियम कॉस्बी ने द न्यूयॉर्क वीकली जर्नल के प्रकाशक, जॉन पीटर जेंगर के खिलाफ, कॉस्बी सरकार की आलोचना प्रकाशित करने के लिए एक मुकदमा दायर किया। जेंगर को न्यायपालिका ने दोषमुक्त कर दिया था।

संयुक्त राज्य अमेरिका को हमेशा ही अधिकार विधेयक (बिल ऑफ राइट्स) और अमेरिकी संविधान के प्रथम संशोधन पर गर्व रहा है जो कहता है, "कांग्रेस (अमरीकी संसद) धर्म की स्थापना का सम्मान करने या स्वतंत्र पालन को प्रतिबंधित करने वाला; या बोलने की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करने वाला; प्रेस से घृणा करने वाला; या लोगों के इकठ्ठा होने के अधिकार को रोकने वाला और शिकायतों के निवारण के लिए सरकार के पास याचिका दायर करने वाला कानून नहीं बनाएगी।"

सभी अमेरिकियों का मानना है कि प्रेस की स्वतंत्रता, स्वतंत्रता के सबसे बड़े मानकों में से एक है।"

लेकिन अमेरिकी अधिकारियों को 1971 में कड़ी आलोचना का सामना करना पड़ा था जब उन्होंने राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर जाँच पड़ताल करने वाली रिपोर्ट्स पर सीमाएँ लगा दी थीं; संयुक्त राज्य अमेरिका के सैन्य विश्लेषक डैनियल एल्सबर्ग ने द न्यूयॉर्क टाइम्स को वर्गीकृत दस्तावेजों की प्रतियाँ दीं। वह सभी दस्तावेज जिन्हें पेंटागन पेपर्स के नाम से जाना जाता था, उनमें वर्ष 1945 से 1967 तक वियतनाम में अमेरिकी राजनीतिक और सैन्य भागीदारी के रक्षा अध्ययन के एक अत्यंत गोपनीय विभाग का वर्णन था।

इस बीच, कई नई तकनीकों ने भी अमेरिका में प्रेस की स्वतंत्रता के लिए नई चुनौतियाँ प्रस्तुत की हैं।

वर्ष 2017 में प्रेस स्वतंत्रता के लिए 199 देशों और भूभागों में अमेरिका का 37वाँ स्थान था।

वर्ष 2018 में, अमेरिका का स्थान रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स, प्रेस स्वतंत्रता सूची में 45वें स्थान पर था। यह प्रेस के लिए उपलब्ध स्वतंत्रता के कुल मानक हैं, जिनमें सरकारी सेंसरशिप, पत्रकारिता पहुँच पर नियंत्रण और सूचना देने वाले व्यक्ति की सुरक्षा सम्मिलित है. अमेरिका जहाँ वर्ष 2010 में 20 वें स्थान पर था, वहीं उसकी रैंकिंग वर्ष 2015 में 49वें स्थान पर पहुँच गई थी, पर वर्ष 2016 में सुधर कर 41वें स्थान पर थी।

रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स के अनुसार, संयुक्त राज्य अमेरिका प्रेस स्वतंत्रता के मामले में अधिकांश अन्य पश्चिमी देशों से पीछे है, लेकिन अधिकांश एशियाई, अफ्रीकी और दक्षिण अमेरिकी देशों से आगे है।

अमेरिका स्थित स्वतंत्र निगरानी संगठन, फ्रीडम हाउस ने 2014 में प्रेस स्वतंत्रता में संयुक्त राज्य अमेरिका को 197 देशों में से 30वाँ स्थान दिया था। इसकी रिपोर्ट ने अमेरिकी पत्रकारों को दिए संवैधानिक सुरक्षा की सराहना की थी और फ्रीडम हाउस ने देशों को 100 में से अंक दिए थे, जिनमें 0 सबसे अधिक स्वतंत्रता का द्योतक था तथा 100 सबसे कम स्वतंत्रता का मानक। इस अंक को तीन अलग-अलग मानक श्रेणियों में विभाजित किया गया था: कानूनी (30 में से), राजनीतिक (40 में से) और आर्थिक (30 में से)। संयुक्त राज्य अमेरिका ने उस वर्ष 21 अंक प्राप्त किए थे जिनमें क्रमशः 6, 10 और 5 अंक थे।

है कि मीडिया अपना बहुमूल्य समय और संसाधन ऐसे गौण विषयों पर नष्ट ना करें जो भले ही समाज के एक वर्ग को पसंद हो, परंतु जो समाज हित में न हों।

अनेक व्यावसायिक प्रतिष्ठान लंबे समय से इस बात पर बल देते आए हैं कि संपूर्ण मीडिया उद्योग को आमूल चूल पुनरीक्षण के लिए प्रथम तथा द्वितीय प्रेस कमीशन की तरह का ही कोई मीडिया कमीशन स्थापित करना चाहिए।

प्रस्तावित मीडिया कमीशन अन्य बातों के साथ-साथ वर्तमान प्रेस काउंसिल के स्थान पर भारतीय मीडिया परिषद के गठन की भी सिफारिश कर सकता है। क्योंकि प्रेस काउंसिल को केवल प्रिंट मीडिया का ही नियमन करने का अधिकार है। प्रस्तावित जनसंचार माध्यम परिषद को प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तथा इंटरनेट और

सोशल मीडिया को भी नियंत्रित करने का अधिकार रहेगा। परंतु मीडिया उद्योग के प्रबल विरोध के कारण यह विचार साकार नहीं हो सका।

भारत में विभिन्न सामयिक विषयों एवं टेलीविजन पर समाचार प्रसारण की संस्थाओं के एक निजी संगठन न्यूज ब्रॉडकास्ट एसोसिएशन (एनबीए) तथा प्रिंट मीडिया का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था इंडियन न्यूजपेपर्स सोसायटी (आईएनएस) का सत्ता के गलियारों में लंबे समय से पर्याप्त प्रभाव रहा है। दोनों मिलकर दोनों मिलकर किसी ऐसे मीडिया कमीशन की स्थापना का विरोध करते आए हैं जो कि मीडिया के सभी माध्यमों की कार्यप्रणाली का पुनरीक्षण करें तथा जिसके विचार के अधिकार क्षेत्र में विभिन्न माध्यमों के स्वामित्व, पेड न्यूज प्रणाली, राजनीतिज्ञों के प्रेस से संबंध, टीवी रेटिंग पॉइंट्स का एकाधिकार नियंत्रण, विज्ञापनों का केंद्रीकरण तथा मीडिया कर्मचारियों से के वेतनमान आदि अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर विचार शामिल हो।

1952 में पंडित नेहरू द्वारा गठित प्रथम प्रेस कमीशन ने समाचार पत्र उद्योग के नियंत्रण, प्रबंधन और स्वामित्व तथा आर्थिक ढाँचे के साथ अन्य पक्षों पर भी विचार किया था। इसने अन्य बातों के साथ-साथ भारत के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार (आरएनआई) की नियुक्ति, प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया की स्थापना तथा श्रमजीवी पत्रकारों विषयक कानून बनाने का प्रस्ताव किया था।

द्वितीय प्रेस कमीशन की स्थापना 1978 में मोरारजी देसाई की सरकार द्वारा की गई थी। कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि प्रचार माध्यमों को राष्ट्र की विकास प्रक्रिया में दायित्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। द्वितीय प्रेस कमीशन के प्रस्तावों के अनुसार प्रेस काउंसिल का पुनर्गठन किया गया।

मीडिया उद्योग, चाहे वह इलेक्ट्रॉनिक हो अथवा प्रिंट मीडिया, हमें विश्वस्त करना चाहता है कि मीडिया अपनी असीमित शक्ति और पहुँच का प्रयोग विकासमूलक रिपोर्टिंग और सकारात्मक समाचार रुचियों में कैसे करे, इसका निर्णय करने के लिए आत्मनियमन ही उचित है।

इंडियन ब्रॉडकास्ट फाउंडेशन (आईबीएफ) भारतीय टीवी प्रसारकों की उच्चतम संस्था है। यह भारतीय टीवी उद्योग के हितों को बढ़ावा देने के साथ-साथ टीवी प्रसारकों को एक ऐसा सांझा मंच देती है जहाँ पर वह मिलकर सर्वसम्मति से साझे हितों की प्राप्ति के लिए प्रयास करते हैं और अपनी शिकायतों का निपटारा करते हैं।

आईबीएफ ने कार्यक्रम संहिता स्वीकार की है। इसने ब्रॉडकास्टिंग कंटेंट कंप्लेंट काउंसिल को यह अधिकार दिया है कि कार्यक्रम संहिता का अनुपालन न करने वालों पर जुर्माना लगा सकती है। कुछ चैनलों पर अश्लील सामग्री प्रदर्शन के लिए जुर्माना लगाया भी गया है और टीवी के परदे पर उन्हें कार्यक्रम संहिता के उल्लंघन के लिए क्षमायाचना करने का आदेश भी दिया गया है

आईबीएफ ने कार्यक्रम संहिता स्वीकार की है। इसने ब्रॉडकास्टिंग कंटेंट कंप्लेंट काउंसिल (बीसीसीसी) को यह अधिकार दिया है कि कार्यक्रम संहिता का अनुपालन न करने वालों पर जुर्माना लगा सकती है। कुछ चैनलों पर अश्लील सामग्री प्रदर्शन के लिए जुर्माना लगाया भी गया है और टीवी के परदे पर उन्हें कार्यक्रम संहिता के उल्लंघन के लिए क्षमायाचना करने का आदेश भी दिया गया है।

बीसीसीसी टीवी चैनलों को समय-समय पर परामर्श देती रहती है कि वे अपनी प्रचार सामग्री विशेष रुप से बलात्कार की शिकार महिलाओं, एसिड हमलों की शिकार नारियों और लड़कियों तथा सामान्य रूप से नारियों और अल्पसंख्यकों को रूढ़िवादी तरीके से प्रदर्शित करने से सावधान रहें।

परंतु आत्मनियमन के यह सारे उपाय भौंडे प्रतीत होते हैं तथा आत्मनियमन का यह पूरा आदर्श पुनरीक्षण और सशक्तीकरण की अपेक्षा रखता है।

यह एक संकटपूर्ण स्थिति है। बिना किसी कानूनी बाध्यता के इस क्षेत्र में काम करने वाले सभी घटकों पर आत्मनियमन लागू करने का प्रयास एक आधा अधूरा प्रयास ही होगा, जिससे सभी चैनलों को जनता के प्रति उत्तरदाई बनाया जा सके। किसी भी कानूनी ढाँचे को इस उद्योग के लोग यह कहकर ठुकरा देंगे कि यह बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के विरुद्ध है।

मीडिया भारतीय प्रजातंत्र को पुष्ट करने का हथियार बन सके इसके लिए संचार माध्यमों को प्रभावी और सहज रूप से कार्य करने का मार्ग खोजना होगा।

इसके साथ ही अनियंत्रित सोशल मीडिया का असीम विकास भी हो रहा है, जिसमें वैयक्तिक गोपनीयता को भंग करने, सामाजिक उपद्रव फैलाने और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए संकट पैदा करने की क्षमता भी है। इन सब समस्याओं का समाधान संभवत: इसी में है कि मीडिया पर समग्र रूप से विचार करने के लिए एक 'नए मीडिया कमीशन' (एक अन्य प्रेस कमीशन) का गठन किया जाए। यही समय की मांग है। इसका अध्यक्ष उच्चतम न्यायालय के किसी कार्यरत न्यायाधीश को बनाया जा सकता है और इसके सुझाव सभी प्रतिभागियों को मानने होंगे। प्रस्तावित मीडिया काउंसिल वर्तमान प्रेस काउंसिल की अपेक्षा सही अर्थों में सभी का प्रतिनिधित्व करेगी। प्रस्तावित मीडिया काउंसिल मीडिया के सभी रूपों पर दृष्टि रखेगी और इसके पास उनके सख्त निरीक्षण और अनुशासित करने का अधिकार रहेगा।

हो सकता है, यह शीघ्र ही संभव हो जाए। इसके लिए एक प्रबल जनमत और कानून निर्माताओं की दृढ़ इच्छाशक्ति की आवश्यकता है। मोदी सरकार ने कुछ समय पूर्व ही जाली समाचार फैलाने के विरुद्ध महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। सोशल मीडिया यथा ट्विटर, फेसबुक और इंस्टाग्राम पर प्रचारित सभी जाली समाचारों पर कठोर कार्यवाही की जाएगी। सोशल मीडिया मंचों पर प्रसारित सभी सूचनाओं का स्वयमेव संज्ञान लेते हुए तथ्य अन्वेषण इकाइयां टेक्स्ट, ऑडियो क्लिप्स, वीडियो क्लिप्स अथवा चित्रों पर कार्यवाही कर सकेंगी।

हाल ही में सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की ओर से अनेक वैधानिक और नियामक सुधारों का श्रीगणेश किया गया है।

1867 के रजिस्ट्रेशन आफ बुक्स एक्ट पुस्तक पंजीकरण अधिनियम को निरस्त करने का प्रस्ताव है और उसके स्थान पर सभी हित धारकों से परामर्श करके तथा अंतर मंत्रालय विचार विमर्श के पश्चात एक नए कानून 'रजिस्ट्रेशन आफ प्रेस एंड पीरियोडिकल्स बिल 2020' के रूप में बनाने का प्रस्ताव है।

ऑनलाइन सामग्री उपलब्ध करवाने वालों तथा समाचार तथा समसामयिक विषयों पर सामग्री प्रदान करने वाले मंलों द्वारा फिल्में और दृश्य-श्रव्य कार्यक्रम उपलब्ध करवाए जा रहे हैं।

उठाए गए कदमों के प्रकाश में मोदी सरकार सभी हित धारकों से विचार-विमर्श कर रही है ताकि डिजिटल ऑनलाइन मीडिया की सामग्री को उपयुक्त नियामक व्यवस्था के अधीन लाने पर सर्वसम्मति बन सके।

संदर्भ-

1. विकिपीडिया : कंस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया-पार्ट 111 आर्टिकल 19 फंडामेंटल राइट्स, डिबेट्स इन द कंस्टिट्युएंट असेंबली ऑन फंडामेंटल राइट्स।
2. ब्रिज भूषण और अन्य बनाम दिल्ली राज्य, 26 मई 1950 समान उद्धरण: 1950 एआइआर 129, 1950 एससीआर, लेखक: एस फजल अली
3. रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य, एआइआर 1950 एससी 124
4. बंबई हाइकोर्ट के एक अधिवक्ता अभिनव चंद्रचूड़ के लिखे लेख एवं संविधान विषयों के एक लेखक मनमीत सिंह

ब्रिटेन में प्रेस

लोकतंत्र शासन का एक बहुत बुरा रूप है-लेकिन शेष रूप इससे और भी बुरे हैं। - विंस्टन चर्चिल
हम शायद सबसे पुराने और स्वतंत्र लोकतंत्र हैं। - मार्गरेट थैचर

मैं लंदन प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (1988-1995) का संवाददाता था, जब सुविख्यात वैधानिक विशेषज्ञ एवं तत्कालीन भारतीय उच्चायुक्त डॉ. एलएम सिंघवी मैग्ना कार्टा संग्रहालय आए थे और उन्होंने उस ऐतिहासिक संग्रहालय को श्रद्धांजलि दी, जिसने हमारे संविधान के संस्थापकों को इस वैधानिक पुस्तक में मूलभूत अधिकारों पर एक अध्याय सम्मिलित करने के लिए प्रेरित किया था।

मैग्ना कार्टा, (एक लैटिन शब्द) "ग्रेट चार्टर ऑफ फ्रीडम" या "रॉयल चार्टर ऑफ राइट्स", को 15 जून, 1215 को विंडसर कैसल, इंग्लैंड के पास, रनमेडे में लागू किया गया था, और जिसे अभी तक ब्रिटिश संविधान का एक अलिखित हिस्सा माना जाता है। इंग्लैंड और वेल्स के लॉर्ड चीफ जस्टिस लॉर्ड वुल्फ ने मैग्ना कार्टा को "उन उपकरणों की प्रथम शृंखला के रूप में वर्णित किया है, जिन्हें यूनाइटेड किंगडम में अब विशेष संवैधानिक दर्जा प्राप्त है"।

ब्रिटेन की पूर्व प्रधान मंत्री मार्गरेट थैचर ब्रिटेन ने यह दावा किया है कि उनका देश दुनिया का सबसे पुराना संसदीय लोकतंत्र है और उन्होंने यह दावा इसलिए भी किया है क्योंकि भारत सहित कई अन्य देशों ने संसदीय लोकतंत्र के वेस्टमिंस्टर मॉडल को अपनाया है।

मैग्ना कार्टा की भावना को बनाए रखते हुए, अभिव्यक्ति एवं बोलने की स्वतंत्रता के मूलभूत अधिकारों की रक्षा की जाती है तथा इसी प्रकार इसके आधार पर ही यूनाइटेड किंगडम में प्रेस की स्वतंत्रता की मात्र रक्षा ही नहीं की जाती, अपितु उन्हें सदियों पूर्व से सुनिश्चित किया जाता है। समय के साथ-साथ ब्रिटिश मीडिया एक ऐसे स्तर पर पहुँच गया है जिसे एक ब्रिटिश न्यायाधीश, लॉर्ड डेनिंग ने प्रसिद्ध पुस्तक 'रोड टू जस्टिस' में बताया है कि "प्रेस एक निगरानी करने वाली संस्था है और यदि इसमें कभी कोई कमी आती है तो इसके दुर्व्यवहार के लिए इसे दंडित किया जाना चाहिए।"

कुख्यात फोन हैकिंग स्कैंडल के सामने आने पर ब्रिटिश प्रधानमंत्री डेविड कैमरन को लॉर्ड जस्टिस लेवेसन की अध्यक्षता में एक सार्वजनिक जाँच की स्थापना करनी पड़ी थी।

लॉर्ड जस्टिस लेवेसन की सार्वजनिक जाँच में यह कहा गया कि इस घोटाले में फोन हैकिंग और पुलिस की रिश्वतखोरी पर भी विचार किया गया और साथ ही व्यापक ब्रिटिश मीडिया की संस्कृति, प्रथाओं और नैतिकता पर भी संज्ञान लिया गया।

रूपर्ट मर्डक के स्वामित्व वाली टैब्लॉयड न्यूज ऑफ द वर्ल्ड को फोन हैकिंग घोटाले में शामिल पाया गया, जिसने ब्रिटिश सरकार को हिलाकर रख दिया और दुनिया भर में जनता के विचारों पर बेहद प्रतिकूल प्रभाव डाला। जब घोटाले के पीछे की कहानी सामने आई तो कई हाई-प्रोफाइल प्रख्यात व्यक्तित्व इसके दायरे में आए।

लॉर्ड जस्टिस लेवेसन जाँच ने एक ऐसी कानूनी स्वतंत्र नियामक पद्धति की अनुशंसा की जिसमें मीडिया पर इसके निर्णयों को लागू करने की शक्ति थी। रिपोर्ट में ब्रिटिश मीडिया को उसके आचरण के लिए दोषी ठहराया गया था, जिसने कहा कि यह प्रायः ही निर्दोष लोगों के जीवन में "कहर ढाता है"।

ब्रिटिश साम्राज्य एवं भारतीय पत्रकारिता

अच्युतानंद मिश्र

मनीषचंद्र शुक्ल

> *"प्रेस की आजादी एक अनमोल विशेषाधिकार है जिसका त्याग कोई भी देश नहीं कर सकता।*
>
> *-महात्मा गांधी"*

भारत में पत्रकारिता के आधुनिक स्वरूप का आरंभ अंग्रेजी शासनकाल में हुआ। जल्दी ही भारत के स्वतंत्रता सेनानियों ने समाचार पत्र और पत्रिकाओं की ताकत को पहचान लिया और इनका उपयोग उसी क्रम में जनजागरण के एक उपकरण के रूप में करने की दिशा में बढ़ गए। एक पुनरावलोकन

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की आयु 190 वर्ष मानी गई है। योरोपियन जातियों का भारत में आने का सिलसिला तो 1498 से शुरू हो गया था लेकिन 23 जून 1757 को प्लासी के युद्ध में लार्ड क्लाइव को छल से मिली जीत के बाद से ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन भारत में स्थापित हुआ जो सौ साल तक कायम रहा। 1857 के भारतीय विद्रोह को अंग्रेज शासकों के विरुद्ध प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के रूप में इतिहास में दर्ज है। ब्रिटिश साम्राज्य का विशेष तौर से ईस्ट इंडिया कंपनी के दौर का इतिहास और अंग्रेजों के अत्याचार पर सबसे प्रामाणिक पुस्तक 'इंडियन वार ऑफ इंडिपेंडेंस 1857' विनायक दामोदर सावरकर की है जिन्होंने 1857 के युद्ध को पहला भारतीय स्वतंत्रता संग्राम घोषित किया था। 1858 में ब्रिटेन की रानी विक्टोरिया ने एक उद्घोषणा करके कंपनी की सत्ता को बर्खास्त कर भारत में ब्रिटिश सरकार की सत्ता को कायम कर दिया। ईस्ट इंडिया कंपनी के शासकों के अत्याचारों की अनेकों अवर्णनीय कहानियां स्वयं अंग्रेज लेखकों और इतिहासकारों ने लिखी हैं। पंडित सुंदरलाल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज' में अंग्रेज विद्वान हर्बट स्पेंसर, डॉक्टर रसेल आदि लेखकों की पुस्तकों को उद्धृत करते हुए लिखा है: "ईस्ट इंडिया कंपनी के भारतीय शासन को आरंभ से ही जबरदस्त पापों ने रंग रखा था। ..... लगातार अनेक पीढ़ियों तक, बड़े से बड़े सिविल और फौजी अफसरों को लेकर छोटे से छोटे कर्मचारियों तक कंपनी के मुलजिमों का एकमात्र महान लक्ष्य और उद्देश्य यह रहता था कि जितनी जल्दी हो सके, यथासंभव बड़ी से बड़ी पूँजी इस देश से निचोड़ ली जाए।.... पराजित प्रजा को बुरे से बुरे और अय्याश देशी नरेशों के बड़े से बड़े जुल्म इतने घातक मालूम न होते थे, जितने कंपनी के छोटे से छोटे जुल्म।"[1] भारत में कंपनी के अत्याचारों, लूट, हत्या और दमन के विरुद्ध खड़ा होने वाला कोई समाचार पत्र नहीं था। लोक जागरण के लिए संगठित प्रयास करने वाली संस्थाएं नहीं थी। ब्रिटेन के समाचार पत्र, जैसे प्रमुख दैनिक 'लंदन टाइम्स' पूरी तरह से कंपनी और उसके शासकों के अत्याचारों का खुला समर्थन कर रहा था। ब्रिटेन की संसद में भी कई सांसदों ने ईस्ट इंडिया कंपनी के गवर्नरों के खिलाफ गंभीर आरोप लगाए थे लेकिन प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद सत्ता ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथों में ले लिया। ब्रिटिश साम्राज्य का यह पहला चरण था।

"भारत में पत्रकारिता का प्रादुर्भाव इसी पृष्ठभूमि में हुआ। प्रारंभिक समाचार पत्रों का प्रकाशन ईस्ट इंडिया कंपनी के असंतुष्ट कर्मचारियों के द्वारा किया गया। समाचार पत्रों के प्रकाशन की ओर वे इसलिए प्रवृत्त हुए क्योंकि वे अपनी घुटन को अभिव्यक्ति देना चाहते थे। कंपनी के अधिकारी यहाँ न केवल व्यक्तिगत व्यापारिक गतिविधियों से धन संचय करते थे, वरन् छोटे कर्मचारियों को दबाकर भी रखना चाहते थे ताकि उनकी अवांछनीय गतिविधियों

पर पर्दा पड़ा रहे। इन प्रारंभिक अंगरेज पत्रकारों को न केवल कंपनी का कोपभाजन बनना पड़ा वरन् वे मानसिक क्लेश के भी शिकार हुए।"[2]

ईस्ट इंडिया कंपनी को इस बात का डर कम था कि भारत के लोग इन पत्रों के माध्यम से उसकी बुराइयों को जानेंगे तो क्या होगा, बल्कि इस बात का डर अधिक था कि यदि यह खबर इंग्लैंड तक पहुँच गई तो उनके सारे सपने टूट जाएंगे और उन्हें वापस बुला लिया जाएगा। मार्टिन वाकर ने कहा है-'समाचार पत्र एक राष्ट्र की दिनचर्या का इतिहास होता है।' यानी अखबार बिना इतिहास लिखे ही इतिहास लेखन का कार्य करता जाता है और तत्कालीन समय की स्थिति को दर्ज करता जाता है। ईस्ट इंडिया कंपनी के कुछ कर्मचारियों की असंतुष्टि से जो पत्र निकले उन्होंने वास्तव में भारतीय पत्रकारिता की ऐतिहासिक नींव के रुप में कार्य किया, आधारभूमि को निर्मित किया। इसका एक प्रमाण यह हुआ कि ईस्ट इंडिया कंपनी की नौकरी छोड़कर विलियम बोल्ट्स ने कोलकाता से 1768 में समाचार पत्र निकालने का प्रथम प्रयास किया लेकिन जल्द ही इसका परिणाम बोल्ट्स को भुगतना भी पड़ा। परंतु बोल्ट्स की यह शुरुआत और ईस्ट इंडिया कंपनी से अन्य असंतुष्ट कर्मचारियों की पहल ने पत्रकारिता के बहुत सारे बीजों को अंकुरित होने का स्थान दे दिया। समाचार पत्र निकालकर आमजन तक शासन की या देश की स्थिति को बयां करने के सपने को साकार करने की स्थिति में ला दिया। इसी का परिणाम रहा कि 29 जनवरी 1780 को जेम्स आगस्टस हिक्की ने 'बंगाल गजट' और 'केलकटा जनरल एडवरटाइजर' का प्रकाशन किया। इन पत्रों में हिक्की मुख्य रूप से ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों की व्यक्तिगत जिंदगी का भंडाफोड़ करते थे। किंतु, यह व्यक्तिगत भी सार्वजनिक या पत्रकारीय सिद्धांतों के अनुसार सही तब लगने लगा जब वह व्यक्ति कहीं न कहीं से भ्रष्ट या अनैतिक होता था। "इस युग के समाचार पत्रों में इसके अलावा संसदीय समाचार, संपादकीय लेख आदि भी होते थे। इनकी शैली कुछ इस तरह की थी कि ये अंग्रेजों को पठनीय लगे। यह एक तरह से पाठक वर्ग की अभिरुचि के अनुरूप पत्र की लेखन शैली विकसित करने का गंभीर प्रयास था। प्रकाशित खबरों में इंग्लैंड की घटनाएँ, सैनिकों की गतिविधियाँ, भारतीय शासकों की खबरों के अतिरिक्त लैटिन अमेरिका, चीन आदि की खबरें भी प्रमुखता से छापी जाती थी। अखबारों में पाठकों के पत्र सामाजिक समाचार और फैशन संबंधी विवरण छापने संबंधी परंपरा का प्रारंभ इसी युग में हुआ।"[3]

HICKY's
BENGAL GAZETTE;
OR THE ORIGINAL
Calcutta General . Advertiser.

A Weekly Political and Commercial Paper, Open to all Parties, but influenced by None,

From Saturday December 9th to Saturday December, 16th 1780. No. [XLVII]

AN IMITATION.

So wife a pair was never seen,
So justly formed to teach by nature;
M——k, excelling fo in men
Peter in every graceful feature:

O how happy fage and Lover
Where kindred genious each discover;
For M——k lure the muſes form'd
Minerva trained the ſapient Peter.

So tame their works, all children thence
Will early learn the talk of duty;
At ſleep the Boys will draw in ſenſe,
Sleeping the Girls, increaſe in beauty.

O how charming to inherit,
Dullneſs, and ſee it paſs for ſpirit;
Thus while you live, may fortune give,
Each bleſſing due to real merit.

IMPROMPTU.

For The Original, Bengal Gazette.
By Letters from Madras, 17 Nov. 80.

SIR EYRE COOTE's arrival made us very happy, the troops are a ſeaſonable ſupply, tho' not a force equal to our exigencies.

The ſuſpenſion of Mr. Whitehill by the Supreme Council, tho' undoubtedly illegal on the defenſive, againſt a Country power whom we uſed to deſpiſe, and of whoſe proweſs you ſtill continue to think ſo highly.

Without Hyder is alarmed by the attack on his own Country, orders having been ſent to Gen'l Goddard to carry the war into Myſore, I am afraid he muſt continue Omnipotent in the Carnatic.

Quere. Would not an Engliſh Admiral be more in his Element ſmoaking a pipe of Virginia on the QUARTER DECK, than at a filthy DURBAR ſurrounded by Pimps Courtezans Cotamites and dancing Girls.

Yours,
Tom Bowline.

Mr. HICKY ſuppoſes the following is the Impromptu rejected by the Meſſ. R——d and M——k. But judging of it by the admired works of Butler, and Swift, and the beſt dramatic writers; He thanks his correſpondent inſtead of affronting him, by declaring the Extempore to be indecent.

An Extempore on ſeeing Meſſ. R——d's, and M——k's Advertiſements.

" R------D take my advice and whatever brides
Pray let your News-paper alone,
Mr. Hicky's toaſters for all our B——s
So keep your Gazette for your own.

MR. HICKY,

THE ſuperiority of your paper over that of your rivals, is manifeſt and acknowledged by all who have read your late Gazettes.——Let any impartial perſon not a ſlave to G——t, or freaking to obtain a contract, only compare the Types of the two Papers, and give a fair verdict. The Original Bengal Gazette from the ſmallneſs of the Letter, contains conſiderably more Matter than the India Gazette; And as to the ſubject and quality of your publications, having greatly a preference, let any perſon of Literary Taſte, peruſe the four numbers of the MONITOR, (that moſt ſtupid and egregious performance) and decide.

Does the writer of that Paper mean to obtrude his Confin'd and Vulgar Opinions as

FACSIMILE 1. Front page of Hicky's Bengal Gazette, 16 December 1780

साभार : https://rajboardexam.in/samvad-setu-hindi-class-12/

हिक्की की पत्रकारिता से असहमत होने के बावजूद यह तो कहा ही जा सकता है कि हिक्की ने भारत में पत्रकारिता को प्रतिरोध का पर्याय बनाने में प्राथमिक आहुति दी। साथ ही यह भी विचारणीय बिंदु है कि ब्रिटिश साम्राज्य के सभी कर्मचारियों या अधिकारियों को विरोध वाली एक ही लाठी से नहीं हाँका जा सकता। हिक्की की पत्रकारिता का प्रतिकार करने के लिए पीटर रीड और बी. मेनजेक ने 18 नवंबर 1780 को साप्ताहिक 'इंडियन गजट' का प्रकाशन प्रारंभ किया। कुछ समय बाद इस पत्र का स्वामित्व द्वारकानाथ टैगोर के हाथ में आया और यह साप्ताहिक से दैनिक में तब्दील हो गया। ब्रिटिश सरकार का मंतव्य भरतीय पत्रकारिता को मजबूत या मार्गदर्शित करना नहीं था बल्कि अपने विरुद्ध खड़े होने वाले किसी भी वृक्ष के अंकुरण को नष्ट करना था। ब्रिटिश साम्राज्य की सोच को अंग्रेजी शासक मेटकाफ की जीवनी के इस उदाहरण से समझा जा सकता है-

"उन दिनों हमारी ये नीति थी कि भारत के लोगों को जहाँ तक हो सके बर्बरता और अंधकार में रखा जाए... और देशी जनता में ज्ञान फैलाने के किसी भी प्रयत्न का उन दिनों बड़ा कड़ा विरोध किया जाता था.... कैप्टन सिडेनहाम ने निजाम की एक इच्छा पूरी करने के उद्देश्य से कि वे आधुनिक विज्ञान के कुछ प्रयोगों को देख सकें, कुछ चीजें भेंट की, उनमें एक एअर पंप, एक छापाखाना और एक आधुनिक योद्धा का मॉडल था। चीफ सेक्रेटरी को भेजे गए अपने पत्रों में कैप्टन ने इस बात का उल्लेख किया था, परिणामत: उन पर आरोप लगाया गया कि उन्होंने एक देशी शासक के हाथ में छापेखाने जैसी खतरनाक वस्तु रख दी थी।"[4]

अकबर इलाहाबादी का मशहूर शेर है, "खींचो न कमान, न तलवार निकालो, जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो।" अखबार रूपी तोप के मुँह से निकलने वाले

इन धधकते हुए शाब्दिक गोलों की ज्वाला को शिथिल करने और इसे सुचारु रूप से जारी रखने का काम किया लार्ड हेस्टिंग्स ने। ब्रिटिश साम्राज्य के द्वारा बनाए गए इन सशक्त कानूनों को देखते हुए लार्ड हेस्टिंग्स ने प्रेस संबंधी कुछ नए कानून बनाए वह निम्नलिखित है: "किसी प्रकार की ऐसी खबर न प्रकाशित की जाए तो कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स, ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों, कौंसिल के सदस्यों, सुप्रीम कोर्ट के जजों तथा कलकत्ते के बड़े पादरी के सार्वजनिक कार्य अथवा प्रतिष्ठा के विरुद्ध हो। 2. किसी के धार्मिक विश्वासों और भावनाओं पर चोट करने वाली तथा भारतीय प्रजा में आतंक की सृष्टि करने वाली बातों का प्रकाशन न किया जाए, 3. किसी के व्यक्तिगत आचरण पर आघात करने वाली खबरें न छापी जाएँ। 4. किसी विदेशी पत्रिका से ऐसी बातों को उद्धृत कर पुन: प्रकाशित न किया जाए जो असंतोष की सृष्टि का कारण बनें।"[5]

इन सभी कानूनों के पीछे ब्रिटिश साम्राज्य अपनी स्थापना को और मजबूत करना चाहता था। इस मजबूती में जो रुकावट का कारण बन रहा था उसे नष्ट कर रहा था। श्री कृष्णबिहारी मिश्र लिखते हैं, "हिंदी पत्रकारिता के आरंभिक अध्याय की चर्चा करने के पूर्व आवश्यक है देश की उन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का उल्लेख, जिनके बीच भारतीय पत्रकारिता का निर्माण हुआ है।... अंग्रेजों के मन में भारतीय भूमि और भारतीयता के प्रति किसी प्रकार की आत्मीयता न थी, इसलिए स्वाभाविक था कि इस उर्वर भूमि को वे पूरी निर्ममता से लूटते। इतिहास का साक्ष्य है कि भारतवर्ष को लूटने में अंग्रेजों ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी। इस प्रकार उन्होंने अटूट धन-संपत्ति प्राप्त कर ली, जिसने आगे चलकर उनके लिए एक बड़ी पूँजी का काम किया और जिसके बल पर इंग्लैंड स्टीम इंजिन चलाने में तथा 19वीं सदी में दुनिया में अपने औद्योगिक प्रभुत्व को स्थापित करने में सफल हो सका।"[6]

अंग्रेज पत्रकारों के द्वारा भारत में शुरू की गई पत्रकारिता और ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा पत्रकारिता पर लगाए गए प्रतिबंध, इन दोनों में कुछ सवाल खड़े किए जैसे-भारतीय जनमानस को समझने के लिए पत्रकारिता

उदन्तमार्तण्ड

मंथन

साभार : *https://rajboardexam.in/samvad-setu-hindi-class-12/*

एक बड़ा माध्यम है। ईस्ट इंडिया कंपनी की व्यापारिक नीति लूट में बदल गई, ब्रिटिश शासकों की तात्कालिक स्थिति को पत्रकारिता के माध्यम से सबके सामने लाया जा सकता है, ब्रिटिश साम्राज्य भारत एवं भारतीय जनता के पक्ष में नहीं है आदि। इन सवालों ने भारत के तत्कालीन बुद्धिजीवियों के मन को उद्वेलित किया। अत: भारत के इन बुद्धिजीवियों के मन में ये विचार आया कि भारतीय भाषाओं के माध्यम से यदि पत्रकारिता प्रारंभ की जाए तो उससे ऊपर वर्णित प्रश्नों का समाधान भी हो सकता है ताकि भारतीय ही नहीं बल्कि अन्य देश भी ब्रिटिश साम्राज्य की वास्तविकता को जान सके। ब्रिटिश साम्राज्य की विद्रूपताओं ने भारतीयों के मन में दबी हुई आग को हवा देने का कार्य किया। ब्रिटिश साम्राज्य की अप्रत्यक्ष रूप से जहाँ मुखालफत हो रही थी अब उसने सीधा रूप अख्तियार कर लिया। 1857 अर्थात् स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम इन्हीं सबका परिणाम साबित हुआ। प्रथम संग्राम को खड़ा करने में भारतीय पत्रकारिता ने बड़ी भूमिका निभाई। भारतीय पत्रकारिता पर अपनी चेतनामयी दृष्टि रखने वाले कृष्णबिहारी मिश्र लिखते हैं, "1857 ई. में मेरठ में प्रथम भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का श्रीगणेश हुआ। उक्त आंदोलन की असफलता और असफलताजनित अवसाद की संक्षिप्त चर्चा आगे प्रसंग में की जाएगी। यहाँ इतना ही उल्लेख करना है कि इन्हीं राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में भारतीय पत्रकारिता का आरंभिक अध्याय निर्मित हुआ है। इसी सांस्कृतिक संक्रमण के बीच हिंदी पत्रकारिता का उदय भी हुआ है।"[7]

ब्रिटिश सरकार ने समाचार पत्र और मुद्रण संबंधी नए कानून बना दिए थे। इन कानूनों के तहत समाचार पत्र प्रकाशित करने से पूर्व भारत सरकार से लाइसेंस लेना अनिवार्य था। यह प्रक्रिया जितनी आसान दिख रही थी उतनी थी नहीं।

दिलों में जख्म है, तलवों में जिनके छाले हैं।

उन्हीं के दम पे जमाने में ये उजाले हैं।।

इन पंक्तियों के भावार्थ को चरितार्थ करते हुए 30 मई 1826 को पं. युगल किशोर शुक्ल ने 'उदंत मार्तण्ड' के प्रवेशांक में कहा, "इस पत्र का प्रकाशन हिंदुस्तानियों के हित हेतु हुआ है" और यह साबित कर दिया कि अनेक प्रताड़नाओं के बावजूद भारतीय पत्रकारिता और स्वतंत्रता रुकने वाली नहीं है। 'उदंत मार्तण्ड' व्यक्ति विशेष की आलोचना करने की बजाए पत्रकारिता के नैतिक मूल्यों का संरक्षण करते हुए देश विरोधी कार्य-प्रणालियों का प्रतिरोध करता है। यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ नहीं बल्कि ईस्ट इंडिया कंपनी के असंगत उद्देश्यों के प्रतिरोध में खड़ा हुआ था। कंपनी के भ्रष्टाचार के खिलाफ खड़ी हुई थी। जहाँ जनसामान्य की स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर आँच आएगी तो वहाँ पत्रकारिता खड़ी होगी। प्रतिरोध का यही स्वर ही पत्रकारिता का प्राणतत्व है।

लॉर्ड मैकाले की शिक्षा नीति का उद्देश्य था भारतीयों के मन से अपनी भाषा - संस्कृति के गौरव और अपनी सभ्यता की श्रेष्ठता को निकालकर उनके मन में आत्मग्लानि पैदा करना। इसलिए उन्होंने शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने पर जोर दिया तथा भारतीय भाषाओं को पीछे रखा। संस्कृतीकरण की इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप ही राजा राममोहन राय, रामानंद चटर्जी, केशवचन्द्र सेन, दादा भाई नौरोजी जैसे लोग अंग्रेजी प्रगतिशीलता के प्रतीक बने। ये अंग्रेजी पढ़े-लिखे विद्वान एक तरफ ब्रिटिश साम्राज्य की नीतियों के समर्थक थे तो दूसरी तरफ भारतीयता की भावना भी कम नहीं थी। 'अंग्रेजी शिक्षा ने देश के संपूर्ण सांस्कृतिक परिवेश में परिवर्तन की अपेक्षा उत्पन्न की। उक्त परिवर्तन की अपेक्षा रखने वाले भारतीयों के दो वर्ग थे। उनकी दो स्वतंत्र दृष्टियाँ थीं। एक वह जिसने आधुनिकता को फैशन के रूप में अपनाया और अंग्रेजियत के रंग में रंगकर भारतीयता को अन्यथा दृष्टि से देखने लगा। दूसरा वर्ग अपने देश को यूरोपीय जगत के ज्ञानपक्ष से-उसकी शिक्षा, राजनीति, अर्थनीति और विज्ञान से-आलोकित करने का आकांक्षी था। भारतीय नवजागरण के पुरस्कर्ता इसी वर्ग के थे। वे अंग्रेजियत के पीछे भागे नहीं थे, बल्कि अपनी परंपरा को आधुनिक संदर्भ में प्रतिष्ठित करने के लिए उसे एक नई अर्थवत्ता देना चाहते थे। इसके लिए आवश्यक था पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति से अपने को एक हद तक संपृक्त करना। इस वर्ग के ज्येष्ठ प्रतिनिधि राजा राममोहन राय थे। उनके साथ एक ऐसी स्वस्थ परंपरा आविर्भूत हुई जिसने आधुनिक भारत ही नहीं संपूर्ण मानव जाति को उपकृत किया।"[8]

लॉर्ड मैकाले की शिक्षा नीति का उद्देश्य था भारतीयों के मन से अपनी भाषा - संस्कृति के गौरव और अपनी सभ्यता की श्रेष्ठता को निकालकर उनके मन में आत्मग्लानि पैदा करना। इसलिए उन्होंने शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने पर जोर दिया तथा भारतीय भाषाओं को पीछे रखा। संस्कृतीकरण की इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप ही राजा राममोहन राय, रामानंद चटर्जी, केशवचन्द्र सेन, दादा भाई नौरोजी जैसे लोग अंग्रेजी प्रगतिशीलता के प्रतीक बने

राजा राममोहन राय की प्रेरणा से ही 'संवाद कौमुदी', 'मिरातुल अखबार', 'बंगदूत', 'तत्वबोधिनी सभा' जैसे महत्त्वपूर्ण पत्र प्रकाशित हुए। चूँकि राजा राममोहन राय अंग्रेजी प्रगतिशीलता के प्रतीक थे इसलिए उन्होंने इन पत्रों के माध्यम से समाज की विसंगतियों के खिलाफ आवाज उठाई। साथ ही, उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य की अनैतिकताओं के विरोध में भी आवाज बुलंद की तथा धर्म-संस्कृति की रक्षा के प्रयास भी किए।

"उन दिनों भारतीय समाज की पहचान अशिक्षा, अज्ञान, अंधविश्वास, बीमारी, भुखमरी, कुप्रथाएँ, कुसंस्कार, कूपमंडूकता आदि विकारों से ग्रस्त समाज की थी। ईस्ट इंडिया कंपनी का शिंकजा कस रहा था और गुलामी के अभिशाप से भारतीयों का मनोबल पस्त था। हिंदू विधवाओं को सती प्रथा के नाम पर पति की चिता में जिंदा झोंक देने की बर्बरता भारतीय समाज के मानसिक पतन की पराकाष्ठा ही मानी जाएगी। यद्यपि यह कोई प्रथा के रूप में स्थापित नहीं थी। लाखों मामलों में कहीं एक घटना ऐसी होती थी। फिर भी राजा राममोहन राय की 'संवाद कौमुदी' ने अमानवीय सती प्रथा के विरुद्ध जिहाद छेड़ा।"[9] इसी तरह 'तत्वबोधिनी पत्रिका' के माध्यम से वे भारतीय समाज, धर्म और संस्कृति के रक्षण की बात करते हैं तथा अंग्रेजों द्वारा भारतीयों के शोषण की बात को भी उद्घाटित करते हैं। अंग्रेज सरकार भारतीयों से कैसा भेद कर रही है, इसका एक उदाहरण उद्धृत है, "जिस पद पर एक अंग्रेज काम करता है उसे एक हजार वेतन दिया जाता है, परंतु उसी पद पर काम करने वाले भारतीय को केवल 100-150 रूपये मिलते हैं। इस प्रकार हम अपनी स्वतंत्रता कम दामों में बेच रहे हैं। पत्रिका ने खेतिहर मजदूरों, कामगारों की समस्याओं को भी उजागर किया। समाज सुधार और कुप्रथाओं को बंद करने की मुहिम चलाई। इसने विधवा विवाह विषय पर ईश्वरचंद्र विद्यासागर के लेख प्रकाशित किए और समाज को नई सोच की ओर मोड़ा।"[10]

भारतीय भाषा की पत्रिकाओं में हिंदी के अलावा अन्य राज्यों की पत्रकारिता की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण रही है। मराठी के आदि पत्रकार बालगंगाधर शास्त्री जांभेकर ने 1832 में 'दर्पण' का प्रकाशन किया। इस पत्र का ध्येय वाक्य ही था, "देश की समृद्धि हो और लोगों का कल्याण करने हेतु स्वतंत्रतापूर्वक और खुले रूप में विचार करने की प्रवृत्ति बढ़े।" इसी तरह तमिल भाषा समाचार पत्र 'स्वदेश मित्रन', 'देशहितैषी' हो या मलयालम का समाचार पत्र 'मलयालम मनोरमा' हो। इन पत्रिकाओं ने भारतीय जनमानस में जागृत जगाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इन पत्रों की भारत में स्वेदशी आंदोलन को खड़ा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अक्टूबर 1882 में 'देश हितैषी' ने एक पत्र छापा। "जितनी वस्तु इस शरीर की रक्षा, पोषण व कार्य में आवश्यक हो, सब देश की ही बनी होय। यहाँ तक विचार रखिए कि अन्य देश का बना हुआ सूत तक वस्त्रों में न हो। द्वितीय जितने पुत्र होयें उन प्रत्येक को एक-एक प्रकार की शिल्प विद्या में निपुण

कराकर देशीय या विलायतीय यंत्रालयों में निज विद्या की कारीगरी सिखलाइए।"[11] इनके अलावा अन्य राज्यों से भी वहाँ की भाषाओं में पत्रिकाएँ निकल रही थीं। इन सभी का उद्देश्य ईस्ट इंडिया कंपनी की अनैतिकताओं के विरुद्ध आवाज उठाना और भारतीय लोगों के अधिकारों की रक्षा करना था। भारतीय भाषाओं की इन पत्रों ने सामाजिक चेतना की बात करते हुए स्वतंत्रता संग्राम की एक लहर को जन्म दिया। जिसके परिणामस्वरूप 1857 में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का बिगुल बजा। एक तरह से यह ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिरोध में पहला लेकिन ठोस कदम था, स्वाधीनता आंदोलन की चेतना को जगाने का। अक्षर और शब्द की इस यात्रा ने भारतीय लोगों के मन में चिंगारी पैदा कर दी। इस बात का जीता जागता नमूना था तत्कालीन भारतीय पत्रकारिता। ध्यान देने योग्य एक बात और है। तत्कालीन भारत में निकलने वाली सभी पत्रिकाएँ ईस्ट इंडिया कंपनी का विरोध या स्वाधीनता आंदोलन का समर्थन नहीं कर रही थीं बल्कि इन परिस्थितियों में भी वे अंग्रेजों की पिछलग्गू बनी हुई थीं। जैसे 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'स्टेट्समैन', 'पायनियर' आदि। ये पत्र एक तरह से औपनिवेशिक शासन के पक्षधर ही नहीं, उनकी नीतियों का गुणगान करने वाले भी थे।

भारतीय पत्रकारिता की कहानी भारतीय सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय विकास की कहानी है। पत्रकारिता के साथ-साथ इन सबकी भी वृद्धि हुई है या इन सबकी वृद्धि में भारतीय पत्रकारिता भी विकसित हुई है। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को गति देने में पत्रकारिता की बड़ी भूमिका रही है। पत्रकारिता ने लागों की एकजुटता और सामूहिकता बनाए रखने में बड़ी भूमिका का निर्वहन किया। हालांकि उस समय संसाधन बहुत सीमित थे और लोग भी आपस में बंटे हुए थे।

सर सैय्यद अहमद खां अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों के साथ थे। यह सच है कि उन्होंने 1905-06 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय की स्थापना की और मुसलमानों को एक प्रगतिशील अंग्रेजी शिक्षा देने के लिए उनको प्रगतिशील दायरे में लाना चाहते थे। मुसलमानों और हिंदुओं के बीच खाई खोदने का कार्य सर सैय्यद अहमद खां के माध्यम से अंग्रेजों ने किया। ऐसे में पूरी पत्रकारिता का उद्देश्य ही अंग्रेजों की उस नीति के खिलाफ था जिसका उद्देश्य भारतीय संस्कृति, सभ्यता और परंपराओं को तोड़ने में अंग्रेजों ने हर संभव कोशिश की। पत्रकारिता का दूसरा उद्देश्य स्वाधीनता की प्राप्ति के साथ सामाजिक कुरीतियों को खत्म करना भी था। ऐसे में सांस्कृतिक चेतना और राष्ट्रीय भावना जगाने का कार्य केशवचन्द्र सेन, दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद आदि नायकों ने पत्रकारिता को स्वाधीनता आंदोलन का हथियार बनाकर लोक जागरण के लिए कार्य किया। स्वामी दयानंद सरस्वती ने वेदों की व्याख्या और हिंदी प्रचार के साथ-साथ ब्रिटिश साम्राज्य की भर्त्सना की। दयानंद का विश्वास था, "विदेशी शासन चाहे कितना भी अच्छा हो, वह स्वदेशी शासन से किसी भी दृष्टि से अच्छा नहीं हो सकता।" केशवचंद्र सेन जब स्वामी जी की भेंट हुई तो उन्होंने स्वामी जी को हिंदी भाषा में प्रवचन देने की बात कही। स्वयं केशवचंद्र सेन ने भी अपने साप्ताहिक पत्र 'सुलभ समाचार' में भारत की राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने के लिए राष्ट्रभाषा का प्रश्न उठाया और हिंदी की व्यापकता के पक्ष में अपनी बात कही। स्वामी दयानंद और केशवचंद्र सेन जैसे राष्ट्रीय नायक जानते थे कि ब्रिटिश साम्राज्य की वास्तविकता को सामने लाने के लिए एवं भारतीय जनमानस में स्वाधीनता के अंकुरण को प्रस्फुटित करने के लिए हिंदी एक बड़ा माध्यम है। हिंदी के प्रचार से सिर्फ मातृभाषा का प्रचार ही नहीं हो रहा था बल्कि आमजन में सांस्कृतिक चेतना और राष्ट्रीय भावना दोनों का उदय हो रहा था। सांस्कृतिक संप्रेषण और राजनीतिक संप्रेषण के संबंध के बीच सेतु का काम कर रहे थे तत्कालीन सामाजिक आंदोलन के उन्नायक। सामाजिक विकास और राष्ट्रीय एकता के साथ-साथ नवीन पत्रकारिता को विकसित करने में भी स्वामी विवेकानंद, बंकिमचन्द्र चटर्जी तथा अरविंद जैसे विद्वानों की बड़ी भूमिका रही। विवेकानंद यह जान चुके थे कि राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय एकीकरण भारतीय परिप्रेक्ष्य में यूरोपीय प्रक्रिया से भिन्न रूप से ही खड़ा हो सकता है। अतः उन्होंने संस्कृत और हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी का ज्ञान भी उचित समझा। वे लिखते हैं, "उन्नति की पहली शर्त है स्वाधीनता। मनुष्य को जिस प्रकार विचार और वाणी में स्वाधीनता मिलनी चाहिए, वैसे ही उसे खान-पान, रहन-सहन, विवाह आदि हर-एक बात में स्वाधीनता मिलनी चाहिए-जब तक कि उसके द्वारा दूसरों को कोई हानि नहीं पहुँचती"।[12]

ब्रिटिश साम्राज्य के इस दौर में सामाजिक आंदोलनों के ये प्रणेता अनेक पक्षों से लड़ाई लड़ रहे थे। अपने प्रवचनों के माध्यम से भारतीय पत्रकारिता को हथियार बनाकर भारतीय स्वतंत्रता, सामाजिक रूढ़ियां और अंधविश्वास, शिक्षा का प्रचार-प्रसार, राष्ट्रीय भावना की शक्तियों को सिंचित कर

वर्गणीचे दर.
साहिना अगाऊ. १
फुरकळ अंकास अर्धा आणा.
वर्गणी आल्या खेरीज अंक रवाना केला जाणार नाहीं.

केसरी.

जाहिरातीचे दर.
लेळा ओळी किंवा त्याचे आंत एक रुपया
दुसरे खेपेस निम्मे आकार पडेल.
व्यापारी लोकांचे सांकेतिक ता अलहिदा ठराव करण्यांत येईल.

स्थिति नो रे दृष्या क्षणमपि मदांधेक्षणसखे गजश्रेणीनाथ त्वमिह जटिलायां वनभुवि ।
असौ कुंभिभ्रांत्या खरनखरविद्रावितमहा-गुरुग्रावग्रामः स्वपिति गिरिगर्भे हरिपतिः ॥

वर्ष १. पुणें:—मंगळवार तारीख ४ जानेवारी १८८१. अंक १,

आज मुंबई इलाख्यांत इतकी मराठी वर्तमानपत्रें विद्यमान असतां व या शहरांत ही तीन चार चालत असतां, नव्या वर्तमानपत्राची काय जरूर आहे हा विचार आमच्या वाचकांच्या सकृद्दर्शनीं मनांत येणारा आहे. वास्तव पाहतां या पत्राचा उद्देश लोकांस कळविणे अवश्य आहे. योग आहे. एक हा की, त्यांनीं आपले काम निःपक्षपातपणें व निर्भीडपणानें बजावलें असतां सरकारी अधिकाऱ्यांवर मोठा दबदबा राहतो. रस्तोरस्तीं शर्वी दिवे लागलेले असल्यानें व पोलिसांची गस्त सारखी फिरत असल्यानें जो उपयोग होत असतो, तोच ज्या ज्या जागीं वर्तमानपत्रकर्त्यांची लेखणी सदोदित चालू

साभार : https://twitter.com/aparanjape/status/1213524502883131392

विसंगतियों के विपक्ष में सघर्ष कर रहे थे। ईश्वरचंद्र विद्यासागर शिक्षा संबंधी एवं स्त्री शिक्षा संबधी प्रचार पर अधिक बल दिया। वे संस्कृत के पंडित तो थे ही साथ ही समाज में व्याप्त विद्रूपताओं के भी मर्मज्ञ थे। विधवा विवाह और पुनर्विवाह आंदोलन को सक्रियता देने में उनकी बहुत बड़ी भूमिका है। उनके पांडित्य के अनुरूप उनका व्यक्तित्व भी विशिष्ट था। विद्यासागर के इस सामाजिक कार्यों की प्रशंसा स्वयं रामकृष्ण परमहंस ने की है। ईश्वरचंद्र विद्यासागर एक समाज मनीषी और शिक्षाविद के रूप में जाने जाते हैं। वहीं बंकिमचंद्र चटर्जी एक महान साहित्यकार के साथ-साथ राष्ट्रीय प्रणेता के ऋषि की छवि के रूप में समाने आते हैं। बंग-भंग से उद्वेलित होकर 'वंदेमातरम', 'संध्या', 'नवशक्ति' और 'युगांतर' जैसे समाचार पत्रों का प्रकाशन हुआ। इन पत्रिकाओं ने राष्ट्रीय चेतना, प्रचार तथा स्वतंत्रता आंदोलन को गति देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। अंग्रेजी दैनिक 'वंदेमातरम' में अरविंद घोष ने लिखा है, "हमें केवल केंद्रीय सत्ता के रूप में संगठित नहीं होना है, केवल राष्ट्रीय जीवन की सभी शाखाओं को हाथ में नहीं लेना है बल्कि नौकरशाही के प्रतिरोध का मुकाबला करना है और अपने पर से उसके नियंत्रण को समाप्त करना है, यदि तुरंत नहीं तो एक-एक करके हमें सुरक्षात्मक प्रतिरोध संगठित करना है। एक राष्ट्र के रूप में हमारी तात्कालिक समस्या यह नहीं है कि कैसे प्रबुद्ध और सुसूचित बनें या कैसे समृद्ध और उद्यमी बनें बल्कि आसन्न राष्ट्रीय अवसान से कैसे उभरें, कैसे खुद को संस्थापित और जीवंत बनाएँ। शांतिपूर्ण मार्ग का अनुसरण करके हम विधि अथवा कार्यपालिका के विरुद्ध कार्यवाही करें और धैर्य के साथ कानूनी परिणामों को स्वीकार करें।"[13]

पत्रकारिता की आधुनिक विधा को भारतीयों ने मुख्यत: ब्रिटेन के पत्रकारों से ही अपनाया था लेकिन लोकचेतना जाग्रत करने, स्वाधीनता संग्राम में प्रतिरोध के सशक्त हथियार के रूप में प्रयोग करने का अभियान बिल्कुल अनूठा था। 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म के समय जिन राजनेताओं-बुद्धिजीवियों को आमंत्रित किया गया था, उनमें अनेक संपादक-प्रकाशक अथवा उनके प्रतिनिधि भी सम्मिलित थे। प्रमुख लोगों में 'इंडियन मिरर' के संपादक नरेन्द्रनाथ सेन, 'हिंदू' के संपादक जी. सुब्रह्मण्य अय्यर, 'मराठा और केसरी' के प्रतिनिधि श्रीआम्टे और जी. आगरकर 'स्पैक्टेटर' के प्रतिनिधि बी. एन. मलवारी के अतिरिक्त 'ट्रिब्यून', 'हिंदुस्तान', 'इंडियन यूनियन', 'क्रैसंट' के संपादक भी उपस्थित थे। कांग्रेस के जन्म के बाद भारतीय समाचार पत्रों की प्रसार संख्या और वाणी की शक्ति में तेजी से विकास शुरू हुआ। भारतीय राष्ट्रवाद और भारतीय पत्रकारिता दोनों में सबसे अधिक तेजी 20वीं शताब्दी के पहले दशक से शुरू हुई थी। जहाँ एक ओर क्रांतिकारी आंदोलन तेज हुआ, कांग्रेस की गतिविधियाँ तेज हुई, वहीं भारतीय पत्रकारिता का भी नया दौर शुरू हुआ। जिसमें मुख्य दौर 1905 के बंग-भंग आंदोलन से माना जाता है। बंग-भंग आंदोलन को लेकर पहले बंगाल और बाद में पूरे देश में तीव्र प्रतिक्रिया हुई थी। भारतीय राष्ट्रवाद के विस्तार में पत्रकारिता ने जीवन और चिंतन के विकास में बड़ी भूमिका निभाई थी। राजनीतिक स्वाधीनता, आर्थिक पुनरुद्धार के साथ शिक्षा और संस्कृति की दशा सुधारने में समाचार पत्रों और संपादकों के योगदान को राष्ट्रनिर्माताओं की श्रेणी में ही रखा जाता है। सामाजिक सुधार आंदोलन और राष्ट्रीय स्वतंत्रता की इस दोहरी लड़ाई को भारतीय पत्रकारिता आगे बढ़ाने में अपना पूरा योगदान दे रही थी। सामाजिक आंदोलनों के इन प्रणेताओं के साथ-साथ भारत में राजनीतिक जागरण का प्रस्फुटन भी हो गया। जिन उद्देश्यों को लेकर कांग्रेस की नींव रखी गई थी, उनमें बहुत जल्दी ही मतभेद पैदा हो गया। देश और राष्ट्रीयता के विकास के सवाल को गौण करके व्यक्तिगत विचारों को प्रमुखता दी जाने लगी। यही कारण था कि 1907 में कांग्रेस गरम-नरम दो दलों में विभाजित हो गई। बावजूद इसके इन लोगों का उद्देश्य कहीं न कहीं लोकजागरण के माध्यम से जनता में जागरूकता लाना था और इसके लिए उन्होंने पत्रकारिता को हथियार बना लिया।

बंग-भंग आंदोलन को लेकर पहले बंगाल और बाद में पूरे देश में तीव्र प्रतिक्रिया हुई थी। भारतीय राष्ट्रवाद के विस्तार में पत्रकारिता ने जीवन और चिंतन के विकास में बड़ी भूमिका निभाई थी। राजनीतिक स्वाधीनता, आर्थिक पुनरुद्धार के साथ शिक्षा और संस्कृति की दशा सुधारने में समाचार पत्रों और संपादकों के योगदान को राष्ट्रनिर्माताओं की श्रेणी में ही रखा जाता है

गांधी जी ने कहा है, "यदि कांग्रेस ने और कुछ नहीं किया तो कम से कम इतना जरूर किया है कि उसने अपना गंतव्य स्थान खोज लिया है और राष्ट्र के विचारों और प्रवृत्तियों को एक ही बिंदु पर लाकर ठहरा दिया है।"[14]

राष्ट्रीय ताकतों ने स्वाधीनता संग्राम में प्रेस की भूमिका को राजनीतिक संघर्ष और चेतना के औजार के रूप में काम में लिया। धीरे-धीरे तत्कालीन समाचार पत्रों में स्वाधीनता की माँग बलवती होने लगी। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश सरकार स्वतंत्रता के खिलाफ थी, इसलिए उन्होंने समाचार पत्रों पर प्रतिबंध लगाने की कोशिश की। "प्रेस की स्वतंत्रता के सवाल पर अंग्रेजों में दो धाराएँ थीं, उन्नीसवीं सदी में बेलेजली, मिंटो एडम, कैनिंग और लिटन प्रेस की आजादी के खिलाफ थे; पर हैगिंस, मेटकाफ, मैकाले और रिपन ने स्वतंत्र प्रेस का समर्थन किया। जबकि सर टामस मनरो और लार्ड.एल. फिस्टन जैसे उदारवादी ब्रिटिश नेताओं ने भारतीय प्रेस पर कड़े प्रतिबंधों का समर्थन किया। इनका तर्क था कि पिछड़े हुए देश पर विदेशी शासन बनाए रखना कठिन होगा। अगर प्रेस को आजादी दी गई तो इसका सेनाओं के अनुशासन पर भी बुरा असर पड़ सकता है।"[15]

श्री अरविंद ने बंबई से निकलने वाले 'इंदु प्रकाश' अखबार में राजनीतिक लेख लिखना शुरू कर दिया था। इस लेखक में राष्ट्रीयता की ध्वनि की प्रखरता और कांग्रेस के प्रति मोहभंग काफी प्रखर रूप

में रेखांकित होते थे। स्वाधीनता संग्राम के तत्कालीन सेनानियों में लाला लाजपत राय, बालगंगाधर तिलक, विपिनचंद्र पाल, गोपालकृष्ण गोखले, मदनमोहन मालवीय का नाम तीव्रगति से उभरा। इन्होंने स्वाधीनता संग्राम की लड़ाई को पत्रकारिता के माध्यम से लड़ा। राष्ट्रीय चेतना के प्रखर प्रवर्तक लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने केसरी और मराठा अखबार निकाले जो स्वराज्य का घोषणा पत्र था। इन समाचार पत्रों के माध्यम से तिलक बंग-भंग, स्वदेशी आंदोलन, राष्ट्रीय शिक्षा, स्वराज्य, बहिष्कार, क्रांतिकारियों की हत्या तथा सूरत कांग्रेस का झगड़ा आदि घटनाओं पर अपने ओजस्वी और प्रभावपूर्ण लेख निकाले जिसके परिणामस्वरूप स्वदेशी आंदोलन की लहर चारों और फैलने लगी। तिलक को अपनी इस निर्भीकता का खमियाजा भी भुगतना पड़ा। जब केसरी की संख्या 25000 हो गई थी, बहुसंख्यक भारतीयों तक 'केसरी' के माध्यम से स्वराज का जयघोषनाद पहुँचने लगा तो राजद्रोह के मुकदमे में तिलक को देशनिकाले की सजा दी गई। जेल में रहते हुए भी तिलक ने देशहित की चिंता को बरकरार रखा और समाचार पत्र लगातार निकलता रहे, इसके लिए प्रयास किया। माडले की जेल में रहते हुए भी तिलक को अपने समाचारपत्रों की चिंता थी। उन्होंने संपादकों को सलाह लिख भेजी, "कानून के दायरे में रहना तुम्हारा कर्तव्य है, चाहे वह कितना भी कठोर हो। जो कुछ भी स्वतंत्रता हो, उसका पूरा-पूरा उपयोग कर लेना चाहिए। वस्तुस्थिति के अनुसार ही चलना चाहिए, आपको ऐसा नहीं समझना चाहिए कि शासन की कार्रवाई के खिलाफ हाईकोर्ट में आपको न्याय मिलेगा। ऐसे भ्रम में मत रहो।"[16]

प्रथम स्वाधीनता संग्राम के बाद ब्रिटिश शासकों ने पत्रकारिता पर सशक्त कानूनी बंदिशें लगानी शुरू कर दीं। इसका मकसद था जनता के संघर्ष को, उसकी अभिव्यक्ति को दबाया जाए और पत्रकारों के हौसले को पस्त किया जाए। 'स्वराज' उर्दू का ऐसा ही अखबार था जिसके आठ संपादक जेल की यातना वहन कर चुके थे। शायद अन्य किसी समाचार पत्र को अभिव्यक्ति की इतनी बड़ी कीमत नहीं चुकानी पड़ी। इसी तरह 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'छत्तीसगढ़ मित्र' 'माडर्न रिव्यू', 'अभ्युदय', 'हिंदी केसरी', 'नृसिंह', तेलुगु पत्रकारिता में, 'आंध्र पत्रिका', मराठी दैनिक 'राष्ट्रमत','कर्मयोगी','मर्यादा','इन्दु', 'कर्मवीर' आदि पत्रिकाओं ने स्वाधीनता प्राप्ति में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

प्रथम स्वाधीनता संग्राम के बाद ब्रिटिश शासकों ने पत्रकारिता पर सशक्त कानूनी बंदिशें लगानी शुरू कर दीं। इसका मकसद था जनता के संघर्ष को, उसकी अभिव्यक्ति को दबाया जाए और पत्रकारों के हौसले को पस्त किया जाए। 'स्वराज' उर्दू का ऐसा ही अखबार था जिसके आठ संपादक जेल की यातना वहन कर चुके थे। शायद अन्य किसी समाचार पत्र को अभिव्यक्ति की इतनी बड़ी कीमत नहीं चुकानी पड़ी

हिंदी पत्रकारिता के प्रणेता भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय अनेक चुनौतियाँ थीं। जब ब्रिटिश क्राउन लागू कर दिया गया तो उसने दो काम बड़ी तीव्र गति से किए। एक-तथाकथित सामाजिक विसंगतियों में ताबड़तोड़ सुधार करना शुरू किया, जिससे लोगों के मन में साम्राज्यवाद के समानांतर ब्रिटिश क्राउन के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो, दूसरा-उसने दमन का चक्र भी बढ़ा दिया। एक तरफ भय और आतंक का वातावरण दूसरी तरफ प्रलोभन। ऐसी विसंगतिपूर्ण परिस्थिति में पत्रकारिता को जीवित रहना था। यह साहस और जोखिम भरा कार्य था। इसलिए उस समय के साहित्यकार सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे इस तरह से कार्य कर रहे थे। वे 'छद्म' नाम से भी लिखते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे लोग दो कदम आगे चलकर एक कदम पीछे का राग अलापते थे। "पूरी अमी की कटोरिया सी, चिरजीओं सदा विक्टोरिया रानी/अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी/पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।" हिंदी क्षेत्रों का स्वाधीनता आंदोलन भारतेन्दु की पत्रकारिता से जुड़ा हुआ था। उससे स्वाधीनता आंदोलन की दिशा और दृष्टि का पता चलता है। भारतेन्दु के समय जो पत्र निकले उनमें 1857 की तथा स्त्री शिक्षा दोनों की चर्चा होती थी। बालाबोधिनी पत्रिका स्त्रियों की शिक्षा पर ही आधारित थी। 'कविवचन सुधा' पत्रिका का उद्देश्य भी स्वाधीनता आंदोलन को सामने लाना था। बालकृष्ण भट्ट का 'हिंदी प्रदीप' पहला पत्र है, जिसे एक राष्ट्रीय कविता छापने के कारण तीन हजार रूपये की जमानत न देने पर पत्र का प्रकाशन बंद कर देना पड़ा। भारतीय पत्रकारिता पर सरकारी दमन के दो कानून अत्यंत बदनाम रहे। एक था वर्ष 1878 का भारतीय भाषा प्रेस कानून (वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट) और दूसरा 1908 का भारतीय प्रेस अधिनियम। इन दोनों कानूनों में सरकार को उस समाचार पत्रों से, जिन्हें वह आपत्तिजनक समझती हो, जमानत मांगने का अधिकार दिया गया था और यदि जमानत न दी जाए तो पत्र बंद करना पड़ता था। बालकृष्ण भट्ट को 'हिंदी प्रदीप' चलाने के लिए दोनों अधिनियमों का सामना करना पड़ा। दूसरे अधिनियम के कारण इस पत्र को जिसे भट्टजी ने अपनी 31 वर्ष की तपस्या से सींचा था, बंद करना पड़ा।"[17] 'हिंदी प्रदीप' के साथ-साथ भारत के अनेक पत्रों को अंग्रेजों के इन कानूनों का कोपभाजन बनना पड़ा। इसके विपरीत कागज का अभाव, आर्थिक परेशानी, पाठकों की घटती संख्या आदि कारणों ने भी समय-समय पर भारतीय पत्रकारिता की गति को अवरुद्ध किया। 'भारत मित्र' की चर्चा करते हुए पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने लिखा है, "उन दिनों हिंदी पाठक बहुत कम थे, इसलिए ग्राहक तो लोग बन जाते थे, पर पत्र पढ़ न सकते थे। यह समस्या इस तरह हल की गई कि पं. दुर्गाप्रसाद कई गद्दियों में जाकर 'भारत मित्र' पढ़कर सुना आया करते थे।"[18] यह उस युग के पत्रकारों की देश और पत्रकारिता के प्रति निष्ठा और कर्तव्यबोध का प्रमाण है। सरकारी दमननीति के बावजूद इस दौर के पत्रों में राष्ट्रीय भावना की झलक कम नहीं हुई।

जहां भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता का स्वर दो कदम आगे और एक कदम पीछे का राग अलापता था वही द्विवेदी युग की पत्रकारिता समानांतर चलने की पत्रकारिता

थी। द्विवेदी युग में स्वतंत्रता के सपने लोगों के मन में आने लगे। डॉ. श्यामसुन्दर दास द्वारा प्रकाशित 'सरस्वती' पत्रिका, जिसका संपादन महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 1903 में किया, जैसी पत्रिका भारतीय भाषाओं में कोई दूसरी नहीं है। ज्ञान-विज्ञान का ऐसा कोई विषय नहीं था जो 'सरस्वती' में समाविष्ट न हो। 'सरस्वती' ने हिंदी लेखन की वर्तनी को शुद्ध किया और भाषा को व्याकरणसम्मत बनाया। ब्रिटिश सरकार द्वारा की जाने वाली राजनीतिक विसंगतियों के विपक्ष में भी अपनी आवाज उस दौर की पत्रकारिता उठा रही थी। बालमुकुंद गुप्त 'भारत मित्र' में 'शिवशंभू के चिट्ठे' नाम से ब्रिटिश सरकार के असंगत कार्यों की अपने धारदार व्यंग्य लेखों से छीछालेदर करते थे। 'शिवशंभू के चिट्ठे' लेख के इस अंश से अंदाजा लगाया जा सकता है कि भाषा की मारक क्षमता और शब्दों के व्यंग्य बाण पत्रकारिता को कैसे प्रखर और जनप्रिय बना रहे थे। 'शिवशंभू के चिट्ठे' के माध्यम से बालमुकुंद गुप्त लार्ड कर्जन ही नहीं बल्कि पूरी अनैतिक अंग्रेजी व्यवस्था के विरुद्ध अपना पत्रकारिता प्रतिरोध दर्ज करा रहे थे। पत्रकारिता जारी भी रहे और वह असंगत का प्रतिरोध भी रहे, इस तरह की स्थिति के लिए बालमुकुंद गुप्त 'शिवशंभू के चिट्ठे' में लार्डकर्जन के विरुद्ध अपने तीखे व्यंग्य बाण लिखते हैं।

भारत के आजाद होने की शर्तें और पत्रकारिता के पनपने के पक्ष को एक दूसरे का पूरक कहा जा सकता है। इस पूरकता को निभाने में जितना योगदान साहित्यकार पत्रकारों का रहा है, उतना ही राजनीतिज्ञों का भी। यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि ये एक दूसरे से जिस सूत्र के कारण जुड़े थे, वह सूत्र था-भारत की स्वाधीनता। कोई भी राजनेता, साहित्यकार या समाज सुधारक इन सबके साथ-साथ एक पत्रकार भी होता था। गांधीजी पत्रकारिता को वैचारिक और परिवर्तन क्रांति का एक सशक्त माध्यम मानते थे। गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में 'इंडियन ओपिनियन' तथा भारत में 'यंग इंडिया', 'हरिजन', 'नवजीवन' जैसे पत्रों के माध्यम से संवाद की परंपरा को जीवित रखा। इसीलिए गांधीजी का व्यक्तित्व लोगों को आकर्षित करता था। उस समय मोतीलाल नेहरू, पं. मदन मोहन मालवीय, लाला लाजपत राय, चितरंजन दास, हरिसिंह गौर, तेजबहादुर सप्रू, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जैसे लोग, जिनकी प्रैक्टिस उस समय बहुत थी, इन्होंने देशहित में अपने व्यवसाय छोड़ दिए। साथ ही पं. माखनलाल चतुर्वेदी मैथिलीशरण गुप्त, माधवराव सप्रे, जैनेन्द्र, प्रेमचन्द जैसे अनेक बुद्धिजीवी, साहित्यकार गांधीजी से प्रभावित हुए और अनेक लेखक जेल भी गए। 'हंस' पत्रिका के प्रवेशांक में महात्मा गांधी को देश का कर्णधार मानते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है, "स्वाधीनता केवल मन की वृत्ति है। इस वृत्ति का जागना ही स्वाधीन हो जाना है। अब तक इस विचार ने जन्म ही न लिया था। हमारी चेतना इतनी मंद, शिथिल और निर्जीव हो गई थी कि उसमें ऐसी कल्पना का आविर्भाव ही नहीं हो सकता था, पर भारत के कर्णधार महात्मा गांधी ने इस विचार की सृष्टि कर दी..... इस संग्राम में भी एक दिन हम विजयी होंगे। वह दिन देर में आएगा या जल्द यह हमारे पराक्रम, बुद्धि और साहस पर मुनहसर है। हाँ, हमारा यह धर्म है कि उस दिन को जल्द से जल्द लाने के लिए तपस्या करते रहें। यही 'हंस' का ध्येय होगा और इसी ध्येय के साथ उसकी नीति होगी।"[19]

उन दिनों तमाम समाचार पत्र, जैसे-'आज', 'प्रताप', 'कर्मवीर', 'सैनिक', 'मतवाला', 'विशाल भारत', 'चाँद', 'माधुरी', 'हंस', 'सुधा', 'माया', 'लोकमत', 'गंगा', 'वानर' तथा 'अमृत बाजार पत्रिका', 'आनंद बाजार पत्रिका, 'हिंदू', 'नेशनल हेराल्ड' आदि प्रकाशित हुए, जिनका लक्ष्य देश को गुलामी से मुक्ति दिलाना था। इसके लिए कई संपादकों की अंग्रेजी हुकूमतों की कार्रवाई का सामना भी करना पड़ा। कई संपादक जेल गए। तमाम समाचार पत्रों को अंग्रेजों द्वारा जब्त भी कर लिया गया। 'आनंद बाजार पत्रिका' के संस्थापक-संपादक प्रफुल्लकुमार सरकार को एक उग्र लेख छापने के कारण जेल की सजा दी गई। इसी तरह 'चाँद' के फाँसी अंक को सरकार द्वारा इसलिए जब्त कर लिया गया क्योंकि इस अंक में अनेक ऐसे विवरण थे जो भारतीयों के मन में क्रांति की भावना को जगा सकते थे, जिसका भय हर अंग्रेज को था। 'चाँद' पत्रिका के फाँसी विशेषांक-संपादक चतुरसेन शास्त्री ने लिखा है: "निकट ही वह दिन है। कुछ मास व कुछ वर्ष व्यतीत होने दो-एक महान विप्लव की आँधी साँय-साँय करती चली आ रही है, जो पचासों वर्ष तक भारत को दीवाली के दिए न जलाने देगी, परंतु उसके बाद जो दिए जलेंगे वे क्षुद्र मिट्टी के टिमटिमाते दिए न होंगे - वे होंगे रक्तदीप, और उन्हें साक्षात् राज्य-लक्ष्मी अपने हाथों से जलावेगी।"[20] स्वतंत्रता पूर्व की भारतीय पत्रकारिता लोगों के मन में एक चेतना जगाने का कार्य करती थी। वह यह कि, क्यों पढ़ाएँ अपने बच्चों को? लड़कियाँ स्कूल जाएँ ताकि उनमें ज्ञान-विज्ञान का प्रसार हो, बच्चों को ज्ञान-विज्ञान और तकनीक से जोड़ना क्यों आवश्यक है? देश-दुनिया की जानकारी से कैसे जुड़े? बच्चों का भविष्य कैसे संवारे? हम जिस व्यवस्था द्वारा शासित हैं, वो कैसे हैं? ऐसे में हमारी भूमिका क्या हो सकती है आदि। एक तरह से आमजन को प्रशिक्षित करने का कार्य पत्रकारिता का प्रमुख ध्येय था। यही कारण था कि स्वाधीनता संग्राम के दौरान महात्मा गांधी और दूसरे नेताओं की प्रेरणा से देशभर से बुद्धिजीवी आंदोलन से जुड़े थे। विचारधाराएँ भले ही अलग रही हों लेकिन उद्देश्य स्वाधीनता प्राप्त करना, स्वदेशी शिक्षा तथा सामाजिक कुरीतियों का निर्मूलन ही था। इन लोगों ने पत्रकारीय मूल्यों को न केवल अपने आचरण में उतारा बल्कि आमजन में

भारत के आजाद होने की शर्तें और पत्रकारिता के पनपने के पक्ष को एक दूसरे का पूरक कहा जा सकता है। इस पूरकता को निभाने में जितना योगदान साहित्यकार पत्रकारों का रहा है, उतना ही राजनीतिज्ञों का भी। यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि ये एक दूसरे से जिस सूत्र के कारण जुड़े थे, वह सूत्र था-भारत की स्वाधीनता। कोई भी राजनेता, साहित्यकार या समाज सुधारक इन सबके साथ-साथ एक पत्रकार भी होता था

पत्रकारीय मूल्यों के प्रति चेतना भाव का बोध पैदा करके लोकशिक्षक की भूमिका का बखूबी निर्वहन भी किया।

अंतत: कहा जा सकता है कि भारत को द्वितीय विष्वयुद्ध के बाद जो स्वाधीनता अंग्रेजों ने दी उसमें 1942 का आंदोलन, सुभाष चंद्र बोस की आजाद हिन्द फौज, विश्व में ब्रिटेन की गिरती हुई ताकत के साथ-साथ भारतीय पत्रकारिता ने भी महती भूमिका का निर्वहन किया। विशेष रूप से उन संपादकों, लेखकों का योगदान महत्वपूर्ण है जो महात्मा गांधी के नेतृत्व में उस समय की राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं में लोकजागरण का काम करके देश को खड़ा कर रहे थे। वे वास्तविक अर्थ में स्वाधीनता संग्राम के समर्पित सेनानी ही थे। यह पूरे विश्व में एक अनोखा प्रयोग था। क्योंकि स्वाधीनता आंदोलन के जितने महान सेनानी थे, उनके विचार, उनके आचरण, उनकी नैतिकता, उनकी राष्ट्रवादिता सबकुछ बहुत शुद्ध और पवित्र थी। इसलिए भारत के स्वाधीनता आंदोलन की पत्रिकारिता और नेतृत्व दोनों का इतिहास में अपूर्व स्थान है। इन पत्रकारों ने एक ओर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शोषणकारी चरित्र को उद्घाटित कर भारत में ब्रिटिश शासन व्यवस्था के अनैतिक आधार को समाप्त करने का कार्य किया, तो वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय आंदोलन के कार्यकर्ताओं के लिए बौद्धिक खुराक का भी काम किया और उनमें आजादी की भूख पैदा की।

संदर्भ-

1. सुंदरलाल, *भारत में अंग्रेजी राज*, पृष्ठ 23-24
2. श्रीधर, विजयदत्त; *भारतीय पत्रकारिता कोश*, पृष्ठ 9
3. चतुर्वेदी, जगदीश्वर; *हिंदी पत्रकारिता के इतिहास की भूमिका*
4. मिश्र, कृष्णबिहारी; *हिंदी पत्रकारिता, जातीय चेतना और खड़ीबोली साहित्य की निर्माण-भूमि*, पृष्ठ 46
5. वही, पृष्ठ 47
6. वही, पृष्ठ 49-50
7. वही, पृष्ठ 54
8. वही, पृष्ठ 27
9. श्रीधर, विजयदत्त; *भारतीय पत्रकारिता कोश*, पृष्ठ 34-35
10. वही, पृष्ठ 87
11. वही, पृष्ठ 287
12. मिश्र, कृष्णबिहारी; *हिंदी पत्रकारिता, जातीय चेतना और खड़ीबोली साहित्य की निर्माण-भूमि*, पृष्ठ 95
13. श्रीधर, विजयदत्त; *भारतीय पत्रकारिता कोश*, पृष्ठ 586
14. मिश्र, कृष्णबिहारी; *हिंदी पत्रकारिता, जातीय चेतना और खड़ीबोली साहित्य की निर्माण-भूमि*, पृष्ठ 111
15. चतुर्वेदी, जगदीश्वर; *हिंदी पत्रकारिता के इतिहास की भूमिका*, पृष्ठ 141, 142
16. श्रीधर, विजयदत्त; *भारतीय पत्रकारिता कोश*, पृष्ठ 278
17. वही, पृष्ठ 230-31
18. मिश्र, कृष्णबिहारी; *हिंदी पत्रकारिता, जातीय चेतना और खड़ीबोली साहित्य की निर्माण-भूमि*, पृष्ठ 119
19. मिश्र, कृष्णबिहारी; *पत्रकारिता इतिहास और प्रश्न*, पृष्ठ 81
20. श्रीधर, विजयदत्त; *भारतीय पत्रकारिता कोश*, पृष्ठ 770

सर्वोच्च न्यायालय के विचार

एकतरफा जानकारी, मिथ्या समाचार, गलत जानकारी और समाचार शून्यता, सभी समान रूप से एक अनभिज्ञ (अशिक्षित) नागरिक वर्ग का निर्माण करते हैं जो लोकतंत्र को एक तमाशा बना देता है। बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में सूचना प्रदान और प्राप्त करने का अधिकार आता है जिसमें मत प्रकट करने की स्वतंत्रता शामिल है।

-भारत संघ बनाम एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स मामले में

— — — — — — — — —

लोकतांत्रिक तंत्र में प्रेस की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है : प्रेस की स्वतंत्रता को बनाए रखना और उस स्वतंत्रता को न्यून करने वाले सभी कानूनों व प्रशासन के कार्यों को निरस्त करना न्यायालयों का कर्तव्य है। प्रेस की स्वतंत्रता के तीन अनिवार्य तत्व हैं।

- इंडियन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स बनाम भारत संघ मामले में

— — — — — — — — —

अभिव्यक्ति और प्रेस की स्वतंत्रता समस्त लोकतांत्रिक संगठन की आधारशिला पर कायम है, क्योंकि स्वतंतत्र राजनीतिक विमर्श के बिना लोकप्रिय शासन के प्रक्रम के समुचित कार्यकलाप के लिए अत्यावश्यक लोक शिक्षा संभव नहीं है।

- मद्रास के चर्चित रोमेश थापर बनाम राज्य मामले में

जवाहरलाल कौल

समाचार की आत्मा तो बचानी ही होगी

“चेकोस्लोवाकिया में प्रेस की स्वतंत्रता जैसी कोई चीज नहीं है।
अमेरिका में प्रेस से स्वतंत्रता जैसी कोई चीज नहीं है।
-मार्टिना नवरातिलोवा, पूर्व विंबल्डन चैंपियन”

चौथे स्तंभ यानी मीडिया का कार्य लोक की स्वतंत्रता की रक्षा करना है लेकिन आजादी के बाद के वर्षों में इसे प्रभावित करने वाले कई कारण विकसित हो गए हैं। परिस्थितियों का एक सिंहावलोकन

स्वतंत्र मीडिया सशक्त लोकतंत्र की ताकत माना जाता है। जो देश मीडिया को बाँध कर रखते हैं वहाँ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ ही जनता के सभी मौलिक अधिकारों को भी सीमित रखा जाता है। मीडिया को लोकतंत्र के अधारभूत स्तंभों में शामिल करने का यही कारण है। चारों स्तंभों के आपसी संबंधों का विकास पिछले दो सौ वर्षों में धीरे-धीरे हुआ। इन संबंधों के कारण विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच एक सहज तालमेल स्थापित हो गया है। यद्यपि कभी-कभी इन रिश्तों में असहजता या टकराव की स्थितियाँ भी दिखतीं है, लेकिन तीनों संस्थाओं में इतना लचीलापन भी विकसित हुआ है कि मतभेद गंभीर टकराव की हद तक नहीं पहुँच पाते। लेकिन यही दावा चौथे स्तंभ के बारे में नहीं किया जा सकता। मीडिया के रिश्ते इनमें से किसी भी लोकतांत्रिक संस्था के साथ सहज नहीं हैं। इसका एक कारण यह माना जाना है कि मीडिया लोक की आवाज है और उसका काम शेष तीनों स्तंभों पर नजर रखना तथा लोक की स्वतंत्रता की रक्षा करना है। लेकिन कालांतर में मीडिया को प्रभावित करने वाले अन्य कारण भी विकसित हो गए हैं जो मीडिया के लोकतंत्र का प्रहरी होने के दावे पर भी प्रश्न खड़े करते हैं। एक यह है कि जहाँ विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका अपने-अपने अनुशासन के दायरे में रह कर ही काम करते हैं, वहीं मीडिया अभी तक ऐसा कोई अनुशासन विकसित नहीं कर पाया है और न ही लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था की महत्वपूर्ण संस्थाओं के अधिकारों और कर्तव्यों का परिसीमन करने वाली विधायिका ने इस मामले में कोई महत्त्वपूर्ण पहल की है।

स्वतंत्र मीडिया के देश अमेरिका के हाल के चुनावों में राष्ट्रपति और मीडिया के बीच खुली दुश्मनी जैसी स्थितियाँ पैदा हुई और भविष्य में भी होती रहेंगी। अधिकतर मीडिया संस्थानों, बहुत सारे इलेक्ट्रानिक चैनलों ने आमतौर पर मान लिया था कि जो बाइडन आसानी से ही चुनाव जीत जाएंगे। जिसे हम यहाँ लहर कहते हैं वैसी ही लहर अधिकतर अमेरिकी पत्रों और चैनलों के अनुसार ट्रंप के विरुध्द बह रही थी। लेकिन चुनावों में ऐसी कोई हवा नहीं देखकर मीडिया का विस्मित होना स्वाभाविक ही था। ट्रंप हारे अवश्य, लेकिन मामूली अंतर से। हमारे देश सहित अनेक देशों में प्रेस का आकलन गलत होता रहता है। लेकिन राष्ट्रपति के चुनाव में ऐसी भूल से अमेरिकी मीडिया का वह आसन डोल सकता है जिस पर बैठकर उसे अमेरिका के राष्ट्रपति के चुनाव की पहली घोषणा करने का अधिकार मिला है।

अमेरिका में मीडिया कैसे और क्यों राष्ट्रपति के चुनाव की घोषणा करता है। दशकों से

अमेरिका में एक समाचार एजेंसी[1] ही सबसे पहले इस बात की घोषणा करती है कि अगला राष्ट्रपति कौन बन गया है। शेष सभी एजेंसियां इसी का अनुकरण करती है। ऐसा इसलिए होता है कि 52 राज्यों के उस देश में राष्ट्रीय चुनाव कराने के लिए कोई सार्वदेशिक संघीय संस्था नहीं है। बात आई-गई हो जाती अगर राष्ट्रपति ट्रंप ने हठ न पकड़ लिया होता। तीन नवंबर को चुनाव नतीजे भी आ गए लेकिन निवर्तमान राष्ट्रपति ट्रंप लगातार यही दावा करते रहे कि चुनावों में बड़े पैमाने पर धांधली हुई है और "मुझसे मेरी जीत चुरा ली गई है।" चुनाव आयोग के अभाव में चुनावी मामलों में भी स्थानीय अदालतें ही शिकायत का समाधान करतीं हैं। तीन नवंबर से ही ट्रंप और उनके साथी हर अदालत का दरवाजा खटखटाते रहे, दर्जन भर मामलों में निराशा हाथ लगने के बावजूद उन्होंने बस नहीं की। जहाँ तक संभव था नए राष्ट्रपति के रास्ते में अडचनें डालते ही रहे। वे बार-बार उन्हीं मुद्दों को उठाते रहे जो उन्होंने आरंभ में ही उठाए थे। इन मुद्दों के साथ ही मीडिया का पक्षपात भी उनकी खीज एक बड़ा कारण था। अदालतों के रुख को देखते हुए तय तिथि तक राष्ट्रपति ट्रंप को व्हाइट हाउस खाली करना ही था तो फिर अपनी और देश की अनावश्यक फजीहत करने का क्या लाभ?

संयुक्त राज्य अमेरिका बनने से पहले अमेरिका बहुत सारे उपनिवेशों का एक समूह ही था जिनके अपने तौर-तरीके और कानून थे। राष्ट्र नाम की कोई कल्पना नहीं थी और जब एक ही केंद्रीय सरकार के अंतर्गत एक देश बनाने की आवश्यकता महसूस हुई तो भी कई राज्यों और केंद्रीय सरकार के बीच गंभीर टकराव होने लगा। बहुत से राज्य संघीय सरकार को कम से कम अधिकार देने की शर्त पर ही साथ आने को तैयार हो गए। देश के राष्ट्रपति के चुनाव का ऐसा ही एक मुद्दा था जिस पर मुश्किल से ही सहमति हो पाई। तय हुआ कि राज्य अपनी सरकार का तो स्वयं ही चुनाव कराएंगे संघ के मुखिया का चुनाव भी अपने ही तरीके के कराएंगे, किसी संघीय संस्था की निगरानी में नहीं। देश में राष्ट्रपति पद की दौड़ चाहे कितनी ही धीमी गति से चले प्रेस को अपनी दौड की चिंता रहती थी, वह अकसर अधिकारियों से पहले ही जनता को बता देता था कि कौन कितने पानी में है। सरकारों को भी लगा होगा कि अगर अखबार वाले उनका काम कर ही रहे हैं तो हर्ज क्या है, करने दो। तब से यानी 1848 ईस्वी से यही व्यवस्था चलती आ रही है[2]। यह व्यवस्था पौने दो सौ वर्ष से चल रही है तो इसके पीछे कोई शक्तिशाली भावना रही होगी जिसमें इतने बड़े विविधता वाले देश को राष्ट्रव्यापी चुनाव के लिए किसी संघीय संचालक संस्था की आवश्यकता नहीं पड़ी और राष्ट्रीय निर्वाचन में मीडिया की निष्पक्ष भूमिका पर जनता को संदेह नहीं हुआ। वह 'एक अमेरिका' की भावना थी। जिसे दृढ आधार पर खड़ा करने के लिए अमेरिका के दक्षिणी और उत्तरी राज्यों में भयंकर गृह युद्ध लड़ना पड़ा। लेकिन नवंबर में राष्ट्रपति के चुनाव के दौरान और चुनाव हो जाने के पश्चात यह एक अमेरिकी राष्ट्र भावात्मक स्तर पर विभाजित सा लगने लगा है। क्या अमेरिकी क्रांति[3] और अमेरिकी गृहयुध्द के बावजूद कुछ रह गया था जिसके परिणाम अब सामने आने लगे हैं। 1789 में अमेरिकी संविधान का अनुमोदन हुआ। तभी से प्रश्न उठने लगा था कि अमेरिका एक लोकतांत्रिक देश और एक अविभाज्य राष्ट्र है कि नहीं। राष्ट्र को एकता का एहसास दिलाने वाले राष्ट्रपति पद पर टकराव चार साल तक चलने वाले गृहयुध्द का कारण बने। तब एक राष्ट्रपति के चुनाव सहित पूरी चुनाव प्रक्रिया को आयोजित करने के लिए एक सार्वदेशिक, समान, पारदर्शी और निष्पक्ष चुनाव व्यवस्था बनाने की आवश्यकता अमेरिका के लोगों को नहीं पडी, भले ही बीच-बीच में उसकी विश्वसनीयता पर सवाल उठते रहे हों। ट्रंप चुनाव व्यवस्था में उसी अविश्वास को और अधिक गहरा कर रहे हैं। यह अविश्वास उतना अमेरिका के संघ-राज्य रिश्तों पर नहीं जितना उस एक व्यवस्था पर है जो न्यायपालिका के बाद संपूर्ण देश में अपने विस्तार और असाधारण अधिकार के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका में 'संयुक्त राष्ट्र' का भी एहसास दिलाता है। यानी अमेरिकी मीडिया। क्या मीडिया पर निष्पक्षता का विश्वास किया जा सकता है, ट्रंप कह रहे हैं, नहीं। वे मीडिया के बहाने अमेरिकी चुनाव व्यवस्था पर सवाल उठा रहे हैं। जाने-अनजाने अमेरिकी चुनाव व्यवस्था में अमेरिकी मीडिया स्वयं बहस का मुद्दा बनता जा रहा है। ट्रंप पूरे मीडिया को छद्म समाचारों का पोषक बता रहे हैं, जबकि केवल इस चुनाव में ही नहीं, 2016 के चुनाव में भी स्वयं ट्रंप के चुनाव प्रचारकों पर छद्म समाचारों का खुलकर इस्तेमाल करने का आरोप है।

साभार : https://starofmysore.com/is-there-honesty-in-journalism/

प्रश्न है कि स्वतंत्र भारत में मीडिया के चाल चलन और नैतिकता की चर्चा में अमेरिकी मीडिया कहाँ से आया। हमने

पत्रकारिता अंग्रेजों से सीखी, जिनके हम गुलाम थे। उन्हीं के मानकों पर हम अपनी पत्रकिरता को सही ठहराने का प्रयास करते रहे। जब स्वतंत्र हुए तो दुनिया बदल चुकी थी। विश्व में दो नायक आए थे संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ। सोवियत संघ रूस के रूप में नया तो नहीं था, लेकन एक ऐसे अवतार में खड़ा हो गया था कि पहले के मुकाबले अलग ही भूमिका में था। भले ही हमारे बड़े नेता सोवियत संघ से अभिभूत थे और देश को समाजवादी राह पर चलाने का प्रयास करते थे, लेकिन वास्तव में भारतीय मीडिया अमेरिका के राजपथ पर चल पड़ा था। बीसवीं शताब्दी के अंत तक हमारे मीडिया ने मान लिया था कि मीडिया का बाजार के साथ जीवन-मरण का रिश्ता है। यानी हमारे मीडिया की मुख्यधारा बाजारवादी दर्शन की पोषक बन चुकी थी। टेक्नोलॉजी ने मीडिया को वह विस्तार दिया जो बाजार को छोड़कर किसी संस्था को नहीं मिला था। इसलिए आज यह बहस निरर्थक होगी कि मीडिया का बाजार का एक अभिन्न अंग हो जाना अच्छा है या नहीं। यह घटना तो घट चुकी है, उसे वापस पलटने की न तो अभी जनता में कोई दृढ इच्छा है और न ही उपयुक्त साधन। हम केवल यह कर सकते हैं कि वह बाजार के कब्जे में पूरी तरह से न आ जाए। जिन कुप्रवृत्तियों के बारे में आज हम परेशान हैं और अक्सर उनके बारे में शिकायत करते रहते हैं वे सभी वर्तमान शताब्दी के आरंभ पर भी हमारे मीडिया में निहित थी, कुछ बीज रूप में तो कुछ फूल बनकर। जिस रूप में बाजार का स्वरूप हमारे सामने है वह अमेरिका से आया, मीडिया और बाजार के रिश्तों की शरुआत भी वहीं से हुई, टेकेनोलॉजी भी पश्चिम की ही देन है। इनसे जनित विकृतियाँ हमारे यहाँ वहीं से आई हैं तो कल वहाँ जो हुआ वह आज हमारे यहाँ तो होना ही था।

मीडिया की भूमिका पर बहस जब से आरंभ हो गई तभी से कुछ धारणाएँ मीडिया के बारे में लोगों ने बना ली थीं। निष्पक्षता और सामाजिक सरोकार। जो लोग मीडिया की निष्पक्षता की उम्मीद करते रहे थे वे पिछली सदी में गलत थे और अब भी गलत ही हैं। निष्पक्षता का मीडिया के संदर्भ में अर्थ वही नहीं होता है जो न्यायालय के बारे में होता है। किसी समाचार पत्र समूह या चैनल का अपना पक्ष हो सकता है, जिसे वह खुलकर प्रस्तुत करता हो। राजनैतिक दलों, क्षेत्रों और संप्रदायों के प्रति रुझान के अनुसार पत्र-पत्रिकाओं और चैनलों को अकसर बाँटा जाता ही है। और जिन्हें निष्पक्ष कहा जाता है उनका भी पक्ष होता ही है जिसे आप बहुमत कह सकते हैं। बाजारवाद से प्रतिबध्दता मीडिया के संदर्भ में महत्वपूर्ण पक्ष है। निष्पक्षता का मीडिया के बारे में अर्थ तो केवल तथ्यों के प्रति ईमानदारी ही हो सकता है। तथ्यों को उस युग में ही पवित्र माना गया था जब पत्रकारिता एक मिशन थी, जिसकी एक सामाजिक प्रतिबद्धता भी हुआ करती थी। किसी बड़े देश की पत्रकारिता के पिछले दो सौ वर्ष का इतिहास खंगाल कर देखिए, न तो अमेरिकी मीडिया और न ही भारतीय मीडिया का राष्ट्रीय मुद्दों में भी एक ही पक्ष रहा है। बात चाहे अमेरिकी क्रांति के दौरान की हो या फिर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के बीच। हमारे स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जो क्षेत्रीय आंदोलन समांतर रूप से चल रहे थे, जिनमें मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका रही, उनमें भी क्षेत्रीय, सांप्रदायिक, औपनिवेशिक सभी प्रकार के रंग थे और चटक रंग थे। वैचारिक स्तर पर यह विभिन्नता गलत नहीं, बशर्ते कि तथ्यों को अक्षत रखा जाए। इसलिए इक्कीसवीं शताब्दी में मीडिया के बारे में अगर कोई महत्वपूर्ण चिंता होनी चाहिए तो वह यह है कि मीडिया और तथ्य का रिश्ता क्या होगा। मीडिया को साबुत, अविकृत या अक्षत कैसे रखा जाए।

मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ जब मान लिया गया था तब लोकतंत्र को निरंकुशता से बचाने और जनमत की अवहेलना को रोकने के लिए इसे एक स्वतंत्र, सशक्त साधन मान लिया गया था। मीडिया ने काफी समय तक अपनी वह भूमिका निभा भी ली। लेकिन कालांतर में बाजार का ही एक सहयोगी साधन बन जाने के पश्चात मीडिया ने अपनी भूमिका को भी बदलना आरंभ कर दिया। जनता को जानकारी देने का मूल उद्देश्य तो बदस्तूर था ही, लेकिन जानकारी के आयाम बदल गए। जानकारी या समाचार का अर्थ केवल सामान्य और प्रचलित सूचनाएँ देना ही नहीं होता, सूचना की तह में छिपी बातों को भी पाठकों तक पहुँचाना, यानी सच से परदा उठाना भी मीडिया का कर्तव्य है। दरअसल जो खबर छिपी है या छिपाई गई है उस तक पहुँचना मीडिया की कार्यकुशलता मानी गई। इससे दूसरी स्थिति भी विकसित हो गई। खबर जुटाकर पाठक को पहुँचाने वाले संवाददाता और खुफिया तौर पर मुआवजे के बदले सूचना देने वाले खबरिया या खबरी के बीच अंतर खतरनाक सीमा तक कम रह जाता है। गोपनीय को उजागर करने की आकांक्षा और निरंकुश बाजार एक खतरनाक मिश्रण बन गया। जब मीडिया बाजार का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है तो व्यापार और राजनीतिक जगत के रहस्यों की खबर रखने की क्षमता अपने आपमें एक बड़ी ताकत बन जाती है। इस ताकत के एहसास का एक परिणाम यह निकला कि मीडिया में यह धारणा विकसित होने लगी कि वही अन्य तीन स्तंभों को दुरुस्त कर सकता है और लोकतंत्र को स्वस्थ रख सकता है। लेकिन राजनीति और पूँजी की विषैली दुनिया में मीडिया कब तक अपनी नैतिक हस्ती को जीवित रख सकता है, खासकर जबकि नैतिकता मीडिया की कोई प्रतिबद्धता नहीं रह गई हो। इस सिलसिले में हमारे देश में मीडिया के व्यापक आर्थिक घोटालों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शामिल

मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ जब मान लिया गया था तब लोकतंत्र को निरंकुशता से बचाने और जनमत की अवहेलना को रोकने के लिए इसे एक स्वतंत्र, सशक्त साधन मान लिया गया था। मीडिया ने काफी समय तक अपनी वह भूमिका निभा भी ली। लेकिन कालांतर में बाजार का ही एक सहयोगी साधन बन जाने के पश्चात मीडिया ने अपनी भूमिका को भी बदलना आरंभ कर दिया

होना अस्वाभाविक नहीं है।

लोकतांत्रिक देशों में हाल के चुनावों में शुद्ध खबर के साथ ही उसके प्रकारांतरों की ताकत बहुत शिद्दत के साथ महसूस की गई। क्या मीडिया किसी प्रत्याशी की जीत-हार की संभावनाओं को प्रभावित कर सकता है। चुनाव प्रेक्षकों के अनुसार कुछ प्रत्याशियों को पूरे चुनाव अभियान में लगभग अदृश्य बनाकर रखा जा सकता है, क्योंकि वे मीडिया का ध्यान अपनी ओर नहीं खींच पाते। कई मीडिया शिक्षण केंद्रों की निदेशक रही रिगीना लारेंस के अनुसार मीडिया को आकर्षित करने का हुनर सबको नहीं आता। जनता अनेक कारणों से पहले ही पक्षों में बंटी होती है और इस प्रवृत्ति को हवा देने का काम भी मीडिया ही करता रहा है। पहले से विभाजित जनसंख्या दूसरे पक्ष की बात ही नहीं सुनना चाहती। इस ध्रुवीकरण में खासकर तीसरा पक्ष बुरी तरह पिट जाता है, जिसकी बात नक्कारखाने में तूती की टेंटें जितनी होती है।

इक्कीसवीं शताब्दी में खबर की विकृति गंभीर चिंता का विषय बन गई है- फेक न्यूज और पेड न्यूज यानी नकली समाचार और समाचारों की खरीद-फरोख्त। लेकिन इन महत्त्वपूर्ण पहलुओं को समझने से पहले एक ऐसी विकृति की चर्चा करना उचित होगा। राडिया टेप कांड काफी चर्चित घटनाक्रम रहा है[4]। इस कहानी के तीन प्रमुख कारक हैं। नीरा राडिया, जो बड़े व्यापारिक संस्थानों के लिए सरकार से काम निकलवाने के लिए बिचौलिये की भूमिका में थीं। दो राजनैतिक पार्टियाँ और उनकी सरकारें, कांग्रेस और डीएमके, जो अपने तात्कालिक हितों के लिए एक-दूसरे को पटखनी देने में लगी हैं और बहुत सारे नामी पत्रकार जो खबरियों का काम कर रहे हैं। घटनाचक्र कुछ इस तरह चला कि मीडिया की नामी हस्तियाँ नीरा के एजेंटों की भूमिका में दिखाई दे रही थीं। मामला 2जी स्पेक्ट्रम का था। केंद्रीय खुफिया ब्यूरो को जानकारी मिली थी कि कुछ उद्योगपति 2जी स्पेक्ट्रम हासिल करने के लिए सरकारी नीतियों को प्रभावित करने हेतु मीडिया के जरिये दबाव बनाने का प्रयास कर रहे हैं। यह दबाव नीरा राडिया के माध्यम से बनाया जा रहा था। नीरा की पहुँच कुछ वरिष्ठ पत्रकारों तक थी जिनके रिश्ते सरकार में कार्यरत्त अधिकारियों और मंत्रियों से थे। खुफिया ब्यूरो ने 2007 से 2009 के बीच कई नौकरशाहों, व्यापारियों, एजेंटों और पत्रकारों की फोन वार्ताओं को चुपचाप सुनकर बातचीत के सैकड़ों गोपनीय टेप बना लिए थे। यह संयोग नहीं था कि इनमें से 140 वार्ताओं को 'एक्स टेप्स' के नाम से एक पत्रिका ने छाप दिया। स्वाभाविक था कि इससे देश भर में सनसनी फैल गई, क्योंकि इन वार्ताओं में देश के प्रतिष्ठित समाचार पत्रों और पत्र समूहों में काम करने वाले नामी पत्रकारों की भूमिका से उनके पाठक अचंभित हो गए। बरखा दत्त की दलील थी, "मैं खबर के लिए उतावली थी। मैंने जहाँ से भी मिली खबर ले ली, यह मेरा गलत फैसला था।" लेकिन इस तरह की दलीलें किसी के गले नहीं उतरीं। एक वरिष्ठ पत्रकार दिलीप पदगांवकर ने एक गोष्ठी में पूछा कि "एक पत्रकार की स्वाभाविक उत्सुकता कब बाकायदा बिचौलिए की नौकरी में बदल जाती है?" खुफिया खबरों के माध्यम से पत्रकार और राजनीतिक नेता काफी पहले से एक दूसरे को इस्तेमाल करते रहे हैं। उसे ऑफ द रेकार्ड कहा जाता है। नेता कोई सनसनी पैदा करने वाली सूचना जानबूझकर संवाददाता को देता है, लेकिन इस अनुरोध पर कि इसे न छापा जाए। यह अनुरोध अधिक देर नहीं चलता, जल्द ही किसी न किसी रूप में खबर छप ही जाती है। लेकिन इस पक्ष में यह दलील दी जाती है कि जिस नेता ने वह गोपनीय सूचना दी थी उसका उद्देश्य भी सूचना को छपवाना ही होता है, वह केवल उस समय स्वयं विवाद में उलझने का जोखिम नहीं उठाना चाहता। वह चाहता है कि समाचार का स्रोत उसे न बताया जाए।

खुफिया खबरों के माध्यम से पत्रकार और राजनीतिक नेता काफी पहले से एक दूसरे को इस्तेमाल करते रहे हैं। उसे ऑफ द रेकार्ड कहा जाता है। नेता कोई सनसनी पैदा करने वाली सूचना जानबूझकर संवाददाता को देता है, लेकिन इस अनुरोध पर कि इसे न छापा जाए। यह अनुरोध अधिक देर नहीं चलता, जल्द ही किसी न किसी रूप में खबर छप ही जाती है। लेकिन इस पक्ष में यह दलील दी जाती है कि जिस नेता ने वह गोपनीय सूचना दी थी उसका उद्देश्य भी सूचना को छपवाना ही होता है, वह केवल उस समय स्वयं विवाद में उलझने का जोखिम नहीं उठाना चाहता

एक घटना ब्रिटेन की है जहाँ मीडिया मुगल रूपर्ट मर्डक के 168 साल पुराने पत्र 'न्यूज ऑफ द वर्ल्ड' को दुकान बंद करनी पड़ी। सनसनी फैलाने वाले एक मामले में उस प्रकाशन से जुड़े कई पत्रकारों पर आरोप था कि वे अति विशिष्ट व्यक्तियों की गोपनीय फोन वार्ताओं को सुनते थे और उन गोपनीय बातों को प्रेस में छपवाते रहते थे। नीरा राडिया किस्सा और 'न्यूज ऑफ द वर्ल्ड' का अवसान, हालांकि दो अलग प्रकार की घटनाएँ हैं लेकिन मीडिया की एक खास कमजोरी को सामने लातीं हैं। मीडिया के प्रकाशकों और स्वयं पत्रकारों की बदलती हुई भूमिकाओं के ये उदाहरण हैं। दोनों में पत्रकार केवल खबर लाकर पाठक को नहीं देते अपितु खुफिया तौर पर गोपनीय जानकारी प्राप्त कर छापने या छुपाए रखने के लिए अपना या अपने प्रकाशक का हित साधते हैं, जिसे अंग्रेजी में 'ब्लैकमेल' कहते हैं। हो सकता है कि राडिया मामले में मर्डक मामले की तरह पत्रकारों का काम सीधे -सीधे आपराधिक न रहा हो, लेकिन नैतिक स्तर पर दोनों का मीडिया की उस भूमिका से दूर-दूर तक का कोई वास्ता नहीं है जिसमें मीडिया को जनहितों का प्रहरी माना गया था। साथ ही, इनमें इक्कीसवीं सदी की अन्य दो विकृतियों के अंकुरित बीजों से भी मुलाकात होती है जिनके बारे में समाज का वह वर्ग चिंतित है जो अभी भी मीडिया को लोकतंत्र का प्रहरी मानना चाहता है। इस सारे घोटाले में फँसे पत्रकार आखिर कर क्या रहे थे? एक पूँजीपति

के हित में उनके एजेंट के अनुरोध पर दो राजनैतिक दलों के सामने एक ऐसा परिदृश्य पैदा करना चाहते थे जिसमें वे नीति को अनुकूल बनाएँ। यानी ठीक वही कर रहे थे जो एक 'फेक न्यूज' फैलाने वाला पत्रकार करता है। वे राजनैतिक दलों के बीच बड़े व्यापारिक घरानों की पहुँच बना रहे थे। ये सारे पत्रकार कम वेतन पर काम करने वाले कर्मचारी नहीं थे फिर भी अगर वे ऐसा काम करने के तैयार हुए तो प्रबंधन को इसकी जानकारी थी या वह भी इस धंधे में शामिल था। यानी यह पेड न्यूज का भी एक स्पष्ट उदाहरण था। ऐसा नहीं है कि राडिया टेप कांड पत्रकारों के राजनीति और पूँजी के लोभ का शिकार बनने का पहला ही उदाहरण है। नीरा राडिया या उनके पत्रकार दोस्तों की अनुभवहीनता से प्रतियोगी व्यापारिक संगठनों ने टेप पहले ही मीडिया में छपवा कर खेल बिगाड़ दिया। एक अन्य प्रतिष्ठित पत्रकार जी. संपत ने ठीक ही कहा, "नीरा राडिया टेप मामले का पूरे टीवी मीडिया और अधिकतर बड़े अंग्रेजी समाचारपत्रों के बहिष्कार से देश में भ्रष्टाचार की अधिक सच्ची तस्वीर प्रस्तुत होती है।"

झूठी खबर फैलाना मानव समाज के लिए नई बात नहीं है क्योंकि जब मनुष्य झूठ बोल सकता है तो झूठा समाचार भी फैला सकता है। मीडिया के संदर्भ में भी नकली सूचना राजनय का हिस्सा रही है। भारत में समाचार पत्रों का प्रभाव पिछली सदी के आरंभ से ही बढ़ने लगा। अंग्रेजी पत्र पत्रिकाओं का चलन 1857 की क्रांति से पहले से होने लगा था। अंग्रेजों के विरुद्ध अखबारों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। दिल्ली में कुछ अखबार वितरित होते थे जिनकी बीस तीस प्रतियाँ ही रहती थीं क्योंकि छापेखाने का व्यावसायिक आधार नहीं बन पाया था। लेकिन बीसवीं शताब्दी आते-आते हालात बदल गए थे। अगर हम खंगालना आरंभ करें तो कई घटनाएँ सामने आएंगी जिनमें नकली समाचार या सूचनाओं के कारण तात्कालिक राजनीति में कई मोड़ आते रहे हैं। इन्हें तब नकली खबर 'फेक न्यूज' नहीं कहते थे केवल अफवाह मान लिया जाता था। हालांकि इन अफवाहों के कारण कई सांप्रदायिक विवाद उग्र हुए, कई गलत धारणाएँ समाज में पनपने लगीं। लेकिन इनका व्यावसायिक रूप तो पश्चिम से बनकर आया। पश्चिमी देशों में नकली समाचार पिछले कई दशक से अपने पाँव पसार रहे हैं। चुनावों में इनका प्रभाव तेजी से बढ़ता रहा। 2016 के अमेरिकी राष्ट्रपति चुनावों में नकली खबरों की बड़ी भूमिका रही है। इन चुनावों में छद्म समाचारों का बोलबाला देखकर कई समाजशास्त्री घबरा गए। उन्हें लगा कि इस प्रकार के छद्म वृत्तांतों से जनमानस पर गहरा प्रभाव पडने की आशंका है, जो अंत में साधन और साध्य दोनों के लिए हानिकारक ही होगा। पंद्रह विद्वानों ने विभिन्न आयामों पर आलेख लिखे जिनमें नकली समाचारों की भूमिका का विश्लेषण किया गया[5]।

साभार : https://mumbaimirror.indiatimes.com/opinion/columnists/dushyant/securing-good-journalism/articleshow/78942959.cms

छद्म समाचार की निम्न व्याख्या सामने आई - कृत्रिम रूप से गढ़ा गया समाचार जो सामान्य मीडिया के समाचार की हूबहू नकल करता है लेकिन उसके उद्देश्य का नहीं। समाजशास्त्री स्टीवन स्लोमन के अनुसार आज जिस गति से टेक्नोलॉजी का प्रसार होता है और जिस गति से वह बदल रही है उसमें कोई भी व्यक्ति कहीं भी समाचार का स्रोत हो सकता है। आपमें केवल अपनी ओर ध्यान खींचने की क्षमता होनी चाहिए, जिससे आप 'वाइरल' हो सकें।[6]

सूचनाओं का प्रवाह इतना तेज है कि वास्तविक और छद्म समाचार के बीच अंतर करने के लिए किसी के पास समय ही नहीं है। जिनका काम ही जाँच करना है उनके पास भी नहीं। इससे पहले कि किसी समाचार की असलियत का पता लगाया जाए वह वाइरल हो चुका होता है। लोगों के पास असंख्य मीडिया साधन हैं, अनेक चैनल, समाचार पत्र पत्रिकाएँ, और सोशल मीडिया उपलब्ध हैं कि हर व्यक्ति को वह मिल जाता है जो वह पढना, सुनना या देखना चाहता है। क्या लोग छद्म समाचार के अनुकूल व्यवहार करते हैं? उसके अनुरूप चलने का सवाल तो तभी आता है जब लोग समाचार को सही मान लें। छद्म खबर की विशेषता तो यही है कि वह छद्म नहीं दिखती। महत्वपूर्ण है कि छद्म खबर को टेक्नोलॉजी के पंख मिलने से बहुत पहले से प्रचलित अफवाह की भूमिका आज भी छद्म समाचार से मिलकर विस्फोटक वातावरण बना सकती है। अकसर देखा गया है कि लोग सोशल मीडिया पर खबर को आगे बढ़ाकर फैलाने से पहले क्षण भर भी नहीं सोचते। यानी छद्म समाचार को वाइरल करने में सबसे बड़ी भूमिका पाठक-दर्शक की ही

होती है। दरअसल वही छद्म खबर तेजी से फैलती है जो लोगों की तात्कालिक या रूढ़ मान्यताओं से मेल खाती हो और जिनके अंकुर पहले से ही समाज में बिखरे पड़े हों। इसलिए वही छद्म समाचार तेजी से फैलता है जिस पर लोग चर्चा करने लग जाते हैं। यानी समस्या मूल रूप से सांस्कृतिक है। छद्म समाचार और अफवाह में अंतर केवल इतना ही है कि छद्म समाचार मिनटों में सार्वभौमिक हो जाता है और अफवाह अपने छोटे-छोटे दायरों में ही सीमित रहती है।

अगर हमने मान लिया है कि समाचार व्यापारिक वस्तु है और पत्रकारिता एक आर्थिक व्यवसाय तो यह भी मान लेना होगा कि अन्य व्यापारों की भाँति लाभ-हानि, पूँजी निवेश आदि सभी वाणिज्यिक नियमों और आवश्यकताओं का भी समावेश होगा। बाजारवादी व्यवस्था में तो गांधीजी के ट्रस्टीशिप की कोई जगह नहीं है। जिन परिस्थितियों में हमने मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना था वह अब नहीं रहीं, क्योंकि मीडिया के अपने हित और उसमें काम करने वाले पत्रकारों के निजी स्वार्थ, मीडिया के चरित्र पर हावी हैं। समाचार पत्र समूहों या चैनलों पर किसकी पूँजी लगी है और अगर वह विदेशी व्यापारिक घराने या निगम हैं तो इस पर आश्चर्य करने की आवश्यकता क्या है। क्या दूसरे व्यापारों में विदेशी निवेश नहीं होता। क्या अमेरिका के मीडिया में गैर अमेरिकी पूँजी नहीं लगी है? आर्थिक क्रियाकलाप में टेक्नोलॉजी का दखल केवल इतना ही नहीं होता कि वह उसे कुशल बनाती है या अधिक गतिशील करती है अपितु यह भी है कि वह उसे दिशा देती है उसके लक्ष्य निर्धारित करती है।

तो फिर हमारा मीडिया जैसा है वैसा ही रहने दें, उसकी दशा-दिशा पर चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है? मीडिया वास्तव में शब्द का व्यवहार है। भले ही वह व्यापार में बदल गया हो, शब्द को हम पवित्र मानते रहे हैं। शब्द ब्रह्म है उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है- धर्म है। शब्द ही ज्ञान का वाहक है। समाचार या सूचना ज्ञान के ही पर्याय हैं। हमारा शब्द, हमारी सूचना, हमारा ज्ञान हमारी धरोहर है, हमारी संस्कृति है। उसकी रक्षा के लिए हम प्रतिबद्ध हैं। अगर हमें कुछ बचाना या सुधारना है तो वह समाचार के बीच निहित तथ्य या सत्य है। तथ्य को विकृत या खंडित करने और दबाने का किसी को अधिकार नहीं होना चाहिए। समाचार अगर असत्य है तो उसे प्रचारित करना अपराध है, चाहे उससे किसी नागरिक को हानि पहुँची हो या नहीं, उसे फैलाने वाला दंड का भागी है। तथाकथित सोशल मीडिया में अधिकतर समाचार कहीं और से आए होते हैं, उस कंपनी के नहीं होते जिसके माध्यम से वे प्रसारित होते हैं। वह तो बीमारी को फैलाने वाले वाहक ही होते हैं। लेकिन इससे वे निर्दोष नहीं होते कि सूचना उन्होंने किसी ओर से ली है। महामारी के वाइरस का संक्रमणवाहक कम खतरनाक नहीं होता। अगर खबर को बेचने, खरीदने का सामान मानते हैं तो लोकतंत्र के प्रहरी होने का दावा छोड़ना होगा। लोकतंत्र के सभी आयामों के अधिकार कुछ कर्तव्यों पर निर्भर होते हैं। लोक की वाणी होने के कारण राज्य-व्यवस्था के अन्य अवयवों पर नजर रखना एकतरफा कार्य नहीं हो सकता। अभी तक मीडिया यही तर्क देता रहा है कि मीडिया पर बाहर से थोपा गया अनुशासन उसकी स्वतंत्रता को ही नष्ट करेगा। अनुशासन आवश्यक है तो वह आत्मानुशासन ही होना चाहिए। इसके पक्ष में गांधी जी के विचारों को प्रस्तुत किया जाता है जिनके अनुसार पत्रकारिता जल के निर्बंध प्रवाह की भाँति नहीं होनी चाहिए कि आसपास के गाँव-शहर को ही नष्ट कर दे। लेकिन उनके अनुसार यह अनुशासन बाहर से नहीं होना चाहिए क्योंकि वह वातावरण को और भी विषाक्त करेंगा। लेकिन जो मीडिया स्वयं ही स्वतंत्र नहीं है, जिसके लिए विज्ञापन की बैसाखी के बिना चलना असंभव हो गया है, वह किस बूते पर आत्मानुशासन लागू करेगा। अखबार हो या टीवी चैनल एक सामान्य व्यवसाय नहीं है। वह वास्तव में विज्ञापन प्रचारित-प्रसारित करता है लेकिन उसके साथ लगभग मुफ्त में समाचार और अन्य मनोरंजक सामग्री उपलब्ध कराने का लोभ भी देता है। मीडिया का स्वामित्व, उसका विक्रय मूल्य, पत्रकार और प्रबंधन के रिश्ते, विज्ञापन नीति, संवाद संकलन का तरीका सभी उसे विश्वसनीय नहीं रहने देते। हम बाजार और मीडिया के रिश्तों को तब तक नहीं बदल सकते जब तक हम राजनीति से लेकर अर्थव्यवस्था तक बाजारवाद को अपना कर चल रहे हैं। बाजारवाद में कोई महत्त्वपूर्ण सुधार भी नहीं कर सकते क्योंकि यह वैश्वीकरण से नियंत्रित है और वैश्वीकरण टेक्नोलॉजी के सहारे चलता है। अब तो यह भी दावा किया जाता है कि टेक्नोलॉजी मनुष्य के वश में नहीं, वह अपना ही गणतंत्र निर्माण करेगी[7]। ऐसी स्थिति में हम तथ्य को बचाने का प्रयास तो कर सकते हैं। इसके लिए तथ्य को छद्म समाचार या बिकाऊ और विनिमय का माल बनाने के हर प्रयास को अपराध के वर्ग में शामिल किया जाना होगा। खबर में निहित सूचना को धमकी का आयुध्द बनाने और सूचनाओं को प्राप्त करने के सभी गोपनीय उपायों पर सख्त निगरानी रखने की आवश्यकता है। हमारे अधिकतर मीडिया घराने भले ही कहें मीडिया संचालन में सब ठीकठाक ही है लेकिन अभी अभी गार्जियन के अमेरिकी संस्करण के संपादक ने अपने पाठकों के नाम अपील कुछ इस प्रकार की है जिसमें कहा थोड़ा ही गया है लेकिन अनकहा बहुत है। संपादक जान मलहोलैंड ने लिखा- इस अराजक, भयावह युग में एक स्वतंत्र, सच्चाई खोजने वाले गार्जियन जैसे संस्थान

मीडिया का स्वामित्व, उसका विक्रय मूल्य, पत्रकार और प्रबंधन के रिश्ते, विज्ञापन नीति, संवाद संकलन का तरीका सभी उसे विश्वसनीय नहीं रहने देते। हम बाजार और मीडिया के रिश्तों को तब तक नहीं बदल सकते जब तक हम राजनीति से लेकर अर्थव्यवस्था तक बाजारवाद को अपना कर चल रहे हैं। बाजारवाद में कोई महत्त्वपूर्ण सुधार भी नहीं कर सकते क्योंकि यह वैश्वीकरण से नियंत्रित है और वैश्वीकरण टेक्नोलॉजी के सहारे चलता है

की बड़ी आवश्यकता है। गार्जियन के पास कोई हिस्सेदार या अपना अरबपति नहीं हैं, यानी हमारी पत्रकारिता पर कोई दबाव नहीं, कोई निहित स्वार्थ नहीं। इसीलिए हम औरों से अलग हैं। दिलचस्प है कि वे ब्रिटेन और अमेरिका जैसे पूँजीवादी देशों में खबरों का व्यापार करने वाले पत्रकार कैसे अरबपति, बाजार के निवेश और पूँजी के प्रभाव से कैसे लड़ेंगे। वे अलग हैं या नहीं, लेकिन हम जानते हैं कि बड़ी संख्या में समाचार संस्थानों में पत्रकरिता दबावों और स्वार्थों से ही संचालत होती है।

सदंर्भ एवं टिप्पणियां

1. एसोसिएटेड प्रेस और अमेरिकन केबल न्यूज ने परंपरा के अनुसार जो बाइडन के अमेरिकी राष्ट्रपति चुनावों में जीत की घोषणा की।
2. 'व्हाट दे फॉट फॉर' अमेरिकी गृह युद्ध का विवरण, पुस्तक का मूल नाम "बैटल क्राय ऑफ फ्रीडम" था। पुस्तक जेम्स. एम. मैक्फरसन ने लिखी और एंकर बुक्स ने प्रकाशित की।
3. 1765 से 1767 के बीच ब्रिटेन ने अमेरिकी उपनिवेशों पर कई प्रकार के नए कर लगाए। इसकी प्रतिक्रिया में उपनिवेशों ने विद्रोह कर दिया जो "बोस्टन टी पार्टी" के नाम से जाना जाता है। यहीं से 13 अमेरिकी उपनिवेशों की ब्रिटेन से स्वतंत्रता की लड़ाई आरंभ हो गई जिसे अमेरिकी क्रांति कहा जाता है। उपनिवेशों को मिलाकर ही आधुनिक संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का जन्म हुआ।
4. नीरा राडिया टाटा समूह के लिए व्यापार विस्तार के निमित्त सरकारी विभागों और मंत्रालयों में पहुँच बनाकर कंपनी के काम निकलवाया करती थीं। अमेरिका में ऐसे कामों के लिए बाकायदा पदाधिकारी होते हैं क्योंकि वहाँ लाबियिंग कानूनी पेशा है। भारत में इसे गोपनीय धंधों के वर्ग में ही रखा गया है। राडिया मामले में और भी पार्टियाँ लगीं थीं जिन्होंने टेप पहले ही छपवा कर राडिया का काम बिगाड दिया।
5. नॉर्थ वेस्टर्न विश्वविद्यालय और हार्वर्ड विश्वविद्यालय के संयुक्त प्रयास से एक कार्यशाला आयोजित की गई जिसे डेविड लेजार, और मैथ्यू बाउम ने संचालित किया। इस कार्यशाला में छद्म समाचारों का विस्तार से विश्लेषण किया ताकि छद्म खबरों पर किसी प्रकार की लगाम कसी जा सके।
6. प्रोफेसर स्टीवन स्लोमन, ब्राउन विश्वविद्यालय में मनोचिकित्सा, और अन्य विधाओं के विशेषज्ञ।
7. रिपब्लिक आफ टेक्नोलॉजी - डेनियल बूरस्टन, पुलित्जर पुरस्कार विजेता प्रसिद्ध अमेरिकी इतिहासकार।

फार्म-4

'मंथन' के स्वामित्व तथा अन्य ब्यौरे

प्रकाशन स्थान	:	नई दिल्ली
प्रकाशन अवधि	:	त्रैमासिक
मुद्रक	:	प्रिंट क्राफ्ट इंडिया
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शाहदरा, दिल्ली
प्रकाशक एवं स्वामी	:	डॉ. महेश चन्द्र शर्मा एवं एकात्म मानवदर्शन अनुसंधाान एवं विकास प्रतिष्ठान
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002
संपादक	:	डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002

मैं डॉ. महेश चन्द्र शर्मा एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिक से अधिक जानकारी और मेरे विश्वास में ठीक है।

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
प्रकाशक

तिथि: 1 मार्च, 2021

इष्ट देव सांकृत्यायन

सोशल मीडिया: इकतरफा आख्यानों का अंत

“यह कहना कि आपके पास छिपाने को कुछ नहीं है, इसलिए आप निजता के अधिकार की चिंता नहीं करते, वैसा ही है जैसे यह कहना कि आपको अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की कोई चिंता नहीं है, क्योंकि आपको कुछ कहना नहीं है।
-एडवर्ड स्नोडेन”

सोशल मीडिया ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मामले में आमजन को सशक्त अवश्य किया है परंतु यह असामाजिक तत्वों के लिए भी एक उपकरण बन गया है। लोगों को इसके जरिये हो रहे छद्म और धोखाधड़ी से बचाने के लिए कई कानून भी बने हैं, परंतु वे भी पूरे नहीं पड़ रहे। एक नजर

सोशल मीडिया आज उन सभी के लिए गर्व का विषय है जिनके बारे में दो दशक पहले तक यह माना जाता था कि उनकी अपनी कोई आवाज ही नहीं है। उनके पास अपने सुख-दु:ख और यहाँ तक कि प्रतिभा को भी समाज तक पहुँचाने की कोई सुविधा नहीं थी। अब वह सभी अपनी आवाज उठा सकते हैं, अपने सुख-दु:ख पूरी दुनिया के सामने प्रकट कर सकते हैं और अपनी उपलब्धियों के लिए बधाइयाँ प्राप्त कर सकते हैं। इसके साथ ही वह यह भी जान सकते हैं कि आखिर वह असफल क्यों हुए? इसने सभी को एक उल्लेखनीय अनुभूति का भी एक अवसर प्रदान किया है। कई बार तो इसने ऐसे लोगों को भी सेलब्रिटी बना दिया जिनको उनके आसपास के लोग भी नहीं जानते थे। साथ ही, इसने उन आवाजों पर भी लगाम लगाया है जो पहले बिलकुल निरंकुश हुआ करती थीं। राजनीतिक और धार्मिक नेता, कुछ जाने-माने लोग और बुद्धिजीवी, जो अपनी चालढाल और पद-प्रतिष्ठा के नाते आम जन के बीच आकर्षण के केंद्र थे, वह आम जनता के सहज आकर्षण को अपना विशेषाधिकार समझने लगे थे और निहायत ही बेशर्मी से वह उन लोगों के विरुद्ध प्रयोग कर रहे थे जिन्हें वह शत्रु रूप में मानते थे। वे तथ्यों और सच्चाई का ध्यान रखे बिना यह सब कर रहे थे। यह इसलिए संभव हो पा रहा था क्योंकि दूसरे पक्ष के पास मुख्यधारा के मीडिया में अपनी बात रखने का कोई उपाय नहीं था और सही होने के बावजूद दूसरा पक्ष जनता को प्रभावित नहीं कर सकता था।

इस एकाधिकार ने सुविधासंपन्न वर्ग को तानाशाह बना दिया था और पूरा का पूरा विमर्श ही एकतरफा हो गया। विशेषाधिकार प्राप्त लोग अश्वमेध के अश्वों की भाँति पूरी दुनिया में अपने विचारों की ध्वजा फहराते घूम रहे थे, जिनकी लगाम पकड़ने का दुस्साहस कोई भी नहीं कर सकता था। यदि कोई ऐसा दुस्साहस करता, तो उसे दूरदर्शी और स्वप्नदृष्टा के बजाय, उसकी वास्तविक भूमिका के ठीक विपरीत, जनता के सम्मुख एक मनोरोगी, या खलनायक, के रूप में पेश किया जाता था। ऐसा इसलिए था क्योंकि मुख्यधारा का मीडिया शासक वर्ग की पूँजी, शक्ति और उससे जुड़े बुद्धिजीवियों की बुद्धि से ही चल रहा था; जबकि शेष का वह अपनी सुविधानुसार केवल उपयोग कर रहा था। इसने ऐतिहासिक तथ्यों के ठीक विपरीत मुहावरे और कहावतें प्रचलित कर दीं, और इतिहास स्वयमेव इस तथ्य का साक्षी है कि कैसे केवल छद्म आख्यानों के जरिये कई सभ्यताएँ बर्बर लोगों के हाथों युद्ध से भी अधिक ध्वस्त कर दी गईं। आज भी, इसका उसी तरह से उपयोग किया जाता है और मीडिया उन शक्तियों के लिए सबसे शक्तिशाली उपकरण है जो इसके पीछे काम कर

रही हैं। यही कारण है कि जिम विलिस ने सवाल उठाया, "आखिरकार, क्या मीडिया में अधिकांश उदारवादी लोग ही सम्मिलित नहीं हैं? तो फिर मैं इन उदारवादी पत्रकारों पर यह भरोसा क्यों करूँ कि ये परंपरागत दृष्टिकोण का सही तरीके से प्रतिनिधित्व करेंगे?"[1] और उनके दृष्टिकोण को गलत नहीं कहा जा सकता। इस बात का श्रेय सोशल मीडिया को ही दिया जाना चाहिए कि अब सत्ताओं के अश्वमेध का कोई घोड़ा ऐसा नहीं रहा जिसकी नकेल धरी न जा सके। अब किसी का कोई भी आख्यान दुनिया भर में निर्बाध नहीं फैल सकता। ऐसा इसलिए है क्योंकि हर कोई अभिव्यक्ति के अपने अधिकार का प्रयोग करने में सक्षम है। हालाँकि, अभी भी यह गंभीर चिंता का विषय है और इस पर गंभीर चिंतन की आवश्यकता है कि क्या सोशल मीडिया वास्तव में उन शक्तिशाली लोगों के प्रभावों से मुक्त है? क्या सदियों से वंचित समुदाय अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में वस्तुत: अपना हिस्सा ले पा रहे हैं?

दूसरी ओर यह स्वतंत्रता भी हदें पार कर रही है और कई बार यह समाज के लिए हानिकारक साबित हुई। हमें यह देखना होगा कि अभिव्यक्ति की यह भयावह स्वच्छंदता आमजन, समाज और व्यापक मनुष्यता के हितों एवं सुरक्षा को किस तरह दुष्प्रभावित कर रही है। इन सभी प्रश्नों का उत्तर, विशेष रूप से कैंब्रिज एनलिटिका डाटा स्कैंडल जैसी घटनाओं को ध्यान में रखते हुए दिया जाना है। इसके अतिरिक्त इस तथ्य को भी संज्ञान में रखना है कि कई ऐसे देश हैं जो व्यापार तो पूरी दुनिया में कर रहे हैं, लेकिन उन्होंने वैश्विक सोशल मीडिया को अपने भूक्षेत्र में प्रवेश की अनुमति नहीं दी है। यह स्वयं में एक बड़ा अंतर्विरोध है कि उनकी सरकार के कुछ विभाग अन्य देशों की जनता को प्रभावित करने के लिए सोशल मीडिया का उपयोग कर रहे हैं। वैश्विक आर्थिक युद्ध के इस युग में लोकतांत्रिक देशों के लिए यह कितना घातक हो सकता है, जब वास्तव में लोकतांत्रिक व्यवस्था का अनुपालन करने वाले देशों की संख्या उँगलियों पर गिनी सकती है? हमने अभी भी अस्तित्वमान कोविड 19 की वैश्विक महामारी के बिलकुल शुरुआती दौर में ही

आज की युवा पीढ़ी की बात करें तो कोई भी सोशल मीडिया से अपरिचित और बेपरवाह नहीं है। चाहे सोशल मीडिया में उनकी रूचि हो या न हो, यह जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा बन गया है। जैसा कि वरिंदर टप्रियाल और प्रिया कंवर बताते हैं, "मीडिया का वह रूप जो सभी को ऑनलाइन समाजीकरण, या फिर लेख, समाचार, चित्र आदि के जरिये सामाजिक होने की सुविधा उपलब्ध कराता है, सोशल मीडिया है

आर्थिक विस्तारवाद का वह दृष्टांत देखा है कि किस तरह चीन इस वैश्विक आपदा का अनुचित लाभ उठाने में जुट गया था। महामारी की आपदा के उस समय में, जब दुनिया के अधिकांश देश लॉकडाउन के माध्यम से अपने नागरिकों के जीवन को बचाने में व्यस्त थे और इस तरह मंदी के शिकार हो रहे थे, तब ड्रैगन ने शेयर बाजार के माध्यम से कई कंपनियों पर अधिकार जमाना आरंभ कर दिया और जब भारत ने इस संबंध में कानून बनाकर उसके षड्यंत्र को रोकना चाहा तो उन्होंने इसे भेदभावपूर्ण कहा।[2] हालांकि, उनके पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं है कि अगर कोई अपनी अर्थव्यवस्था की सुरक्षा के इंतजाम करता है, तो यह किसी और के लिए भेदभावपूर्ण कैसे हो सकता है? फिर भी भारत सहित विभिन्न देशों में उनके पक्षकारों ने अपने आकाओं के लिए आवाजें उठाना जारी रखा और ज्यादातर उन्होंने अपने उद्देश्य के लिए सोशल मीडिया का ही इस्तेमाल किया।

इससे पहले कि हम इन प्रश्नों के उत्तर तलाशने का प्रयास करें, हमें सोशल मीडिया के अर्थ, पहुँच और विस्तार को जानना होगा। यह ध्यान में रखते हुए कि यह उसी पश्चिम का एक आविष्कार और निर्मिति है, जहाँ उपजी पत्रकारिता की भी जड़ें किसी ध्येय में केंद्रित नहीं है। मीडिया वहाँ सिर्फ एक व्यवसाय है और सोशल मीडिया उसी का एक हिस्सा है। किसी भी व्यवसाय का अंतिम उद्देश्य मात्र मुनाफा कमाना ही होता है। इस तथ्य के आलोक में हमें उन शक्तियों के बारे में जानना होगा जो इसे नियंत्रित और प्रभावित कर रही हैं। कोई कल्पना भी नहीं कर सकता है कि यह मानवता के लिए कितना हानिकारक हो सकता है, अगर इसका उपयोग कुछ बुरी शक्तियों द्वारा किया जाए। दुर्भाग्य से, हमारे पास कोई भी ऐसा तरीका नहीं है जिससे हम इन तथ्यों को समय से पहले जान सकें। फिर, ऐसे मामले में हमें क्या करने की जरूरत है?

उपयोगकर्ताओं के बीच संवाद में वृद्धि

आइए हम पहले सोशल मीडिया को समझें। आज की युवा पीढ़ी की बात करें तो कोई भी सोशल मीडिया से अपरिचित और बेपरवाह नहीं है। चाहे सोशल मीडिया में उनकी रूचि हो या न हो, यह जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा बन गया है। जैसा कि वरिंदर टप्रियाल और प्रिया कंवर बताते हैं, "मीडिया का वह रूप जो सभी को ऑनलाइन समाजीकरण, या फिर लेख, समाचार, चित्र आदि के जरिये सामाजिक होने की सुविधा उपलब्ध कराता है, सोशल मीडिया है।" साथ ही वे यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि "सोशल मीडिया शब्द की सैकड़ों परिभाषाएँ हैं और रोज ही इसमें नई परिभाषाएँ जुड़ जाती हैं, क्योंकि अवधारणाएँ समय के साथ बदलती और विकसित होती रहती हैं।" फिर भी उन्होंने पुस्तक में कुछ परिभाषाएँ व्यक्त की हैं:

मेरियम-वेबस्टर डिक्शनरी ऑनलाइन के अनुसार, सोशल मीडिया का अर्थ है, "इलेक्ट्रॉनिक संचार के हर प्रकार के रूप (सोशल नेटवर्किंग और माइक्रोब्लॉगिंग के लिए वेबसाइटों के रूप में) जिनके माध्यम से उपयोगकर्ता जानकारी, विचार, व्यक्तिगत संदेश और अन्य सामग्री (जैसे वीडियो) साझा करने के लिए ऑनलाइन समुदाय बनाते हैं।"

विकिन्वेस्ट के अनुसार, "सोशल मीडिया का अभिप्राय उन वेबसाइटों से है, जो उपयोगकर्ताओं को पाठ्य सामग्री,

मीडिया आदि साझा करने की सुविधा देती हैं। सोशल मीडिया का सामान्य उदाहरण लोकप्रिय सोशल नेटवर्किंग साइटें हैं जैसे फ्रेंडस्टर, फेसबुक, माइस्पेस आदि। सोशल मीडिया में यूट्यूब, फोटोबकेट, फ्लिकर और अन्य साइटें भी सम्मिलित हैं, जिनका उद्देश्य फोटो और वीडियो साझा करना होता है। समाचार देने वाली और ऑनलाइन संदर्भ स्रोत जैसे कपहह और विकीपीडिया की गिनती भी सोशल मीडिया में ही की जाती है। माइक्रो ब्लॉगिंग साइट्स जैसे ट्विटर को भी सोशल मीडिया में शामिल किया जा सकता है।"

वेब डिक्शनरी सोशल मीडिया (संज्ञा) को "सोशल नेटवर्किंग के लिए इस्तेमाल की जाने वाली वेबसाइट और एप्लिकेशन" के रूप में परिभाषित करती है।

अंततः उनका निष्कर्ष है, "वेब आधारित वे सभी एप्लीकेशन जो उपयोगकर्ता द्वारा सृजित सामग्री के सृजन और विनिमय तथा उपयोगकर्ताओं के बीच संवाद की सुविधा देते हैं, उन्हें सोशल मीडिया के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। ये सोशल नेटवर्किंग साइट्स (फेसबुक, फ्रेंडस्टर, गूगल प्लस), ब्लॉग्स, इंटरनेट फोरम, बुकमार्किंग साइट्स, ऑनलाइन कम्युनिटी साइट्स और क्यू एंड ए साइट्स आदि के रूप में हो सकते हैं।"[3]

इंटरनेट और स्मार्टफोन अभी भी विलासिता हैं

चूँकि सोशल मीडिया पर संपूर्ण सामग्री उपयोगकर्ताओं द्वारा सृजित होती है, इसीलिए सामग्री के स्वामित्व को लेकर हमेशा एक बहस चलती रही है। चूँकि इन सभी वेबसाइट पर उपयोगकर्ता द्वारा निर्मित सामग्री ही पोस्ट की जाती है तो सूचना की सुरक्षा वास्तव में चिंता का विषय है जो या तो प्लैटफॉर्म या फिर उन परजीवियों के कारण तीसरे पक्ष के पास जा सकती हैं, जो अपने डाटाबेस के लिए ऐसे ही आँकड़ों को खँगालते रहते हैं। फेसबुक-कैम्ब्रिज एनालिटिका डाटा स्कैंडल मामला ऐसे मामलों का एक उदाहरण है। इस मामले में कैम्ब्रिज एनालिटिका द्वारा फेसबुक के लाखों उपयोगकर्ताओं के व्यक्तिगत डाटा का उपयोग उपयोगकर्ताओं की अनुमति के बिना कर लिया गया था। यह एक ब्रिटिश राजनीतिक परामर्शदाता कंपनी है और डाटा का उपयोग यह मुख्यतः राजनीतिक विज्ञापन के लिए करने वाली थी। ब्रिटेन के सूचना आयुक्त कार्यालय द्वारा अपने उपयोगकर्ताओं को इस प्रकार जोखिम में डालने को लेकर फेसबुक पर जुर्माना भी लगा था।[4] यह भी एक ज्ञात तथ्य है कि सोशल मीडिया प्लेटफार्मों में फेसबुक की पहुँच सर्वाधिक है। दुनिया की आबादी का लगभग पाँचवाँ हिस्सा फेसबुक का उपयोग करता है। पूरे विश्व में 1 करोड़ 40 लाख व्यक्ति इसका उपयोग करते हैं और इसमें दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो रही है।[5] यदि सोशल मीडिया का इतना बड़ा मंच अपने उपयोगकर्ताओं के डाटा का दुरुपयोग करना शुरू कर दे तो यह समाज के लिए कितना खतरनाक हो सकता है!

फेसबुक के अतिरिक्त भी कई छोटे या बड़े प्लैटफॉर्म हैं जो मिलकर सोशल मीडिया के पूरे परिदृश्य का निर्माण करते हैं। इनमें सबसे लोकप्रिय हैं व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम, ट्विटर और लिंक्डइन आदि। व्हाट्सएप को भारतीयों की जीवनरेखा कहा जाता है। इस ऐप को 2010 में लॉन्च किया गया था और इसमें अकेले भारत के 25 करोड़ से अधिक उपयोगकर्ता जुड़ गए हैं। बहुत सारे लोग अब दुनिया से जुड़े रहने के लिए पूरी तरह व्हाट्सएप पर निर्भर हैं। एक और सामाजिक नेटवर्क जो थोड़े ही समय में लोकप्रिय हो गया वह है इंस्टाग्राम। यह समाज को प्रभावित करने वालों और व्यापार के लिए भी एक बड़ा ठिकाना बन गया है। कोई भी अपना किसी भी चीज का खाता यहाँ बना सकता है। यहाँ उपयोगकर्ता फोटो, वीडियो, कहानियाँ और लाइव वीडियो साझा कर सकते हैं। ट्विटर उन लोगों के लिए सबसे अच्छा मंच है, जो कम शब्दों में संदेश को प्रसारित करना जानते हैं। इसमें एक ट्वीट में केवल 280 अक्षरों (जापानी, कोरियाई और चीनी के लिए 140) तक ट्वीट किया जा सकता है, हालाँकि अन्य सोशल मीडिया साइटों की तुलना में ट्विटर की पहुँच बहुत ज्यादा है। हर छोटी-बड़ी खबर सुपर-वायरल हो जाती है और ट्विटर पर देखने की गणना में काफी वृद्धि होती है। यहाँ तक कि अधिकारियों ने ट्विटर के माध्यम से जनता से संवाद करना आरंभ कर दिया है, वह सुविधा या समस्याओं के बारे में व्यक्तियों से जानकारी प्राप्त करते हैं। भारत में, पीयूष गोयल और स्वर्गीय श्रीमती सुषमा स्वराज जैसे केंद्रीय मंत्री नागरिकों की समस्याओं के समाधान के लिए बहुत लोकप्रिय हुए, जिसकी जानकारी उन्हें प्रायः ट्विटर के माध्यम से मिलती थी। यही कारण है कि समाचार, मनोरंजन, खेल और राजनीति आदि में रुचि रखने वालों और उन सभी के लिए ट्विटर सबसे लोकप्रिय सोशल नेटवर्किंग साइट है, जो मुद्दों पर बातचीत करना पसंद करते हैं। सोशल मीडिया केवल चर्चा और अभिव्यक्ति

साभार : https://soffront.com/blog/know-7-best-strategies-build-brand-social-media-marketing/

के लिए ही एक माध्यम नहीं है बल्कि व्यावसायिक क्षेत्र में भी यह अच्छी भूमिका निभा रहा है। जो लोग नौकरी की तलाश में हैं या अपनी नौकरी बदलना चाहते हैं, उनके लिए लिंक्डइन सबसे अच्छी नेटवर्किंग साइट है। यूट्यूब और स्पोटीफाई उन लोगों के लिए सबसे अच्छी जगह है जो फिल्में या धारावाहिक देखना और कला या तकनीक सीखना या सिखाना पसंद करते हैं। कुछ नए सोशल मीडिया प्लैटफॉर्म भी हैं जो तेज गति से बढ़ रहे हैं और इनकी प्रणाली फेसबुक, इंस्टाग्राम और ट्विटर आदि की लाइक से भिन्न है। इनमें से सबसे लोकप्रिय हाउसपार्टी, ट्रेल, हेलो, स्ट्रीटचिट्स और वेरो आदि हैं। हर दिन एक नया उद्यम इस मैदान में प्रवेश कर रहा है और हर नए उद्यम में कुछ नई विशेषताएँ हैं जो युवाओं को अपनी ओर खींच रही हैं।

इसी तरह, सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं की संख्या भी भारत में तेजी से बढ़ रही है। भारत में सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं की संख्या 2018 में 326.1 मिलियन थी। 2015 में, यह 142.23 मिलियन थी और 2023 में यह लगभग 448 मिलियन होने की उम्मीद है।[6] यद्यपि यह एक बड़ी संख्या है और प्रभावित करने के लिए पर्याप्त है, परंतु भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में यह व्यापक नहीं कही जा सकती। चूँकि सोशल मीडिया वेब आधारित है, इसलिए इसकी पहुँच यह केवल उन्हीं तक सीमित है जो इंटरनेट का प्रयोग कर सकते हैं। हम जानते हैं, भारत में इंटरनेट अभी भी एक विलासिता है। सरकार की ओर से कई प्रयासों के बावजूद यह सभी तक अपनी पहुँच नहीं बना सका। इसके लिए कंप्यूटर या स्मार्टफोन की भी जरूरत होती है, जो कई लोगों के लिए अभी भी एक विलासिता है। भारत में, 2018 में केवल 26% मोबाइल फोन उपयोगकर्ता स्मार्टफोन का उपयोग कर रहे थे। यह भविष्यवाणी की गई थी कि 2022 तक, देश में 36 प्रतिशत से अधिक मोबाइल उपयोगकर्ता स्मार्टफोन का उपयोग करेंगे।[7] जाहिर है, सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं की संख्या इससे अधिक नहीं हो सकती। यूके, यूएस, जर्मनी और फ्रांस जैसे विकसित देशों में भी यह पूरी जनसंख्या के लिए सुलभ नहीं है।

भारत में इंटरनेट अभी भी एक विलासिता है। सरकार की ओर से कई प्रयासों के बावजूद यह सभी तक अपनी पहुँच नहीं बना सका। इसके लिए कंप्यूटर या स्मार्टफोन की भी जरूरत होती है, जो कई लोगों के लिए अभी भी एक विलासिता है। भारत में, 2018 में केवल 26% मोबाइल फोन उपयोगकर्ता स्मार्टफोन का उपयोग कर रहे थे। यह भविष्यवाणी की गई थी कि 2022 तक, देश में 36 प्रतिशत से अधिक मोबाइल उपयोगकर्ता स्मार्टफोन का उपयोग करेंगे

न्यूजू की 2019 ग्लोबल मोबाइल मार्केट रिपोर्ट के अनुसार ब्रिटेन में स्मार्टफोन की पहुँच 82.9% तक है। इसके बाद जर्मनी में 79.9% लोग, अमेरिका में 79.1% और फ्रांस में 77.5% लोग स्मार्टफोन का प्रयोग कर रहे हैं। चीन में स्मार्टफोन की पहुँच केवल 59.9% नागरिकों तक है, भारत में 36.7% और पाकिस्तान में यह केवल 15.9% है।[8] यदि हम भारत में कंप्यूटर के आँकड़ों पर नजर डालते हैं तो पाते हैं कि यह स्मार्टफोन की तुलना में बहुत कम है। आधिकारिक तौर पर मान्यता प्राप्त स्रोतों से संकलित किए गए विश्व बैंक के विकास संकेतकों के अनुसार वर्ष 2007 में भारत में व्यक्तिगत कंप्यूटर (प्रति 100 व्यक्ति) 3.1271 थे। भारत - व्यक्तिगत कंप्यूटर (प्रति 100 व्यक्ति) - वास्तविक मूल्य, ऐतिहासिक डाटा, पूर्वानुमान और अनुमान 2020 विश्व बैंक स्रोत से लिए गए थे।[9]

प्रभाव: परंपरागत बनाम सोशल मीडिया

ऐसे लोग हैं जो इन आँकड़ों के प्रभाव के अंतर्गत सोशल मीडिया के प्रभाव पर प्रश्न उठाते हैं। वे कहते हैं कि एक मीडिया, जो 50% जनसंख्या तक भी नहीं पहुंचा है, वह किसी भी समाज या उसके शासन को कैसे प्रभावित कर सकता है। उनमें से ज्यादातर वे हैं जो मीडिया की पहली पीढी से हैं। लेकिन हमें इसकी पहुँच पर भी गौर करना होगा। वर्ल्ड एसोसिएशन ऑफ न्यूजपेपर्स द्वारा तैयार वर्ल्ड प्रेस ट्रेंड्स रिपोर्ट के अनुसार 2012 में केवल 2.5 बिलियन लोग समाचार पत्र (प्रिंट फॉर्म में) पढ़ रहे थे।[10] भारत में समाचार पत्रों का प्रचलन हमेशा से संदेह का विषय रहा था। उसी तरह यदि हम भारत में टेलीविजन सेटों के आंकड़ों को देखें, तो हम पाते हैं कि इसकी उपलब्धता 2002 में प्रति 1,000 लोगों पर 83.51 है।[11] यह विश्व बैंक के विकास संकेतकों के अनुसार है, जिसे आधिकारिक रूप से एकत्र किया गया है। और लगभग यह पूरी दुनिया की वास्तविकता है। कोई उपकरण या माध्यम विकसित देशों में ज्यादा प्रचलित हो सकता है और विकासशील या अविकसित देशों में कम, लेकिन मीडिया के किसी भी मोड में 100% जनसंख्या सम्मिलित नहीं होती है। हम एक आदर्श के रूप में इसकी केवल कल्पना ही कर सकते हैं। फिर भी यह सच है कि मीडिया व्यापक रूप से समाज को प्रभावित करता है और प्रभावित करता है और सोशल मीडिया इस परिदृश्य का एक बड़ा हिस्सेदार है। मुख्यधारा और सामाजिक मीडिया के बीच बुनियादी अंतर कवरेज का नहीं, बल्कि सामग्री निर्माण के तरीके का है। मुख्यधारा का मीडिया सामग्री निर्माण के लिए अपने उपयोगकर्ताओं पर निर्भर नहीं है। यह अपने दम पर और पेशेवर तरीके से पाठ्य सामग्री बनाता है। प्रत्येक समाचार और लेख की योजना बनाई जाती है और जाँच की जाती है, साथ ही संपादित भी की जाती है। यह अपने पृष्ठ पर यूंही किसी प्रकार कोई खबर नहीं दे सकता है। और वह अपने सभी उपयोगकर्ताओं को मनमाने ढंग से सामग्री पर प्रतिक्रिया करने की अनुमति भी नहीं दे सकता; चाहे वह तथ्यों से संबंधित हो या पाठकों के विचार से। यहाँ पर उपयोगकर्ता बात नहीं कर सकते हैं। यह नियंत्रण और संतुलन की एक प्रक्रिया के रूप में तो काम करता ही है, अपितु उत्तरदायित्व के भाव को भी प्रदर्शित करता है और यही इसे एक अर्थ में एकतरफा भी बनाता है।

दूसरी ओर, सोशल मीडिया पूरी तरह

से उपयोगकर्ताओं द्वारा सृजित सामग्री पर आधारित है। जैसा कि जोनाथन ए. ओबर और स्टीव वाइल्डमैन इस विषय पर अपनी बहुचर्चित कृति में कहते हैं, "वेब 2.0 विचारधारा है और उपयोगकर्ता-जनित सामग्री ईंधन (Web 2-0 is the ideology and user-generated content is the fuel)"।[12] वह सभी जो मंच पर पंजीकृत हैं, अपने अनुभव, कला या जो कुछ भी साझा करना चाहें, उसे साझा करने के लिए स्वतंत्र हैं। उसी तरह, कोई भी इस पर प्रतिक्रिया करने के लिए स्वतंत्र है। यह सुविधा सोशल मीडिया प्लैटफॉर्म को एकतरफा संवाद का हिस्सा न बनाकर परस्पर संवादात्मक बनाती है। अभिव्यक्ति की यह स्वतंत्रता और संपर्क दोनों तब तक बिना किसी अवरोध के चलते रहते हैं, जब तक कि कोई उपयोगकर्ता के व्यवहार या गलत इरादे के खिलाफ ब्लॉक या रिपोर्ट के माध्यम से शृंखला को तोड़ नहीं देता है। यह संवाद सोशल मीडिया को अधिक प्रभावित करता है और यह सोशल मीडिया की इस विशेषता को बताता है कि कोई भी व्यक्ति यहाँ ऐसा नहीं है जो अभेद्य हो, जिसकी आलोचना न की जा सके। परंतु यह भी सत्य है कि यह विश्वसनीयता मात्र विचार या विचारधारा तक ही सीमित है। विभाजन की यह स्थिति तथाकथित मीडिया के साथ भी है, जो उदार या दक्षिणपंथी होने के तथ्य को स्वीकार करने के बावजूद निष्पक्ष रूप से दिखावा करता है। परंतु कई बार संवाद की विशेषता पूरे के पूरे गेम को पूरी तरह बदल देती है। राय का यह परिवर्तन केवल आभासी दुनिया तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह वास्तविक दुनिया को भी काफी बड़ी संख्या में प्रभावित करता है और प्रदर्शित करता है। पहले केवल यह सोशल मीडिया तक ही सीमित था कि आप अपना एजेंडा चला सकते हैं और सरकार के समक्ष भी अपने एजेंडे के अनुसार चलने की बाध्यता प्रस्तुत कर सकते हैं। अब सोशल मीडिया की बढ़ती भागीदारी के कारण यह एकतरफा खेल नहीं रह गया है। कई बार खेल एकदम बदल भी जाता है। जैसा कि जिम विलिस कहते हैं, "सभी मीडिया के प्रभाव को एक साथ लाना और फिर उसे मीडिया के द्वार पर रखने का मतलब यही कहना है कि व्यक्तिगत, समाचारपत्र, पत्रिकाओं, रेडियो, इंटरनेट, केबल टेलीवीजन और ब्रॉडकास्ट टेलीविजन के समूह के रूप में, सरकारी एजेंडे पर लगभग एक से ही प्रभाव या कुछ कम ज्यादा प्रभाव होते हैं।"[13]

मीडिया और एजेंडा सेटिंग

आगे वह इसमें अंतर्निहित पक्षों की बात करते हैं, "मीडिया के एजेंडा सेटिंग के मामले में सबसे कड़वा सच तो यह है कि हमें उस शक्ति या प्रभाव के उद्गम की जानकारी हमेशा नहीं होती है। आज का मीडिया संस्थानों का एक अवैयक्तिक संकलन है और वर्ल्ड वाइड वेब ने उन्हें और भी ऐसा बना दिया है।"[14] जाहिर है, पारंपरिक मीडिया जनता और सत्ता दोनों को ही अपनी उँगलियों पर उसी प्रकार नहीं नचा पा रहा है जैसा वह पहले स्वतंत्र और निर्बाध होकर कर रहा था। जैसा कि विलिस अपने (अमेरिकी) समाज के संदर्भ में बताते हैं, "पारंपरिक समाचार माध्यमों ने यह देखा है कि आम जनता में उनका आकर्षण कम होता जा रहा है, क्योंकि अब उसके आकर्षण के केंद्र गैर परंपरागत संचार माध्यम होते जा रहे हैं। समाचार और कमेंट्री के इन क्षेत्रों का प्रभाव, विलियम पी. एवलैंड के 2004 के अध्ययन का विषय था। इस अध्ययन से पता चलता है कि राजनीतिक संवाद के गैर-पारंपरिक माध्यम अंततः पारंपरिक मीडिया जैसे टेलीविजन समाचार और समाचार पत्रों के बराबर ही सकारात्मक प्रभाव पैदा कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त कुछ और प्रमाण हैं कि यह सकारात्मक प्रभाव कम शिक्षित लोगों के मध्य बढ़ाए जा सकते हैं, और जिसके कारण ज्ञान का अंतर कम हो सकता है"।[15] मीडिया के एक से दूसरे माध्यम में परिवर्तन की यह यात्रा अमेरिका ही नहीं, पूरे विश्व में परिलक्षित हो रही है। हर नई पीढ़ी नए माध्यम की ओर आकर्षित होती है। यह उतना ही स्वाभाविक है, जितना कि तकनीक में बदलाव।

तकनीक में किसी भी प्रकार का परिवर्तन समाज को अच्छे और बुरे दोनों तरीकों से प्रभावित करता है। तो यह समाज पर दोनों ही प्रकार के प्रभाव डालता है। यही कारण है कि मार्शल मैक्लुहान जैसे विद्वान कंटेंट अर्थात पाठ्य सामग्री के बजाय माध्यम पर अधिक जोर देते हैं। और उन्होंने अपनी प्रथम प्रकाशित पुस्तक द 'मीडियम इज द मेसेज', जो सबसे पहले 1967 में प्रकाशित हुई थी में लिखा है, "समाज को आकार देने में हमेशा संप्रेषित किए गए कथ्य की तुलना में उस माध्यम की प्रकृति का योगदान अधिक रहा है जिसके द्वारा मनुष्य संवाद स्थापित करता रहा है। उदाहरण के लिए, वर्णमाला एक तकनीक ही है जिसे एक छोटा बच्चा अपने मन में पूरी तरह अचेतन ढंग से बैठा लेता है, कह सकते हैं कि निकट संपर्क के प्रभाव से। शब्द और शब्दों के अर्थ बच्चे को कुछ तरीकों से सोचने और कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। वर्णमाला और मुद्रण तकनीक ने एक विखंडन प्रक्रिया, विलक्षणता एवं असंलग्नता की प्रक्रिया को बढ़ाया है। विद्युत प्रौद्योगिकी एक होने और संलग्नता के बोध को बढ़ाती है। मीडिया के कामकाज के ज्ञान के बिना सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को समझना असंभव है"।[16]

मार्शल मैकलुहान वह व्यक्ति हैं जिन्होंने 'माध्यम ही संदेश है' (the medium is the message) और 'वैश्विक गाँव' (global village) जैसे अति लोकप्रिय मुहावरे गढ़े हैं। यही वह व्यक्ति हैं जिन्होंने वर्ल्ड वाइड वेब के आविष्कार के 30 साल पहले ही

वर्णमाला एक तकनीक ही है जिसे एक छोटा बच्चा अपने मन में पूरी तरह अचेतन ढंग से बैठा लेता है, कह सकते हैं कि निकट संपर्क के प्रभाव से। शब्द और शब्दों के अर्थ बच्चे को कुछ तरीकों से सोचने और कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। वर्णमाला और मुद्रण तकनीक ने एक विखंडन प्रक्रिया, विलक्षणता एवं असंलग्नता की प्रक्रिया को बढ़ाया है। विद्युत प्रौद्योगिकी एक होने और संलग्नता के बोध को बढ़ाती है

साभार : https://www.profitroom.com/blog/hotel-social-media-how-to-run-it/

इसके विषय में भविष्यवाणी कर दी थी। जाहिर है, आज के समाज में वर्ल्ड वाइड वेब और सोशल मीडिया के कारण जो समस्याएँ पैदा हो रही हैं, उनका भी कुछ न कुछ खाका उनके मन में रहा होगा। यह अपने कुछ उपयोगकर्ताओं के एक लत बन गया है, तो दूसरों के लिए भी एक विवशता। यही लत और विवशता है, जिसके कारण फेसबुक डिप्रेशन, सोशल मीडिया एंग्जाइटी और यहाँ तक कि कैटफिशिंग जैसी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ पैदा होती हैं। एक डॉक्यूमेंट्री फिल्म पर आधारित एमटीवी का शो कैटफिश सोशल मीडिया कनेक्शन के भ्रम को दर्शाने वाला एक अच्छा उदाहरण है। "कैटफिश शब्द उन लोगों के लिए प्रयुक्त होता है, जो नकली सोशल नेटवर्किंग प्रोफाइल बनाते हैं, और 'कैटफिशिंग' का अभिप्राय गलत या चोरी की पहचान के साथ ऑनलाइन अजनबी लोगों की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाना ही है। यह एक बहुत ही भ्रामक एवं दु:ख पहुँचाने वाला कदम है और इसके कारण कई लोगों की शादियाँ, रिश्ते और भावनात्मक संतुलन बर्बाद हो चुका है।"[17] और अब किसी को यह बताने की जरूरत नहीं कि यही अंत नहीं है। सोशल मीडिया बदमाशों की शरणस्थली भी बन गया है। सोशल मीडिया ने असामाजिक तत्वों को कई ऐसी आपराधिक गतिविधियों के लिए सक्षम बना दिया है, जिनके विषय में पहले सोचा भी नहीं जा सकता था। उपयोगकर्ताओं के लिए भावनात्मक समस्याएँ पैदा करने के अलावा, दुष्ट लोग अपने हित में इसका दुरुपयोग भी कर रहे हैं। ऐसे लोग झूठ बोलने, घोटाले करने, हमला करने और यहाँ तक कि कई तरीकों से दूसरों को चोट पहुँचाने के लिए सोशल मीडिया प्लैटफॉर्म का इस्तेमाल कर रहे हैं। कई अपराधियों ने अपनी पहचान छुपाने और साइबर बदमाशी, साइबर आतंकवाद, मानव तस्करी, नशीली दवाइयों के कारोबार के लिए सोशल मीडिया का इस्तेमाल किया है।[18] दो दशकों के भीतर सोशल मीडिया के प्रयोग से दादागीरी का एक नया रूप सामने आया है, जिसे साइबर बुलींग कहा जाता है। साइबर बुली करने वाले अपराधियों के पास प्राय: अपनी पहचान छुपा लेने की सुविधा होती है। वे अकसर किसी फर्जी पहचान से ही लोगों को आतंकित करते हैं। जैसा कि सांता क्लारा विश्वविद्यालय में सोशल मीडिया के अध्येता जैकब एमीडे ने तथ्यों के साथ कहते हैं, "हाल के अध्ययनों से संकेत मिलता है कि लगभग 20-35% किशोरों ने बुलिंग की रिपोर्ट की है, फिर चाहे वह पीड़ित के रूप में हो या फिर बुली के रूप में।"[19]

अपनी असली पहचान जाहिर किए बिना संदेश पोस्ट कर पाने की इस सुविधा ने सोशल मीडिया को जघन्यतम अपराधियों के लिए सबसे सुरक्षित गढ़ बना दिया है। यही कारण है कि आतंकवादी समूह अपने भयावह षड्यंत्रों के लिए भी तेजी से सोशल मीडिया को अपना रहे हैं। एमेडी के अनुसार, "पिछले कुछ दशकों में, इस्लामिक आतंकवाद की घटनाएँ केवल मुस्लिम बहुल देशों ही नहीं, बल्कि यूरोप, रूस और संयुक्त राज्य अमेरिका सहित पूरे विश्व में बड़े पैमाने पर हुई हैं। सोशल मीडिया का उपयोग आतंकवाद अपने लाभ के लिए, जानकारी एकत्र करने के लिए, सदस्यों की भर्ती के लिए, फंड जुटाने के लिए, और उन्नत योजनाओं के लिए कर रहे हैं।"[20] वुड्रो विल्सन सेंटर के फेलो और इज़्राइल के हाइफा विश्वविद्यालय में प्रोफेसर वीमैन इंटरनेट के शुरुआती दिनों से आतंकवाद और सोशल मीडिया के बीच संबंधों का अध्ययन कर रहे हैं। उन्होंने 'न्यू टेररिज्म एंड न्यू मीडिया' शीर्षक से एक नई रिपोर्ट प्रकाशित की है। वीमैन के अनुसार, "आतंकवादियों ने लगभग 16 साल पहले इंटरनेट का इस्तेमाल शुरू किया था। तब से, आतंकवादी समूहों द्वारा इंटरनेट और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के इस्तेमाल की घटनाएँ 12 से 9,800 तक हो गई हैं, अर्थात 9,800 आतंकवादी घटनाएँ हो चुकी हैं। 9/11 के बाद, कई आतंकवादी समूह, जैसे कि जिहादी आंदोलन और अल-कायदा ने अपने काम करने के क्षेत्र में बदलाव कर

लिया और वह साइबर स्पेस में आ गए।[21]

सर्वाधिक असुरक्षित

ये सभी तथ्य इस विचार को पूरी मजबूती से स्थापित करते हैं कि सोशल मीडिया मीडिया का सबसे सुभेद्य रूप है। यह केवल भावनात्मक समस्याओं और अपराध के दृष्टिकोण से ही अति-संवेदनशील नहीं है, बल्कि कई सामाजिक समस्याओं में भी वृद्धि करता है। लेकिन अब मीडिया के पुराना रूप के विषय में तो सोचा भी नहीं जा सकता है। न तो हम तकनीक को विकसित होने से रोक सकते हैं, न ही मानवता को प्रगति करने से। कुल मिलाकर हम जो कर सकते हैं, वह इतना ही है कि तकनीक की दृष्टि से खुद को अद्यतन करें और सामान्य नागरिकों के हितों की सुरक्षा के लिए कुछ ठोस उपाय कर लें। हम एक ऐसे युग में प्रवेश कर गए हैं जहाँ समग्र मानव समाज वास्तव में तकनीकतांत्रिकता (टेक्नोपोलाइज्ड) का शिकार हो चुका हैं। नील पोस्टमैन तकनीकतांत्रिकता (टेक्नोपोली) की व्याख्या एक ऐसे समाज के रूप में करते हैं, "जहाँ तकनीक पर देवत्व अधिरोपित कर दिया जाता है अर्थात संस्कृति अपनी मान्यता की तलाश तकनीक में करती है और उसी से आदेश प्राप्त करने लगती है। इसका एक लक्षण है तकनीक द्वारा उत्पादित सूचना का अतिरेक, जिसके तकनीकी उपकरण समाज और व्यक्तियों के लिए दिशा और उद्देश्य प्रदान करने में सहायता के लिए बनाए गए हैं।[22] मार्शल मैकलुहान ने इसे एक उदाहरण देते हुए काफी पहले ही समझाया था। "रोबर्ट थियोबाल्ड ने 'द रिच एंड द पूअर' में पुरानी तकनीक को पीछे धकेल देने वाली नई तकनीक के विध्वंसक प्रभाव के उदाहरण से समझाया है।" जब ऑस्ट्रेलियाई मूल के निवासियों को मिशनरियों ने स्टील की कुल्हाड़ी दी, तो पत्थर की कुल्हाड़ी पर आधारित उनकी संस्कृति ध्वस्त हो गई। पत्थर की कुल्हाड़ी न केवल दुर्लभ थी, बल्कि यह इसलिए भी महत्वपूर्ण थी कि यह बुनियादी तौर पर हमेशा पुरुष की महत्ता और प्रतिष्ठा की सूचक थी।" अंत में उन्होंने निष्कर्ष निकाला, "धन या वाहन या लेखन का माध्यम, या विनिमय और सूचना के विशेष तेज रूप से जनजातीय संरचना पर आघात होगा। इसी प्रकार एक व्यापक तेज गति, जैसा बिजली के साथ होता है, से सघन संलग्नता की जनजातीय प्रवृत्ति का पुनरुद्धार हो सकता है; जैसे यूरोप में रेडियो के आरंभ के साथ हुआ, और अभी अमेरिका में ओइ टीवी एम के आने के आगाज के साथ हो रहा है। विशेषज्ञ तकनीकियाँ जनजातीय अस्मिता के क्षय का कारण बनी हैं, गैरविशेषज्ञ विद्युत तकनीकियाँ जनजातीय अस्मिता को नए सिरे से उभारती हैं।"[23]

जानकारी और स्मार्ट कानून

इन स्थितियों में एकमात्र उपाय, जो हमें तेज गति से विकसित होती तकनीक और सोशल मीडिया के चलते पैदा हुई मुसीबतों से बचा सकता है, वह है ज्ञान का प्रसार और चुस्त कानून। वस्तुत: इंटरनेट और विशेष रूप से सोशल मीडिया को इसके आरंभिक दिनों में लोकतांत्रिक विमर्श के लिए एक वरदान के रूप में देखा गया था। इसलिए मीडिया विनियमन सभी उदार और लोकतांत्रिक देशों में एक बेहद संवेदनशील और विवादास्पद विषय बन गया है। शायद यही कारण है कि संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशों ने कानून के जरिये इसका नियमन करने के बजाय आत्म-नियमन पर अधिक भरोसा किया।

हालाँकि चीन जैसे साम्राज्यवादियों ने अपनी सीमाओं के भीतर पूरे मीडिया पर पूर्ण नियंत्रण कर रखा है, और सोशल मीडिया भी उसी का एक हिस्सा है। चीन में ट्विटर, गूगल और व्हाट्सएप जैसी साइटों तक को अनुमति नहीं है। इसके स्थान पर वेइबो, बाइडू और वीचौट जैसे चीनी प्रदाताओं द्वारा अपनी सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। बीबीसी की एक रिपोर्ट के अनुसार, "चीन के साइबरस्पेस प्रशासन ने जनवरी 2019 के अंत में घोषणा की कि पिछले छह महीनों में इसने 733 वेबसाइटों को बंद कर दिया था और 9,382 मोबाइल ऐप्स को पूरी तरह खंगाल कर उनकी सामग्री नष्ट कर डाली थी। हालाँकि यह भी संभावना है कि उनमें से अधिकतर वह साइट्स थीं जो गैर कानूनी रूप से जुआ खेलने वाली वेबसाइटें थीं या फिर गैर कानूनी रूप से बने हुए एप्स थे, जो किसी असली एप की कॉपी थे।[24] चीन ने खोज के लिए प्रयोग किए जाने वाले कुछ कुंजी शब्दों भी स्वचालित रूप से प्रतिबंधित कर दिया है, जैसे 1989 थ्येन आन मन चौक के संदर्भ में। रूस के पास एक ऐसा कानून है जो सरकार को किसी समय वेब कनेक्शन बंद करने की शक्ति देता है। वर्ष 2015 से रूस के डाटा कानूनों के अनुसार सोशल मीडिया के लिए यह आवश्यक है कि वह सारा डाटा देश के सर्वर पर ही रखें। इसके संचार निगरानी तंत्र ने लिंक्डइन को अवरुद्ध कर दिया और फेसबुक और ट्विटर पर यह स्पष्ट नहीं करने के लिए जुर्माना लगाया कि उन्होंने इसके अनुपालन की योजना कैसे बनाई।[25] ऑस्ट्रेलिया ने वर्ष 2019 में एभोरेंट वायलेंट मटेरियल अधिनियम पारित किया। इसके अधीन सोशल मीडिया कंपनियों पर आपराधिक दंड, तकनीकी अधिकारियों के लिए तीन साल तक के लिए संभावित जेल की सजा और कंपनी के वैश्विक कारोबार के 10% तक के आर्थिक दंड का प्रावधान है। यूरोपीय संघ के भी इस संबंध में सख्त कानून हैं। वहाँ प्रावधान है कि यदि सोशल मीडिया एक घंटे के भीतर चरमपंथी कंटेंट नहीं हटाती तो उस पर जुर्माना लग सकता है। यूरोपीय संघ ने जनरल डाटा प्रोटेक्शन रेगुलेशन (GDPR) भी प्रस्तुत किया है। यह सोशल मीडिया प्लैटफॉर्म सहित कंपनियों के लिए नियम सेट करता है, लोगों के डाटा को भंडारित करता है और इस्तेमाल करता

चीन के साइबरस्पेस प्रशासन ने जनवरी 2019 के अंत में घोषणा की कि पिछले छह महीनों में इसने 733 वेबसाइटों को बंद कर दिया था और 9,382 मोबाइल ऐप्स को पूरी तरह खंगाल कर उनकी सामग्री नष्ट कर डाली थी। हालाँकि यह भी संभावना है कि उनमें से अधिकतर वह साइट्स थीं जो गैर कानूनी रूप से जुआ खेलने वाली वेबसाइटें थीं या फिर गैर कानूनी रूप से बने हुए एप्स थे, जो किसी असली एप की कॉपी थे

है। जर्मनी में, NetzDG कानून वर्ष 2018 से क्रियान्वित है। यह कानून देश में दो मिलियन से अधिक पंजीकृत उपयोगकर्ताओं वाली कंपनियों पर लागू होता है। उन्हें उन कंटेंट के बारे में शिकायतों की समीक्षा करने के लिए प्रक्रियाओं को नियत करने के लिए बाध्य होना पड़ा था, जिन्हें वह होस्ट कर रहे थे। उन्हें वह हर चीज हटानी पड़ी थी जो गैरकानूनी थी और वह भी 24 घंटों के भीतर और हर छह महीने में अपडेट करना पड़ा था कि वह ऐसा कैसे कर रहे हैं। इन आवश्यकताओं का पालन करने में विफल होने पर व्यक्तियों पर 5 से 50 मिलियन यूरो तक का जुर्माना लगाया जा सकता है। यूनाइटेड किंगडम के पास अभी भी इस संबंध में स्पष्ट कानून नहीं है, हालाँकि उन्होंने एक कानून का प्रस्ताव रखा है जिसके जल्द ही लागू होने की उम्मीद है। हाल ही में प्रस्तुत किए गए यह प्रस्ताव यूके सरकार द्वारा तकनीकी दिग्गजों को इस विषय में बाध्य करने के लिए थे कि कैसे वह अपने प्लैटफॉर्म से विषैले और विषाक्त सामग्री को हटाएँ। फेसबुक, इंस्टाग्राम, टिकटॉक, ट्विटर और अन्य लोकप्रिय सोशल नेटवर्क के लिए स्पष्ट नियम और शर्तें स्थापित करने की आवश्यकता होगी, जो यह निर्धारित करते हैं कि वह कैसे उस सामग्री का प्रबंधन करें जो यद्यपि गैर कानूनी नहीं है परंतु जिसके प्रयोग से व्यक्तियों को हानि हो सकती है जैसे कोरोना वायरस के टीके के विषय में गलत सूचनाएँ।

जहाँ तक भारत का संबंध है, हमारा संविधान कुछ सीमित परिस्थितियों में सेंसरशिप की अनुमति देता है। यह समस्या इंटरनेट की वैश्विक प्रकृति के कारण भी है। उस सामग्री को नियंत्रित करना बहुत मुश्किल है जो विदेशों में अपलोड की जाती है और भारत में देखी जाती है। इसलिए सेंसरशिप के अधिकांश प्रयास विफल और असंगत रहे हैं। हमारे संविधान का अनुच्छेद 19 (1) वाक्-स्वातंत्र्य एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार की रक्षा करता है, चाहे वह किसी भी माध्यम से की जाए। अनुच्छेद 19 (2) सार्वजनिक महत्व के मुद्दों पर कुछ सीमा के भीतर युक्तियुक्त निर्बंधन की अनुमति देता है। अनुच्छेद 19 (2) के अनुपालन में भारत ने 2000 में सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम को लागू किया है। इसमें समय-समय पर संशोधन भी किया गया है। फिर भी, यह समय के साथ बढ़ती जरूरतों को पूरा नहीं करता। फिर भी भारत ही नहीं, अभी संपूर्ण विश्व में इस संदर्भ में बहुत कुछ करने की जरूरत है। विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि दुनिया में ऐसे भी देश हैं जो अन्य देशों के सोशल मीडिया को अपनी सीमा में प्रवेश की कोई अनुमति ही नहीं आने देते, जबकि उनकी साइट्स पूरी दुनिया में खूब देखी जा रही हैं।

जाहिर है, इंटरनेट और सोशल मीडिया पर निर्बाध रूप से और निरंतर से प्रवहमान सामग्री को नियंत्रित करना और उसके लिए कानून बनाना सरल नहीं है। पारंपरिक दुनिया के सामान्य कानून इसके लिए प्रभावी नहीं होंगे। हमें फ्रांसिस फुकुयामा के सुझाव पर गौर करना होगा, "आधुनिक उदारवादी लोकतांत्रिक राज्य वाक् स्वातंत्र्य को विधि के माध्यम से उस तरह नियंत्रिक नहीं करते जैसे कि अधिनायकवादी देश करते हैं। यथा कोई एक सरकारी प्राधिकारी बैठाकर किसी मीडिया चैनल द्वारा कही जाने वाली प्रत्येक बात का निरीक्षण करें और फिर उसमें काट-छाँट करके तब उसके प्रकाशन या प्रसारण की अनुमति प्रदान करें। उनका कार्य करने का तंत्र अप्रत्यक्ष होता है। वे लाइसेंस के माध्यम से; निजी मीडिया को सहारा देने के लिए राजस्व के स्रोतों का प्रबंधन करके; और किस प्रकार की सामग्री स्वीकार्य समझी जाए तथा किस प्रकार की नहीं, इस संबंध में दिशा-निर्देश तय करके; लोक प्रसारण या किसी अन्य तंत्र के माध्यम से कुछ निश्चित कथ्य सामग्री को प्रोत्साहित करके; और नेताओं एवं अन्य सुविख्यात हस्तियों सहित निजी नागरिकों के लिए थोड़े-बहुत अधिकारों के साथ, प्रेस के खिलाफ मानहानि और गोपनीयता के उल्लंघन के दावे दायर करने के विषय में दिशानिर्देश सुनिश्चित करके मीडिया की पहुँच को नियंत्रित करते हैं। इसके साथ ही राज्यों ने पाठ्य या कथ्य सामग्री उपलब्ध कराने वालों से ही आत्मनियमन को प्रोत्साहित करने की अपेक्षा की है। ये वही तकनीकें हैं जो आगे बढ़कर इंटरनेट युग तक चली आई हैं। मीडिया विनियमन के लिए एक वैकल्पिक दृष्टिकोण अविश्वास भी है।"[26]

संदर्भ :

1. विलिस, जिम; द *मीडिया एफेक्ट: हाउ द न्यूज इन्फ्लुएंसेज पॉलिटिक्स एंड गवर्नमेंट*, प्रेजर पब्लिशर्स, यूएसए (2007), पृ.73
2. https://indianexpress.com/article/explained/why-india-tightened-fdi-rules-and-why-its-china-thats-upset-6374693/
3. टपरियाल, वरिंदर एवं कंवर, प्रिया; *अंडरस्टैंडिंग सोशल मीडिया*, बुकबून, यूके (2012), पृ.8
4. https://www.bbc.com/news/technology-50234141
5. अमेडी, जैकब; द *इंपैक्ट ऑफ सोशल मीडिया ऑन सोसायटी*, एडवांस्ड *राइटिंग: पॉप कल्चर इंटरसेक्शंस 2* (2015), पृ. 5
6. https://www.statista.com/statistics/278407/number-of-social-network-users-in-india/
7. https://www.statista com/statistics/257048/smartphone-user-penetration-in-india/#:~:text=India%20smartphone%20penetration&text=As%20of%202015%2C%2018.21%20percent,over%2025%20percent%20by%202017.
8. https://en.wikipedia.org/wiki/List_of_countries_by_smartphone_penetration
9. https://www.nationmaster.com/country-info/stats/Media/Personal-computers/Per-capita
10. http://www.ifabc.org/news/More-People-Read-Newspapers-Worldwide-Than-Use-Web#:~:text=This%20was%20the%20

key%20finding,600%20million%20in%20digital%20form.
11. https://tradingeconomics.com/india/television-sets-per-1000-people-wb-data.html
12. ओबर, जे.ए. एवं वाइल्डमैन, एस.; *सोशल मीडिया डिफिनिशन एंड द गवर्नेंस चौलेंज: ऐन इंट्रोडक्शन टु द स्पेशल इश्यू, टेलीकम्युनिकेशंस पॉलिसी: द इंटरनेशनल जॉर्नल ऑफ आइसीटी इकोनॉमी, गवर्नेंस एंड सोसायटी*, एम्सटर्डम: एल्सेवियर साइंस, आइएसएसएन 0308-5961, जेडडीबी-आइडी. - अंक 39.2015, 9, पृ.745-750
13. विलिस, जिम: द *मीडिया इफेक्ट: हाउ द न्यूज इन्फ्लूएंसेज पॉलिटिक्स एंड गवर्नमेंट*, प्रेजर पब्लिशर्स, यूएसए (2007), पृ. 67
14. वही, पृ. 68
15. वही, पृ. 68
16. मैक्लुहान, मार्शल; द *मीडियम इज द मेसेज*, गीको प्रेस (1996), पृ.9
17. अमेडी, जैकब; द *इंपैक्ट ऑफ सोशल मीडिया ऑन सोसायटी, एडवांस्ड राइटिंग: पॉप कल्चर इंटरसेक्शंस 2* (2015), पृ. 10
18. वही, पृ.12
19. वही, पृ.12
20. वही, पृ.13
21. यथा उद्धृत, वही, पृ..13
22. पोस्टमैन, नील; टेक्नोपोली: द *सरेंडर ऑफ कल्चर टु टेक्नोलॉजी*, विंटेज (पुनर्मुद्रण 1993), पृ.71-72
23. मैक्लुहान, मार्शल; अंडरस्टैंडिंग मीडिया: द *एक्सटेंशंस ऑफ मैन*, एमआइटी प्रेस, लंदन एवं न्यूयॉर्क (1994), पृ. 32
24. https://www.bbc.com/news/technology-47135058
25. वही
26. फुकुयामा, फ्रांसिस एवं ग्रोटो, एंड्यू; *कंपरेटिव मीडिया रेगुलेशन इन द यूनाइटेड स्टेट्स एवं यूरोप; संकलन सोशल मीडिया एंड डेमोक्रेसी: द स्टेट ऑफ द फील्ड, प्रॉस्पेक्ट्स फॉर रिफॉर्म* [सं.- पर्सिली, नथैनियल एवं टकर, जोशुआ ए.], ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस (2020), पृ.200

सोशल मीडिया की लत

युवाओं के लिए सोशल मीडिया अब केवल एक जरूरत नहीं रही, बल्कि लत का रूप लेती जा रही है और यह लत दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। भारत में यह स्थिति अधिक गंभीर हो रही है। न्यूयॉर्क में हुए एक शोध के अनुसार सोशल मीडिया की लत लगना किसी के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। मनोविज्ञान में क्षोभ, कर्तव्यनिष्ठा और सहमति जैसे कारकों का सोशल मीडिया की लत से संबंध देखा गया।

सिस्टम साइंस पर आयोजित 51वें हवाई अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में प्रस्तुत किए गए इस शोध में 300 कॉलेज जाने वाले छात्रों से आँकड़े लिए गए। शोध के अनुसार क्षोभ के शिकार लोग तनाव और चिंता जैसी नकारात्मक भावनाओं को अधिक अनुभव करने वाले होते हैं। इसलिए इनमें सोशल मीडिया की लत लगने की आशंका अधिक देखी गई है।

दूसरी तरफ कर्तव्यनिष्ठा व्यक्तित्व के लोग काफी दृढ़ निश्चयी और लक्ष्य के प्रति समर्पित होते हैं। ऐसे लोगों में सोशल मीडिया की लत का असर कम देखा गया। वहीं सहमति व्यक्तित्व के लोग मित्रतापूर्ण, दयालु और सहायक व्यवहार के होते हैं। ऐसे लोगों में सोशल मीडिया की लत कम देखी गई।

वहीं यूनिवर्सिटी कॉलेज लंदन के विशेषज्ञों के एक अध्ययन में पता चला कि जो बच्चे एक दिन में तीन बार सोशल मीडिया का इस्तेमाल करते हैं, उनमें मानसिक बीमारी होने की संभावना अधिक रहती है। यह निष्कर्ष 13 हजार किशोरों के साथ किए इंटरव्यू के माध्यम से प्राप्त डाटा का विश्लेषण पर आधारित है।

वैज्ञानिकों ने पाया कि उन किशोर लड़कियों में चिंता की दर 28 प्रतिशत अधिक थी, जो अक्सर सोशल मीडिया का इस्तेमाल करती थीं। वहीं फेसबुक, ट्विटर और इंस्टाग्राम जैसी लोकप्रिय सोशल साइटों का इस्तेमाल करने वाले लड़के भी इस समस्या के शिकार पाए गए, लेकिन लड़कियों के मुकाबले लड़के इस बीमारी से कम ग्रस्त पाए गए।

शोधकर्ताओं के अनुसार सोशल मीडिया सीधे तौर पर मानसिक स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाता है। उनका मानना है कि सोशल मीडिया पर घंटों समय बिताने वाली कुछ लड़कियाँ तो साइबर बुलिंग की शिकार होती हैं, इसके अलावा इससे उनकी नींद भी प्रभावित होती है। ऐसे लोगों को नींद और व्यायाम की कमी के कारण शारीरिक समस्याएँ भी होती हैं। अध्ययन के प्रमुख शोधकर्ता प्रोफेसर रसेल विनर ने कहा, हमारे परिणाम बताते हैं कि सोशल मीडिया के बार-बार इस्तेमाल करने से वो गतिविधियाँ बाधित होती हैं जो मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डालती हैं।

इस अध्ययन में सिर्फ 43 फीसदी लड़के और 51 फीसदी लड़कियाँ एक दिन में कई बार सोशल मीडिया का इस्तेमाल करते हुए पाए गए। हालांकि, 2015 में यह आँकड़ा क्रमशः 69 प्रतिशत और 75 प्रतिशत तक पहुँच गया। अध्ययन में देखा गया कि कई बार सोशल मीडिया का इस्तेमाल करने से दोनों लिंगों में मानसिक समस्या अधिक थी। शोध में पता चला है कि दुनियाभर में 10 में से नौ और 13 से 17 साल के किशोर सोशल मीडिया का इस्तेमाल करते हैं।

भाषा संवर्द्धन में हिंदी पत्रकारिता की भूमिका

कुमुद शर्मा

"

संचार की कला ही नेतृत्व की भाषा है।

-जेम्स ह्यूम्स अमेरिकी लेखक

"

भाषा को मानक स्वरूप देने में साहित्य और पत्रकारिता की भूमिका आज केंद्रीय है। इस क्रम में हिंदी की यात्रा का एक सिंहावलोकन

भाषा किसी भी देश के स्वभाव की पहचान होती है। उसकी मूल्यवान संपदा होती है। भाषा के बनने सँवरने की यात्रा के अपने घुमाव और पड़ाव होते हैं। साहित्य और पत्रकारिता दोनों ही भाषा की पाठशाला के साथ-साथ भाषा की टकसाल भी होते हैं। भाषा के स्वाभाविक विकास के साथ भावों और विचारों की नई सरणियाँ भाषा को नए रुप में समृद्ध करती रहती हैं। भारतीय पत्रकारिता की दीर्घकालिक समृद्ध विरासत में भी हिन्दी भाषा के बनने सँवरने और निखरने का इतिहास दर्ज है। प्रेस पर अंकुश रखने के इरादे से पारित अधिनियमों के बावजूद स्वाधीनता आंदोलन के दौर में भारतीय समाज को जागृत करने में भाषाई पत्रकारिता की ऐतिहासिक भूमिका रही है।

भारत में सन् 1780 में पहला समाचार पत्र 'बंगाल गजट' के प्रकाशन के बाद 1826 तक भारतीय पत्रकारिता के प्रारंभिक समय में अंग्रेजी अख़बार की तुलना में भारतीय भाषाओं के अख़बार की बिक्री ज़्यादा थी। प्रथम स्वाधीनता संग्राम से पहले भाषायी पत्रों ने भारतीय जनता पर अपनी पकड़ बना ली थी। उनका प्रभाव कैसा था इसे 1859 में पादरी जे. लांग द्वारा भाषाई पत्रों पर प्रस्तुत रिपोर्ट से जाना जा सकता है। इस रिपोर्ट में लिखा गया है कि- "भाषायी पत्रों में जो राय प्रकट की जाती है वह सुरक्षा वॉल्व की तरह काम करती है और आनेवाले ख़तरे की पूर्व चेतावनी देती है। जनवरी, 1857 में दिल्ली से निकलने वाले भाषायी पत्रों को यदि यूरोपियों ने पढ़ा होता तो निश्चय ही उन्हें इसकी जानकारी मिल गयी होती कि भारतीय जनता विद्रोह को तैयार है।"[1]

आधुनिक खड़ी बोली हिन्दी के विकास में समाचार पत्र और पत्रिकाओं की आंदोलनात्मक भूमिका रही है। हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास, आधुनिक हिन्दी भाषा का इतिहास और भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का इतिहास एक साथ रचा गया। आत्मविश्वास, आत्मगौरव, आत्मावलम्बन की भावना के दृढीकरण के काल में हिन्दी राष्ट्रीय एकता का पर्याय बनी। औपनिवेशिक सत्ता से मुक्ति की चेतना की संवाहिका बनी।

हिन्दी पत्रकारिता की विकास यात्रा हिन्दी भाषा की गतिशीलता के रुप में उसके स्वरूप -विकास की यात्रा भी बन गयी। काल क्रम की दृष्टि से 30 मई, 1826 को युगल किशोर शुक्ल के संपादकत्व में हिन्दुस्तानियों के हित की बलवती आकांक्षा से जन्मे हिंदी के प्रथम समाचार पत्र निकला। इस समाचार पत्र के 19 दिसंबर 1826 के अंक में भारत के गवर्नर लॉर्ड एल्महर्स्ट की लखनऊ यात्रा का विवरण की भाषा का एक नमूना है- "जिस समय 'ए' नगर में पीछे उतने समय देखने में आया कि राजमार्ग में दोनों ओर छोटी-छोटी हवेलियों के बाजारों पर (बारजों पर) सुसज्जर और कमखाब और ताशबादलै के कायों के सोनहले और रूपहले और कारचोबियें के काय के कपड़े लोगों ने लटकाए थे। और लखनऊ शहर भीतर जितनी दुकानें जिस-जिस पदार्थ की थीं, उस समय

सामग्री से सुची उसकी शोभा देखते ही बन आवती है। और जेंब-जेंब सवारी शहर में धँसी तेंब-तेंब ठौर-ठौर नाय रंग भी देखने आए। फिर जब वे आसुफहद्दौला को महल के ड्राप्स होके निकले, उस समय बादशाह की जेठी बहिन की डेवढ़ी की तैनाती फौज आके सलामी की। जब सवारी फरीदबख्श मुलतानी कोठी के पास पहुँची, वहाँ पर बहुत सी तोपें दगियां और लोगों ने उसी कोठी में हाजिरी खाई।"

इस पत्र की रिपोर्टिंग का अंदाज इक्कीसवाँ सदी की रिपोर्टिंग से मेल खाता है, लेकिन भाषा की दृष्टि से उदंत मार्तड 'की भाषा संस्कृत, अरबी, फारसी और क्षेत्रीय शब्दावली के मिश्रण से निर्मित है। यह ब्रजभाषा और तत्कालीन हिंदी का मिला जुला रुप था। जिसे 'मध्यदेशीय भाषा' कहा गया। भारत के मध्यदेश को विद्वानों ने "हमारा यह मध्यदेश भगवती भारती के परिभ्रमण का प्रधान पुष्पोद्यान है । उसमें भी यह ग्रैंड ट्रंक रोड मानो भाषा भारत की भी ग्रैंड ट्रंक रोड है, जो सदा देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक निरन्तर चलती रहती है।"[2]

मध्य देश को 'हिंदी भाषी प्रदेशों का समुदाय' भी कहा गया है। डॉ धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इस भाषा का वैशिष्ट्य यह था कि यह 'दूसरी भाषाओं से संबंध स्थापित करतीं थी और परस्पर संयोजित करतीं थी।" पत्रकारों और पत्रकारिता के इतिहासकारों ने माना कि भारतेंदु हरिश्चंद्र के प्रवेश से पूर्व गद्य के इस प्रारंभिक रुप को 'खड़ी बोली शैली का मूल रुप' माना- "यह सही है कि 'उदंत मार्तड की भाषा आज के हिंदी समाचार पत्रों से बहुत भिन्न है, फिर भी हम यह कह सकते हैं कि खड़ीबोली शैली का मूल रुप उसमें परिलक्षित होता है।....एक प्रकार से युगल किशोर शुक्ल ने भविष्य के हिंदी पत्रों और हिंदी के गद्य का वह रुप स्थापित किया, जो भारतेंदु हरिश्चंद्र के उदय से पूर्व हिंदी पत्रों का मानक बना।"[3]

9 मई 1829 को राजा राममोहन राय, द्वारिकानाथ ठाकुर और प्रसन्नकुमार ठाकर के स्वत्वाधिकार में प्रकाशित होने वाले फारसी, बंगला और अंग्रेजी में प्रकाशित होनेवाले बहुभाषी पत्र 'बंगदूत' के हिंदी खण्ड का प्रकाशन एक क्रांतिकारी कदम माना गया गया। जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी के अनुसार इसने अहिंदी भाषियों के हिंदी समाचार -पत्र प्रकाशित और संपादित करने की परम्परा स्थापित कर दी। इसके प्रथम संपादकीय की भाषा का एक नमूना प्रस्तुत है-"भारत खण्ड को ठकुराई औ राजनीति औ बनज वैपार औ विघा अभ्यास के प्रकार औ सब देश के समाचार औ देशान्तरनि की विघा औ सुघरता के प्रसंगनि से प्रसंगनि ये शास्त्रार्थ यह समाचार पत्र बंगला और काल पड़े से पारसी औ हिंदी भाषा में प्रति तस्वीरें छपेगा जिस करके बहु भाँति के प्रयोजन के मूल सजीव होने की संभावना है।" हिंदी में इन पत्रों का प्रकाशन इस बात का प्रमाण है कि हिंदी के महत्व को समझना और समझाना शुरू हो गया था।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के फलस्वरूप जागरण के जो अंकुर फूटे उनने भाषा और बोलियों को भी प्रभावित किया। प्रांतीय भाषाओं के साहित्य ने अंगड़ाई ली। इसके बाद साहित्य सृजन के फलक पर कलम हाथ में लेनेवाला साहित्यकार पत्रकार की भूमिका में नजर आया। इसीलिए साहित्य और पत्रकारिता के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं बन सकी, हिंदी प्रदेशों में हिंदी के पत्रों की संख्या में वृद्धि होने लगी। प्रारंभिक खड़ी बोली हिंदी के विकास में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द और भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने अपने ढंग से अपने पत्रों के माध्यम से 'भाषा संस्कारक' की भूमिका निभायी। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने काशी से 'बनारस अख़बार' निकालकर संस्कृत और फारसी दोनों की बोझिलता से हिंदी को मुक्त कर सर्वमान्य भाषा का आदर्श गढ़ा। भाषा प्रयोग के संदर्भ में सजग करते हुए यह सीख दी कि- "जहां तक बन पड़े उन शब्दों को लेना चाहिए जो आमफहम और ख़ास पसंद हों अर्थात् जिसको जियादा आदमी समझ सकते है।" 'निज भाषा उन्नति अहे सब उन्नति को मूल' का उद् घोष करनेवाले भारतेंदु ने 1873 में घोषणा की -हिंदी नई चाल में ढली। अपनी पत्रिका 'कविवचन सुधा' के माध्यम से हिंदी को सुधारा भी।

उन्नीसवीं सदी में ही पत्रकारिता ने नयी चेतना के साथ प्रेरणात्मक राष्ट्रीयता के स्वरों को उच्चरित करने में हिंदी के महत्व को समझ लिया। भारत मित्र' के प्रथम संपादकीय (17 मई 1878) में अपनी भाषा के समाचार पत्रों के माध्यम से उन्नति का स्वप्न देखा- "जिस भाषा में और जिस समाज में समाचार पत्र का चलन नहीं है तब तक उसकी उन्नति की आशा भी दुराशा मात्र है, कारण ये वो चीज है कि जिसे घर में कोठड़ी भीतर बैठ के सारी दुनिया को हथेली पर देख लो अर्थात् भूमण्डल में जहां जो कुछ विशेष बात होती है वो इसी के द्वारा प्रकाश होती है और अपना दु:ख सुख प्रधान राज्याधिकारियों को सुनाने और प्रार्थना करने का ये ही मुख्य उपाय है यदि समाचार पत्र नहीं हो तो राजा को अपने प्रजा का कुछ हाल नहीं मालूम हो सके ऐसी दशा में राज्य शासन भी अच्छी तरह से नहीं हो सकता इसीलिए सुसभ्य प्रजाहितैषी राजा लोग समाचार पत्रों की स्वाधीनता दें के उत्साहित करते है।"

सन् 1879 में कोलकाता से प्रकाशित 'सारसुधानिधि' के संपादक ने मातृभाषा के रुप में हिंदी के 'विशुद्ध और साधु रुप 'धारण करने की जरुरत पर बल दिया। मातृभाषा हिंदी की उन्नति ही देशोन्नति का मूल बताते हुए परिशुद्ध हिंदी के प्रचार से पत्र को जोड़ते हुए लिखा -वर्ष 2 के अंक 12 की संपादकीय टिप्पणी में लिखा- "जब

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के फलस्वरूप जागरण के जो अंकुर फूटे उनने भाषा और बोलियों को भी प्रभावित किया। प्रांतीय भाषाओं के साहित्य ने अंगड़ाई ली। इसके बाद साहित्य सृजन के फलक पर कलम हाथ में लेनेवाला साहित्यकार पत्रकार की भूमिका में नजर आया। इसीलिए साहित्य और पत्रकारिता के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं बन सकी, हिंदी प्रदेशों में हिंदी के पत्रों की संख्या में वृद्धि होने लगी

तक हिन्दुस्तान प्रधान हिंदी भाषा विशुद्ध और साधु रुप धारण नहीं करेगी साधारण उन्नति कदापि नहीं हो सकेगी। अतएव हिन्दुस्तान की उन्नति का मूल जब यह ठहरा कि हिन्दुस्तान की प्रधान भाषा हिंदी परिशुद्ध होकर सर्वत्र एक ही रुप से प्रचार होय, तब अवश्य गवर्नमेंट की सहायता आवश्यक है।"

सन् 1886 में संख्या 6 में 'हिंदी प्रदीप' ने जातीय चेतना के स्वरों को देशव्यापी बनाने के लिए राष्ट्रीय भाषा के रुप में हिंदी की संकल्पना प्रस्तुत की - "यदि देश का कुछ भी अभिमान हमको है तो ऐसा उपाय हमें शीघ्र करना चाहिए कि जिससे हमारी एक जातीय (राष्ट्रीय) भाषा हो जाए। यहाँ पर इतना हमें अवश्य कहना चाहिए था कि यद्यपि जातीय (राष्ट्रीय) भाषा हम लोगों की कोई नहीं, परन्तु जातीय (राष्ट्रीय) अक्षर हैं और जो कोई हमारी जातीय (राष्ट्रीय) भाषा कभी होवेगी, इसके अक्षर भी वे ही होने चाहिए, जिनमें कि इस समय जातीयता (राष्ट्रीयता) है- वे अक्षर देवनागरी हैं और भारतवर्ष की वर्तमान भाषाओं में एक भाषा भी ऐसी है, जो इन उक्त अक्षरों में लिखी जाती है और वह भाषा ईश्वर की कृपा से हिंदी है।.....यदि भारतवर्ष की कभी कोई जातीय (राष्ट्रीय) भाषा होगी तो वह यही हमारी प्यारी सर्वांगीण -आगरी नागरी ही होगी और यथार्थ में इसी को ऐसा बनने का अधिकार है।"

उन्नीसवीं सदी के अंत तक आते-आते तक हिंदी जातीय चेतना का उत्स बनकर निर्माण की डगर पर चल पड़ी थी। यह बात और है कि भाषा के स्वरूप में कई कई स्तर पर सामने आनेवीली भिन्नता ने भाषा को एक स्थिर और परिपक्व ढाँचा नहीं मिल पा रहा था। भाषा के अटपटे विविध रुप रंग सामने आ रहे थे। ऐसी भाषा को लक्ष्य करके अपनी एक संपादकीय टिप्पणी में 'उचितवक्ता' (12 जनवरी, 1895) ने लिखा- "ज्यों ही किसी ने कह दिया कि आपकी भाषा कठिन है, कुछ सरल कीजिए, कि चट पलट कर उर्दू की खिचड़ी पकाने लग गये, फिर ज्यों ही किसी ने कह दिया कि केवल संस्कृत के शब्दों के मिलाने से वा उर्दू के शब्दों के प्रयोग से भाषा पुष्ट न होगी, बस चट बदल गये और दोनों प्रकार के शब्दों को भी मिलाने में उतारु हो गये। सारांश यह है कि ग्राहकों की खोज में भाषा को भी भटकाते रहते हैं।"

द्विवेदी जी के लिए इधर-उधर से शब्द बटोरकर अपनी बात कह देना ही पर्याप्त नहीं था। पहले इसके भी लिखा जाता था इस्के भी इसी तरह उस्के भी लिखा जाता और उसके भी। इनको की जगह इन्हैं भी लिखा जा सकता था और उनको की जगह उन्हैं भी। कोई चाहिए लिखता तो कोई चाहिये। द्विवेदी जी ने भाषा की मूल प्रकृति के अनुरूप उसे एकरूपता प्रदान की। हिंदी में वर्ण विन्यास, व्याकरण, विभक्ति, वाक्य रचना, बेमेल शब्द, अशुद्ध और अनुपयुक्त शब्दों पर विशेष ध्यान दिया

'एक ह्रदय हो भारत जननी' के उद्घोष को फलीभूत करने के लिए करती खड़ी बोली हिंदी को बीसवीं सदी में प्रकाशित पत्रों ने निर्माण और विस्तार की पुख़्ता जमीन सौंपी। साथ ही देवनागरी लिपि के समर्थन का अभियान भी चलाया। कोलकाता की 'एक लिपि विस्तारक परिषद' के मुख पत्र के रुप में सन् 1907 के मई माह में प्रकाशित 'देवनागर' पत्र के प्रथम संपादकीय से बता चलता है कि यह पत्र इस विश्वास को लेकर चल रहा रहा था कि काश्मीरी से कुमारिका अन्तरीप और ब्रह्मदेश से गान्धार पर्यन्त जिस हिंदी या इसके रूपान्तर का व्यवहार होता है इसलिए संस्कृत से जन्मी सभी प्रान्तिक भाषाओं के सम्मिलन से 'एक सार्वजनिक नूतन भाषा' का निर्माण संभव है। हिंदी भाषा के प्रचार और सभी प्रांतीय भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि को मान्य ठहराने के लिए वैचारिक जागरूकता लाने के लिए इसने अपने प्रथम संपादकीय में लिखा- "भारत के भिन्न प्रान्त की भिन्न -भिन्न बोलियों को एक लिपि मंर लिखना ही उस आशानुरुप फल का देनेवाला प्रधान अंकुर है। क्योंकि अनेक प्रांतिक बोलियों के सरल करने की पहली सीढ़ी उन्हें एक सामान्य सर्वसुगम लिपि का वस्त्र पहनाना है जिस रुप में वह अपने चित्र विचित्र लिपियों का परिच्छेद छोड़कर एक प्रान्त से दूसरे प्रांत के निवासियों के सम्मुख आने पर सहज में पढ़ी जा सके और थोड़े ही परिश्रम से समझी जा सके।"

बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध हिंदी में विद्रोही स्वरों के उपजने का समय भी था। इस बात ने जड़ें जमा लीं कि मातृभाषा का सम्मान और आदर किए बिना भारत की दुर्दशा का अन्त संभव ही नहीं है। जैसे जैसे स्वाधीनता आंदोलन गति पकड़ता गया भाषा का प्रश्न स्वाधीनता के प्रश्न से गहरे जुड़ता गया। 'भाषा की समृद्धि स्वतंत्रता का बीज' है इस तथ्य को समझकर हिंदी के प्रति जागरुकता पैदा हुई। राष्ट्रीय चेतना के कारण जीवंत भाषा का संस्कार हुआ। भारतेंदु की 'नई चाल में ढली' हिंदी को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सरस्वती पत्रिका के माध्यम से एक सशक्त ढाँचा मिला। हिंदी को एकरूपता दी। उन्होंने हिंदी के परिष्कार के लिए प्रतिबद्ध होकर 'गद्य और पद्य की भाषा एक होगी' यह घोषणा कर डाली। द्विवेदी जी के लिए इधर-उधर से शब्द बटोरकर अपनी बात कह देना ही पर्याप्त नहीं था। पहले इसके भी लिखा जाता था इस्के भी इसी तरह उस्के भी लिखा जाता और उसके भी। इनको की जगह इन्हैं भी लिखा जा सकता था और उनको की जगह उन्हैं भी। कोई चाहिए लिखता तो कोई चाहिये। द्विवेदी जी ने भाषा की मूल प्रकृति के अनुरूप उसे एकरूपता प्रदान की। हिंदी में वर्ण विन्यास, व्याकरण, विभक्ति, वाक्य रचना, बेमेल शब्द, अशुद्ध और अनुपयुक्त शब्दों पर विशेष ध्यान दिया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी को एक परिष्कृत और परिमार्जित ढाँचा दिया। इस ढाँचे को जब नीरसता और शुष्कता का आरोप लगने लगा तो उसे सरसता और जीवंतता का पुट दिया बालमुकुंद गुप्त की पत्रकारिता ने।

राष्टीय-सांस्कृतिक जागरण के साथ-साथ हिंदी नवजागरण भी जुड़ गया। हिंदी नवजागरण से खड़ी बोली का जो

परिष्कार हुआ उसने राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति को प्रखरता दी। खड़ी बोली में राष्ट्रीय चेतना का शंखनाद करनेवाले साहित्य की सृष्टि हुई। अवधी और ब्रजभाषा की सम्पन्नता से भी उसने बहुत कुछ ग्रहण किया। संस्कृत की पृष्ठभूमि से जुड़ी, अरबी फारसी के शब्दों को आवश्यकता अनुसार ग्रहण किया।प्रांतीय भाषा से शब्दों को अपने व्याकरण और उच्चारण के साँचे में ढाला।

भाषा संस्कार और व्याकरण विचार विशेष रुप से स्वाधीनता आंदोलन के दौर के पत्रकारों के चिंतन मनन की मुद्रा का स्वाभाविक अंग बना रहा। इसलिये हिंदी भाषा और व्याकरण संबंधी सैद्धांतिक आंदोलनों से वे लगातार जुड़े रहे। संपादकाचार्य अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने बींसवी शताब्दी के शुरुआती दौर की पत्रकारिता में भाषा संबंधी विवादों के महत्व को दर्शाते हुए लिखा - "पहले सम्पादक अध्ययनशील होते थे और अपने पाठकों को अधिक से अधिक जानकारी देने का यत्न करते थे। भाषा शुद्ध और मुहावरेदार लिखते थे। 1910 ई. तक भाषाविषयक विवाद भी पत्रों में दिखने लगे। इन विवादों से पाठकों की संख्या भी बढ़ती थी और पाठकों की जानकारी भी।"

भारतीय पत्रकारिता के इतिहास के पन्ने पलटने पर भाषा स्वरूप संबंधी विवाद की भूमि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में तैयार हो गई थी 'भारत मित्र' और बिहार बंधु' के बीच भाषा के स्वरूप को लेकर उनके बीच तीखी टीका टिप्पणी हुई। 'भारत मित्र' जनसामान्य की हिंदी के उस रुप का पक्षपाती था जिसे हिंदुस्तानी अच्छी तरह पढ़ और समझ सके। 'भारतमित्र 'की भाषा को लेकर 'बिहार बंधु' ने एक टिप्पणी में अपनी प्रतिक्रिया इस तरह दी- "लिखावट अभी इतनी उद्देश्य नहीं है, लेकिन उम्मीद है कि थोड़े दिन बाद लिखावट, अच्छी हो जायेगी। "इस टिप्पणी के प्रत्युत्तर में 'भारतमित्र' ने पलटवार करते हुए 'बिहारबंधु' की भाषा को दोषपूर्ण मानते हुए कह डाला कि - "यह तो वही कहावत हुई कि सूप बोले तो बोले, चलनी भी बोले जिसमें ७२ छेद।" आगे अपनी टिप्पणी को बढ़ाते हुए उन्होंने लिखा- "जब तक संस्कृत, जो कि सब भाषाओं की माता स्वरूप है, इसको (संस्कृत को) न जानें तब तक भाषा के लक्षण और माधुर्य, प्रासाद, प्रांजल, सरल और ललित आदि गुणों को समझना असंभव है। और भाषा को इन्हीं सब गुणों के साथ सम्पन्न करना पुरुषार्थ है। हम लोगों की हिंदी भाषा है, यद्यपि ये प्राकृत से उत्पन्न हुई है, तथापि संस्कृत का अखंड भंडार इसकी समृद्धि-वृद्धि करे है। और जो इस्में कहीं-कहीं सूरसैनी, मागधी, फारसी, अरबी, और अंग्रेजी भी सरल भाव से मिल गई है, तो इस्को बिगाड़ती है? हमारी समझ में तो स्वभाव सुंदरी हिंदी को, वरन् अलंकृत करती है। परंतु ऐसा कहने से ये नहीं समझना कि अब हम अरबी, ईरानी, तुर्की और यूनानी आदि से हिंदी को ढॉक दें और मूल को आघात करें। इन सब भाषाओं के शब्द तो वो ही रखने चाहिए जो इनमें मिल गये हैं। जैसा कि मालूम, नक्सा, तारीख़, तीर, तरफा, "टेशन, गेश, और फेशन आदि दूसरी भाषा के हैं। और भाषा को ललित करने के लिए तो हम क्या पहले से बड़े-बड़े प्रसिद्ध कवियों ने भी दूसरी भाषा के शब्द कहीं कहीं रखें हैं संपादक जी। ये झुँझलाने की बात नहीं है, आप यदि चिंता करके देखिए तो अवश्य समझेंगे कि 'बिहारबंधु' मूल हिंदी को बिगाड़ता है अथवा 'भारतमित्र'।"[4]

हिंदी का हर संपादक भाषा को लेकर सजग, सचेत और चौकन्ना था। इसका ऐतिहासिक उदाहरण आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और बाबू बालमुकुंद गुप्त के बीच 'अनस्थिरता' शब्द को लेकर लेकर चला विवाद है। बालमुकुंद गुप्त ने 'वेंकटेश्वर समाचार' के संपादक लज्जाराम मेहता द्वारा प्रयुक्त 'शेष' शब्द को लेकर भी विवाद चलाया था। भाषा और व्याकरण संबंधी विवादों ने भाषा संस्कार के प्रति अतिरिक्त सजगता और चिंता पैदा की। पत्र-पत्रिकाओं में भाषा की शुद्धता और अशुद्धता पर टिप्पणियाँ पढ़ने को मिलती थीं। पत्रकारिता की डगर पर 'कल्पना' जैसी पत्रिका ने ने भी इस विवाद से प्रेरणा लेकर भाषा और व्याकरण की अशुद्धियों के सन्दर्भ में अपनी जागरुक और सचेत दृष्टि का परिचय दिया।

आगे चलकर संपादकों ने परिवर्तन शील भाषा की वकालत की। माखनलाल चतुर्वेदी ने अपने लेख 'पत्रकार: मानस और दायित्व' में बदलती हुई हिंदी को अपनाते हुए बोध गम्य भाषा पर बल दिया -"समाचार पत्रों की भाषा जनता की भाषा होनी चाहिए उसमें कठिन शब्दों का प्रयोग उसी समय होना चाहिए जब कि वैज्ञानिक शब्द को अन्य भाषा से हम अपनी भाषा में प्रकट कर रहे हों। किन्तु अन्य बातों में समाचार-पत्रों की भाषा में न संस्कृत का बोझ आना चाहिये, न फारसी का दबाव। वह साधारण से साधारण जन की समझ में आने वाली भाषा होनी चाहिये।"

7 अगस्त 1946 को 'हिमालय' में शिवपूजन सहाय ने भाषा के क्षेत्र में भ्रष्टता फैलानेवाले पत्रकारों को लक्ष्य करके कड़ी टिप्पणी लिखी थी। जिसमें कहा गया कि "प्रचार के नाम पर संस्कार का संहार असह्य अनाचार है। जान पड़ता है कि, यह भाषा संस्कार के बदले भाषा -संहार का युग है। पत्रकारों का न इधर ध्यान है, न इसमें अनुराग ही।" शिवपूजन सहाय भाषा संस्कार के दायित्व को संपादक के दायित्व से जोड़कर देखते थे। इसीलिए उन्होंने 4 मई 1946 के हिमालय में संपादकों को भाषा के साथ व्यभिचार का दोषी मानते हुए यह टिप्पणी भी की -"दोषी वास्तव में हम संपादक ही हैं जो अपने पत्रों या पत्रिकाओं के माध्यम से भाषा के पवित्र क्षेत्र में भ्रष्टता फैलाते हैं।"

जब तक संस्कृत, जो कि सब भाषाओं की माता स्वरूप है, इसको (संस्कृत को) न जानें तब तक भाषा के लक्षण और माधुर्य, प्रासाद, प्रांजल, सरल और ललित आदि गुणों को समझना असंभव है। और भाषा को इन्हीं सब गुणों के साथ सम्पन्न करना पुरुषार्थ है। हम लोगों की हिंदी भाषा है, यद्यपि ये प्राकृत से उत्पन्न हुई है, तथापि संस्कृत का अखंड भंडार इसकी समृद्धि-वृद्धि करे है

स्वाधीनता आंदोलन के दौरान हिंदी पत्रकारिता ने भाषा की शक्ति और सामर्थ्य को प्रतिष्ठापित करते हुए कालरिज की इस बात को सिद्ध कर दिया कि- "भाषा मानव -मस्तिष्क की वह शस्त्रशाला है जिसमें अतीत की सफलताओं के जयस्मारक और भावी सफलताओं के लिए अस्त्र-शस्त्र, एक सिक्के के दो पहलुओं की तरह साथ-साथ रहते हैं।"

आजादी के बाद मिशन से व्यवसाय बन चुकी पत्रकारिता में साहित्यकार ही संपादक बनाये जाते रहे। पत्रकारिता के औधोगिक घरानों से मुख्यधारा के समाचार -पत्र और पत्रिकाओं के साथ-साथ साहित्यिक पत्रिकाएं भी निकलती रहीं। धर्मवीर भारती, अज्ञेय, जैसे संपादकों ने भी हिंदी हित की अवहेलना नहीं की। अज्ञेय ने 'दिनमान' के माध्यम से पत्रकारिता की भाषा में चिंतन की शक्ति भरी। भाषा को सक्षम बनाया। वे भाषा के प्रति उदासीनता को संस्कारहीनता का पर्याय समझते थे। उनका मानना था कि 'भाषा का संस्कार सही वही होता है, जो इतना गहरा जावे कि लिखते-बोलते समय ही नहीं, स्वप्न देखते समय भी यह प्रश्न न उठे कि भाषा सही है या नहीं।' साहित्यिक पत्रकारिता की डगर पर 'कल्पना' जैसी पत्रिका ने भी भाषा और व्याकरण की अशुद्धियों के सन्दर्भ में अपनी जागरुक और सचेत दृष्टि का परिचय दिया।

इस तरह स्वातंत्र्योत्तर हिंदी पत्रकारिता में जब तक साहित्य की दुनिया से जुड़े व्यक्तियों ने संपादक का दायित्व सँभाला तब तक भाषा संस्कार की चिंता बनी रही। जब तक पत्रकारिता पूर्व मानदण्डों पर चलती रही तब तक उसने भाषा के संस्कार की रक्षा की, लेकिन धीरे-धीरे भाषा को संस्कारित करने का दायित्व घटता चला गया। धीरे-धीरे हिंदी गद्य की शक्ति क्षीण होने लगी। आजादी के लगभग तीन दशक के बाद राजेन्द्र माथुर को कहना पड़ा कि -"हिंदी पत्रकारिता का अधिकांश गद्य प्राणहीन और और मुरदा है।"

पत्रकारिता में एक तरफ व्यावसायिकता की जड़ें ज़्यादा गहरी होती चली गयीं। प्रसार संख्या बढ़ाने का दबाव बना। दूसरी तरफ नव साक्षरों की संख्या बढ़ने से अख़बार के नये पाठक तैयार हो रहे थे। इसलिए हिंदी को सरल करने का जवाब बनाया गया। ऐसी आम भाषा का समर्थन किया जाने लगा जिसे कम पढ़ा लिखा व्यक्ति भी समझ सके। यह दबाव निरन्तर गहराता चला गया।

17 नवम्बर 1983 को जनसत्ता में प्रभाष जोशी ने अपने पहले संपादकीय में लिखा- -"देश में सबसे ज्यादा अख़बार हिंदी के निकलते हैं। एक दैनिक और बढ़ाने की क्या जरूरत थी। पर हिंदी में पढ़नेवाले भी ज्यादा है, लगभग दस करोड़ और पत्र-पत्रिकाएँ बिकती हैं सिर्फ एक करोड़ चालीस लाख। यानी अंग्रेजी से सिर्फ तीस लाख ज्यादा जबकि अंग्रेजी बोलने- समझने वाले दो प्रतिशत हैं और हिंदी को आधा हिन्दुस्तान बोलता और समझता है। इसका कारण यह नहीं है कि हिंदी इलाका गरीब है और उसमें पढ़ने की इच्छा और उत्सुकता नहीं है। हिंदी इलाक़े की अपनी कुछ समस्यायें है और उसके पाठकों को वह कुछ नहीं मिलता जो उसे चाहिए।

हिंदी एक से ज़्यादा राज्यों की भाषा है इसलिए उसका केन्द्र किसी एक राज्य में नहीं जैसा कि बंगला, मराठी, गुजराती, मलयालम आदि का है। हिंदी राज्यों की अपने आप में और पूरे इलाक़े की देश में ऐसी कोई अलग पहचान नहीं है जैसी कि कि दूसरे भाषाई राज्यों की है। फिर हिंदी भी सब राज्यों में एक जैसी नहीं है बोलने और लिखने की भाषा का फर्क़ तो ख़ैर है ही। इस हालत में हिंदी राज्यों से निकलनेवाले अख़बार किसी एक जमीन में जड़ें नहीं उतार पाते।

यातायात और संचार के नए तकनीक से कुछ खाइयां पाटी जा सकती हैं। लेकिन बोलचाल की ऐसी भाषा जो नव-साक्षर या कम पढ़े लिखे आदमी से लेकर प्रखर विद्वान तक के उपयोग और अनुभव से जो अमीर हो, बनते बनते बनती है और वही लाखों - करोड़ों लोगों को जोड़ती है। ऐसी हिंदी पनप भी रही है जरूरत है उसे बोलने से लिखने और छपने तक लाने की। जनसत्ता ऐसी हिंदी को पनपाने और प्रतिष्ठित करने के लिए निकल रहा है।"[5]

धीरे-धीरे पत्रकारिता में भाषा के सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण बोलचाल की भाषा को अपनाने पर बल दिया गया। व्याकरण का अनुशासन ढीला हुआ। हिंदी पत्रकारिता अनुवाद कि बैसाखी के सहारे चलने लगी। हिंदी समाचार पत्रिकाओं के नाम भी अंग्रेजी में आने लगे। भूमण्डलीकरण के बाद प्रसार संख्या बढाने के दबाव में नये ग्राहकों की खोज में 'मार्केटिंग एडिटर' के आदेश से पत्रकारों को हिंदी में अंग्रेजी के सायास सम्मिश्रण का नुस्ख़ा थमाया गया। भूमंडलीकरण के कारण पत्रकारिता के मानदंड पूरी तरह बदल गये। बाजारचाल से अंग्रेजी के वर्चस्व को ढोती हिंदी का प्रचलन बढ़ गया।

स्वाधीनता से पूर्व पत्रकारों ने स्व भाषा के प्रश्न को देश के स्वभाव और स्वाभिमान से जोड़कर देखा। वे शब्द साधक थे उन्होंने शब्दों की सघन यात्रा की और 'एक एक शब्द का निराला इतिहास' बनाया। उनके द्वारा निर्मित हिंदी गद्य ने 'मुरदे में भी जान' फूँकने की शक्ति हासिल कर ली थी। लेकिन आज पत्रकारिता की भाषा का तेवर बाजार और प्रचार तय कर रहा है। इसलिए अब मीडिया संस्थान के लोग यह कहते सुने जाते हैं कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबूराव विष्णु पराड़कर, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, शिवपूजन सहाय अब हमारे आदर्श नहीं हो सकते। गर्व के साथ यह भी कहा जाता है कि 'हम बिजनेस हाउस चलाते हैं न कि हिंदी सेवा संस्थान।' यह भी सुनने को मिलता ह कि 'हम हिंदी में समाचार देते हैं न कि समाचारों में हिंदी।'

आज पत्रकारिता के फलक पर पुनः इस तथ्य को प्रमाणित करने की जरूरत है कि भाषा केवल संप्रेषण के प्रयोजन से ही सम्बद्ध नहीं है वह सांस्कृतिक अस्मिता के उन्मेष से भी जुड़ी है।

संदर्भ :

1. *राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष और हिंदी पत्रकारिता*, श्रीनिवास शर्मा, पृ-323)
2. *सभापतियों के भाषण*, सं- लक्ष्मीशंकर व्यास, पृ-70)।
3. *हिंदी पत्रकारिता का इतिहास*- जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी पृ-23)
4. *हिंदी पत्रकारिता*, डॉ कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ-136)
5. *प्रथम संपादकीय*, विजयदत्त श्रीधर, पृ- 109-110)

प्रो. अरुण कुमार भगत

आपात्काल की पत्रकारिता

“

आपको केवल झुकने के लिए कहा गया था, पर आप तो रेंगने लगे।

- लालकृष्ण आडवाणी , आपातकाल के दौरान भारतीय मीडिया से

”

दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र भारत का सबसे काला अध्याय है आपात्काल। कुल 21 माह तक चले इस दौर ने भारत में राजनीति और मीडिया का चरित्र बदलकर रख दिया। एक दृष्टिपात

भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में आपात्काल लगाकर प्रेस पर अंकुश डालने की चेष्टा सन् 1975 में की गई। यद्यपि सन् 1962 में चीनी आक्रमण और 1971 में पाकिस्तान आक्रमण के दौरान भी आपात्काल की घोषणा की गई थी, किंतु तब अपनी तानाशाही के लिए सेंसरशिप की घोषणा करना सत्ताधारियों की मानसिकता नहीं थी। सत्ता से चिपके रहने और तानाशाही चलाते रहने के लिए भारतीय लोकतंत्र में आपात्काल की घोषणा 1975 में ही की गई, जिसमें मीडिया पर प्री-सेंसरशिप लगाया गया। विधान द्वारा प्रदत्त अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने की यह घटना पत्रकारिता के इतिहास में कई दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। समाचार-पत्रों पर जब सेंसर लगा तो जनसंचार के अन्य विकल्प सामने आए। गुप्त रूप से निकलने वाली बुलेटिन ने कुछ हद तक इसकी क्षतिपूर्ति की। सत्ता की तानाशाही के समाचार ऐसी ही पत्र-पत्रिकाओं एवं मौखिक रूप से एक कान से दूसरे कान तक पहुँचते रहे। मौखिक तौर पर खबरें पहुँचने के कारण कई बार वह विकृत भी होती रहीं।

स्वतंत्र भारत में सन् 1975 में आपात्काल की घोषणा के साथ ही पत्र-पत्रिकाओं पर सेंसरशिप लगा दी गई, किंतु तमाम प्रतिबंधों के बावजूद अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर पूरी तरह ग्रहण नहीं लग सका। पत्र-पत्रिकाओं पर सेंसरशिप लगा तो भूमिगत बुलेटिनों ने कुछ हद तक इसकी क्षतिपूर्ति की और युग-यथार्थ से लोगों को अवगत कराया। कुछ संपादकों ने संपादकीय का स्थान खाली छोड़कर तो कुछ ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्ष में महापुरुषों की उक्तियों को छापकर सरकार का विरोध किया। प्रेस की स्वतंत्रता को प्रभावित करने के लिए 8 दिसंबर, 1975 को राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 123 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए तीन अध्यादेश जारी किए, जिनमें 'आक्षेपणीय प्रकाशन निवारण अध्यादेश', 'संसदीय कार्यवाही (प्रकाशन संरक्षण) अधिनियम' निरस्त अध्यादेश तथा 'प्रेस परिषद् अधिनियम' अध्यादेश शामिल हैं। इन अध्यादेशों के माध्यम से प्रेस की स्वतंत्रता को प्रभावित करने की चेष्टा की गई।

भारत में रेडियो और दूरदर्शन तो पहले से ही सरकारी नियंत्रण में थे। प्रेस-सेंसरशिप के साथ इन अध्यादेशों के कारण देशभर की पत्र-पत्रिकाओं पर अंकुश लगाने के अन्य माध्यम भी उपलब्ध हो गए। सेंसरशिप और अन्य प्रतिबंधों के कारण सरकार और समाज के बीच सूचनाओं का प्रसारण इकतरफा हो रहा था। सरकार की घोषणाओं और तानाशाही रवैये की खबर तो किसी-न-किसी रूप में जनता तक पहुँच जाती थी, किंतु जनता द्वारा आपात्काल के विरोध और सरकारी नीतियों की आलोचना की खबर सरकार तक नहीं पहुँच पाती थी। सरकारी प्रेस-विज्ञप्तियों के सहारे ही अखबारों में अधिकतर समाचार छप रहे थे। एक पक्ष की बार-बार प्रस्तुति से पत्र-पत्रिकाओं की विश्वसनीयता पर भी प्रश्न-चिह्न खड़ा हो गया था। इसलिए

इकतरफा संचार के कारण अपातकाल के 19 महीनों तक सरकार गलतफहमी में रही, जिसका खामियाजा उसे भुगतना पड़ा।

सेंसरशिप के कड़े प्रतिबंधों और भय के वातावरण के कारण अनेक पत्र-पत्रिकाओं को अपने प्रकाशन बंद करने पड़े। इसमें 'सेमिनार' और 'ओपीनियन' के नाम उल्लेखनीय हैं। आपात्काल के दौरान 3801 समाचार-पत्रों के डिक्लेरेशन जब्त कर लिए गए। 327 पत्रकारों को मीसा में बंद कर दिया गया। 290 अखबारों के विज्ञापन बंद कर दिए गए। विदेशी पत्रकारों को भी पीड़ित-प्रताड़ित किया गया। ब्रिटेन की 'टाइम' और 'गार्जियन' के समाचार-प्रतिनिधियों को भारत से निकाल दिया गया। राइटर सहित अन्य एजेंसियों के टेलेक्स और टेलीफोन काट दिए गए। जब भी किसी विदेशी पत्रकार की स्टोरी से भारतीय अधिकारी अप्रसन्न होते तो उनके साथ भी यही हश्र होता था। आपात्काल के दौरान 51 पत्रकारों के अधिस्वीकरण रद्द कर दिए गए। इनमें 43 संवाददाता, 2 कार्टूनिस्ट तथा 6 कैमरामैन थे। 7 विदेशी संवाददाताओं को भी देश से बाहर जाने को कहा गया।

केंद्र सरकार ने आपात्काल के दौरान 'अखिल भारतीय समाचार-पत्र संपादक-संघ' को एक समिति बनाने के लिए कहा, जो नियमों का उल्लंघन करनेवाले समाचार-पत्रों के बारे में सरकार को सलाह दे सके। केंद्र ने अपने अधिकारियों की भी एक समिति बनाई थी, जो समाचार-पत्रों में छपनेवाले समाचारों की जाँच करती थी। इन दो समितियों के अतिरिक्त प्रेस सूचना विभाग की प्रेस सलाहकार इकाई भी थी, जो पत्रों की जाँच करती थी। इतना सबके बावजूद एक चौथी इकाई के रूप में गुप्तचर विभाग का एक अलग प्रकोष्ठ था, जो प्रकाशन और मुद्रण की जाँच किया करता था।

चीफ सेंसर अधिकारी डिफेंस एंड इंटरनल सेक्यूरिटी ऑफ इंडिया रूल्स 48 की सीमा से बाहर भी दिशा-निर्देश जारी करते थे। उन दिनों प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'भूमिपुत्र' के मामले में गुजरात उच्च न्यायालय और 'फ्रीडम फर्स्ट' के मामले में मुंबई उच्च न्यायालय ने सेंसर अधिकारी द्वारा जारी दिशा-निर्देश को अवैध घोषित कर दिया। 'इंडियन एक्सप्रेस' के मामले में भी प्री-सेंसरशिप आदेशों को सरकार ने वापस ले लिया, क्योंकि 'इंडियन एक्सप्रेस' ने न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था। 'स्टेट्समैन' के मामले में भी कोलकाता उच्च न्यायालय में याचिका दायर करने के बाद सरकार को 'कारण बताओ नोटिस' वापस लेना पड़ा।

'मदरलैंड' के संपादक के. आर. मलकानी को 26 जून की रात को गिरफ्तार कर लिया गया। वरिष्ठ पत्रकार श्री कुलदीप नैयर और 'ट्रिब्यून' के वरिष्ठ संवाददाता श्री श्याम खोसला, श्री देवेंद्र स्वरूप को भी जेल की सींखचों के पीछे बंद कर दिया गया। आपात्काल के दौरान उत्पीड़ित होने वाले पत्रकारों में हिंदुस्तान टाइम्स के श्री वी. जी. वर्गीज, नवभारत टाइम्स के डॉ. नंदकिशोर त्रिखा, श्री राधेश्याम शर्मा, श्री जीतेंद्र गुप्त, श्री वचनेश त्रिपाठी, श्री असीम मित्रा, श्री गोविंदलाल बोरा, श्री मगनदेव नारायण सिंह, श्री सुरेंद्र द्विवेदी, श्री रमेश शर्मा, श्री गुलाब बत्रा, श्री रामभुवन सिंह कुशवाहा, श्री वी. आर. जेतली, श्री रमेश नैयर, श्री बबन प्रसाद मिश्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भारत के पत्रकारों के साथ ही ऐसा नहीं हो रहा था, बल्कि विदेशी पत्रकारों पर भी जुल्म ढाए गए। 'लंदन टाइम्स' के पीटर हैजलहर्ट, 'न्यूज वीक' के लौरिन जेनकिस, 'डेली टेलीग्राफ' के पीटर गिल इत्यादि को देश छोड़ने का आदेश दिया गया। वाशिंगटन पोस्ट के संवाददाता लिवीस सिमंस को भी भारत से निष्कासित कर दिया गया।

प्रसिद्ध पत्रकार श्री कुलदीप नैयर के मामले में भी सरकार को मुँह की खानी पड़ी। श्री नैयर की पत्नी ने 5 अगस्त, 1975 को दिल्ली उच्च न्यायालय में 'बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका' प्रस्तुत की। सुनवाई के दौरान ही सरकारी वकील को इस बात का आभास हो गया कि निर्णय सरकार के विरुद्ध होगा, इसलिए उन्होंने न्यायालय को सूचित कर दिया कि श्री नैयर के विरुद्ध 'मीसा' का आदेश वापस लेकर उन्हें मुक्त कर दिया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आपात्काल के दौरान अनेक मामलों में सरकार की मनमानी और तानाशाही रवैये की न्यायालय ने आलोचना की और याचिकाकर्ता को राहत प्रदान की।

आपात्काल के दौरान पत्रकारों का बहुत उत्पीड़न हुआ। इसमें 'मदरलैंड' के संपादक श्री के. आर. मलकानी और अंग्रेजी के दैनिक 'हिंदुस्तान टाइम्स' के संपादक श्री बी. जी. वर्गीज के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री मलकानी को जेल में प्रताड़ित किया गया। इस संबंध में श्री मलकानी की पत्नी ने बी.बी.सी. संवाददाता को बताना भी चाहा, किंतु पुलिस-प्रशासन की चौकसी के बीच वह सफल नहीं हो सकीं। इधर सरकार ने 'हिंदुस्तान टाइम्स' के प्रबंधकों पर दबाव

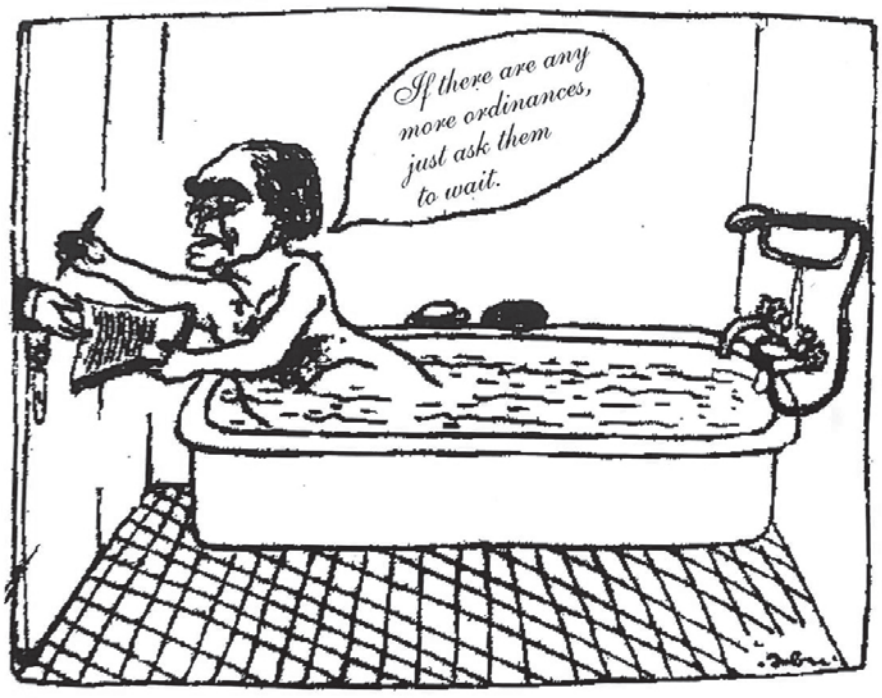

डालकर श्री वर्गीज को हटाने का षड्यंत्र रचा। अनेक प्रताड़नाओं के बीच पत्रकारों ने साहस दिखाया और आपात्काल के खिलाफ संघर्ष किया। 3 जुलाई, 1975 को दिल्ली के प्रेस क्लब में लगभग 100 पत्रकारों ने सेंसर की निंदा की और इसे हटाए जाने की माँग की। कहने का तात्पर्य यह कि दमन-चक्र के बीच भी पत्रकारों ने साहस का परिचय दिया।

सरकार के मौखिक आदेश पर डीएवीपी द्वारा विज्ञापन देने के मामले में पक्षपात किया जाता था। 'शाह कमीशन' की रिपोर्ट के अध्याय छह में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। सूचना और प्रसारण मंत्री वी.सी. शुक्ल के निर्देश पर समन्वय समिति की बैठक में मुख्य सूचना अधिकारी को तीन प्रकार की सूचियाँ तैयार करने को कहा गया था। इस सूची में समाचार पत्रों के मैत्रीपूर्ण, उदासीन तथा शत्रुतापूर्ण वर्ग बनाने को कहा गया था। यह सूची आपात्काल में समाचारपत्रों के विचार और राजनीतिक दल से संबंध के आधार पर बनाई गई थी। सरकारी विज्ञापन की दृष्टि से जहाँ एक ओर दंडित अखबारों की लंबी सूची है, वहीं ऐसे अखबारों की भी कमी नहीं है, जिन्हें सभी नियम-कानून तोड़कर लाभ पहुँचाया गया। श्री संजय गाँधी के संरक्षण में प्रकाशित पत्रिका 'सूर्या' की विज्ञापन-दर तो 7-15 रुपए से बढ़ाकर 41-75 रुपए प्रति कॉलम सेंटीमीटर कर दी गई। यानी लगभग छह सौ प्रतिशत की अभूतपूर्व वृद्धि।

प्रेस की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने के लिए समाचार समितियों का विलय किया गया। आपात्काल के पूर्व देश में चार समाचार समितियाँ थीं - पीटीआई, यूएनआई, हिंदुस्तान समाचार और समाचार भारती। इन चार समितियों के रहते हुए इन पर नियंत्रण कठिन लग रहा था। इसलिए यह विचार सामने लाया गया कि इन चारों समाचार-समितियों को मिलाकर 'समाचार' नामक समाचार एजेंसी बना दी जाए, जो पूरी तरह सरकारी नियंत्रण में रहे। केंद्रीय मंत्रिमंडल में इस प्रस्ताव के अनुमोदन के बाद इसके लिए विधेयक लाने की जगह 'अन्य उपायों से' इस लक्ष्य को प्राप्त करने को कहा गया। समाचार-एजेंसियाँ विलय को राजी नहीं थीं। यूएनआई के महाप्रबंधक और संपादक मीरचंदानी ने इस विलय का हमेशा विरोध किया। नतीजतन उन्हें सेवानिवृत्त कर दिया गया। अंत में दबाव के कारण चारों एजेंसियों को विलय के लिए बाध्य होना पड़ा। शाह कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार, संपादकीय नियंत्रण के विषय में अनेक संपादकीय कर्मचारियों, श्री पीएस कस्बेकर, श्री सीपी मनिकलता, श्री सीके अरोड़ा, श्री डीवी देसाई और अन्य लोगों ने पुष्टि की है कि सरकार तथा सरकारी प्राधिकारों से निर्देश मिलते रहे कि सरकार तथा कांग्रेस पार्टी के क्रियाकलापों के विषय में समाचार दिए जाएँ, लेकिन विरोधी पार्टी के क्रियाकलापों के विषय में कम समाचार दिया जाए।

राजनेता चंद्रशेखर ने अपनी जेल डायरी में लिखा है कि आकाशवाणी की भूमिका आपात्काल के दौरान सरकारी भोंपू की तरह हो गई थी। 'कोर्ट से वोट' तक के लेखक रजनीकांत मुद्गल ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि दिल्ली दूरदर्शन ने प्रधानमंत्री के समर्थन में आयोजित की गई रैली के प्रचार में 90 घंटे खर्च किए, जिसमें 29,000 फीट की फिल्म प्रदर्शित की गई, जबकि विरोधी दलों की रैली को मात्र 35 सेकंड दिखाया गया

आपात्काल के दौरान आकाशवाणी और दूरदर्शन पर से जनता का विश्वास उठ चुका था। आकाशवाणी और दूरदर्शन से एकपक्षीय समाचार प्रसारित होने के कारण गाँव की चौपालों में भी बीबीसी और वॉयस ऑफ अमेरिका सुना जाने लगा था। राजनेता चंद्रशेखर ने अपनी जेल डायरी में लिखा है कि आकाशवाणी की भूमिका आपात्काल के दौरान सरकारी भोंपू की तरह हो गई थी। 'कोर्ट से वोट' तक के लेखक रजनीकांत मुद्गल ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि दिल्ली दूरदर्शन ने प्रधानमंत्री के समर्थन में आयोजित की गई रैली के प्रचार में 90 घंटे खर्च किए, जिसमें 29,000 फीट की फिल्म प्रदर्शित की गई, जबकि विरोधी दलों की रैली को मात्र 35 सेकंड दिखाया गया। 'इमरजेंसी के 19 महीने' के लेखक गोविंद सिंह के अनुसार, आपात्काल के दौरान रेडियो प्रसारण में श्री संजय गाँधी के वक्तव्य की, उनके भाषण के अंश की या उनके बारे में 226 बार चर्चा की गई। दिसंबर 1975 से अर्द्ध-मार्च 1977 तक लगभग 125 दिनों तक दूरदर्शन की कोई-न-कोई छायांकन और शब्दांकन टीम श्री संजय गाँधी की सेवा में रही, जबकि वे न तो किसी सरकारी पद पर थे और न ही जनता के किसी प्रकार से प्रतिनिधि थे।

आपात्काल की घोषणा के बाद प्रधानमंत्री के द्वारा ली गई पहली ही बैठक में प्रस्ताव आया कि प्रेस परिषद् को खत्म किया जाए। 18 दिसंबर, 1975 को अध्यादेश द्वारा प्रेस-परिषद् समाप्त कर दी गई। इसके साथ ही विधि द्वारा गठित अर्धन्यायिक संस्था का विघटन हो गया। यद्यपि प्रेस-परिषद् को दंड देने का अधिकार नहीं था तथा उसके संबंध में आम लोगों की धारणा यह थी कि वह बिना नख, दाँत का शेर है, किंतु इस संस्था के विघटन से सरकार का तानाशाही रवैया सामने आता है। आपात्काल के दौरान भूमिगत पत्रकारिता ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया था। भूमिगत संचार-व्यवस्था के द्वारा एक समानांतर प्रचार-तंत्र खड़ा किया गया था। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो जनजीवन को एकपक्षीय समाचार ही मिल पाता और सच्ची खबरों से वे वंचित रह जाते। आपात्काल में संचार-अवरोध का खामियाजा जनता पर नहीं पड़ सका, किंतु सरकार आपात्काल-विरोधियों की मनोदशा को नहीं समझ पाई। यही कारण है कि वह (सरकार) सही विश्लेषण नहीं कर पाई और चुनाव कराने की घोषणा कर दी। संचार-अवरोध का कितना बड़ा खामियाजा सत्ता को उठाना पड़ सकता है, यह सन् 77 के चुनाव के परिणाम से सामने आया। आपात्काल का आंदोलन भूमिगत होकर भी हिंसक नहीं हुआ और सत्य-अहिंसा की डोर थामे रहा। आंदोलनकारियों के नैतिक मनोबल को बनाए रखने में इसने अहम भूमिका का निर्वहन किया। घोर निराशा के

क्षणों में भी आंदोलनकारियों के मन में इस बात का संतोष रहता था कि अंततः सत्य की ही विजय होगी और अंततः उन्हें तानाशाही से मुक्ति मिलेगी।

तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्री वी.सी. शुक्ल ने 28 जून, 1975 को संपादकों की एक बैठक बुलाकर उन लोगों को चेतावनी दी कि वे संपादकीय का स्थान रिक्त न छोड़ें और उसमें कोई ऐसा उद्धरण न दें, जो आपात्काल विरोधी हो। आपात्काल के दौरान सरकार ने पत्रकारों और संपादकों को डराने-धमकाने के लिए एक से बढ़कर एक कदम उठाए। अखबारी कागजों का कोटा निर्धारित करने, मशीन आदि मँगाने हेतु अनुमति प्राप्त करने और विज्ञापन सहित कई मुद्दों पर पत्र-पत्रिकाओं को परेशान किया गया। मीडिया को अपने नियंत्रण में लेना यह प्रमाणित करता है कि सत्ता को इस बात का भय था कि जनता के मन में उसकी खराब छवि न बन जाए।

आपात्काल में सेंसरशिप के खौफ के कारण अनेक पत्र-पत्रिकाओं का असामयिक निधन हो गया। 'इंडियन एक्सप्रेस' और 'स्टेटसमैन' को परेशान करने के अनेक मामले सामने आए। सभी समाचार-पत्रों के कार्यालय में सेंसर अधिकारी बिठा दिए गए। दिल्ली विद्युत प्रदाय उपक्रम के महाप्रबंधक को कहकर महानगर के सभी समाचार पत्रों की बिजली काट दी गई। जो समाचार पत्र छप गए थे, उन्हें वितरित नहीं होने दिया गया। जेपी की गिरफ्तारी की खबर बीबीसी के माध्यम से मिली। जेपी आंदोलन में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की व्यापक भागीदारी थी। इसलिए संघ से जुड़ी और उसकी विचारधारा का अनुसरण और अनुपालन करने वाली पत्र-पत्रिकाओं पर सबसे ज्यादा असर हुआ। पांचजन्य, आर्गनाइजर, मदरलैंड (दैनिक), तरुण भारत, विवेक विक्रम, राष्ट्रधर्म, युगधर्म इत्यादि को सील कर दिया गया था। इसके विपरीत संघ परिवार की ओर से बिहार में लोकवाणी, छात्रशक्ति, भारती इत्यादि पत्र भूमिगत तौर पर छप रहे थे तो हरियाणा में 'दर्पण' ने धूम मचा रखी थी।

सत्ता विरोधी खबर लिखने के कारण राइटर, यूपीआई, एबीबी, ऑस्ट्रेलियन ब्राडकास्टिंग कमीशन, न्यूयार्क टाइम्स और एसोशिएटेड प्रेस के टेलेक्स और टेलीफोन काट दिए गए। सेंसरशिप के कड़े प्रतिबंध के समक्ष संपादकों की एक नहीं चल पाती थी। ऐसे में पत्र-पत्रिकाओं को बंद करने का विकल्प चुना जाने लगा। स्थिति ऐसी थी कि जनता तक कानो-कान पहुँचने वाली सूचनाओं के अतिरिक्त भूमिगत पत्र-पत्रिकाएँ ही सूचना और संप्रेषण का एकमात्र साधन बच गई थीं। तब जेल में बंद प्रसिद्ध राजनेता लालकृष्ण आडवाणी ने अपनी पुस्तक 'नजरबंद लोकतंत्र' में उन दिनों प्रकाशित होने वाली पत्रिका में 'सेमिनार' और 'ओपिनियन' के बंद होने का उल्लेख किया है। आपात्काल में भारत की खबरें विदेशों में कम छप पाती थीं। विपक्ष के समाचार देश ही नहीं विदेशों में भी छपने प्रायः बंद हो गए थे।

सेंसरशिप के कारण सरकार के दमनचक्र की सही तस्वीर विश्व के समक्ष उपस्थित नहीं हो पा रही थी। कमोबेश यह स्थिति आपात्काल के ठीक पहले से ही प्रारंभ हो गई थी। तब लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने विदेशी पत्रकारों का आह्वान किया था। 'आपात्कालीन संघर्ष में बिहार' के लेखक डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है कि लोकनायक ने 7 जून, 1975 को विदेशी पत्रकारों से अपील की कि वे भारत आकर इस देश की सही स्थिति का निरीक्षण करें और विश्व जनमत के समक्ष दमनचक्र से पिसते जनतंत्र के रूप को रखें। विश्वस्तर पर फ्रीडम हाउस द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार, भारत के प्रेस का स्वतंत्रता सूचकांक में जो स्थान 1970 के दशक के आरंभ में तीसरा था, वह 1975-77 में गिरकर 34वाँ हो गया। कुल मिलाकर कहने का तात्पर्य यह है कि भारत में लागू आपात्काल लगाने से प्रेस की स्वतंत्रता खंडित हुई थी। विश्व जनमत पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। सर्वत्र भारत की आलोचना होने लगी। भारत में प्रेस की स्वतंत्रता का सूचकांक नीचे गिरने का अर्थ यह हुआ कि तानाशाही बढ़ गई है और लोकतांत्रिक समाज की स्थिति बदतर हो गई।

राजनेता श्री लालकृष्ण आडवाणी ने अपनी जेल डायरी (नजरबंद लोकतंत्र) में बीबीसी और वॉयस ऑफ अमेरिका के समाचारों की महत्ता का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है आज बीबीसी तथा वॉयस ऑफ अमेरिका ने एक महत्त्वपूर्ण समाचार प्रसारित किया। वह यह कि बिजली कनेक्शन काट देने के कारण 1 और 2 अक्टूबर को दिल्ली इंडियन एक्सप्रेस का दिल्ली संस्करण प्रकाशित नहीं हो सका। इस संबंध में 'इंडियन एक्सप्रेस' ने दिल्ली उच्च न्यायालय में रिट दायर की। उच्च न्यायालय ने पुनः बिजली कनेक्शन देने का

विदा*

पहले संपादकीय में हमने लिखा था कि अपने पाठकों को आडंबरी नेताओं, धोखाधड़ों और स्वयं अपने पर हँसाना ही हमारा उद्देश्य है। लेकिन वे लोग कैसे हैं जिनमें हास्य बोध अतिविकसित है? ये वे लोग हैं, जो एक सभ्यतापूर्ण आचारसंहिता का पालन करते हैं, और ये वहाँ पाए जाते हैं जहाँ सहिष्णुता है, करुणा है। जहाँ पर तानाशाही होती है वहाँ हास्य हो ही नहीं सकता, क्योंकि प्रजा तानाशाह पर हँस सकती है, और वह चलेगा नहीं। हिटलर के पूरे शासन के दौरान न तो कोई अच्छा प्रहसन था, न कार्टून, न कोई पैरोडी थी और न ही कोई हास्यपूर्ण नकल।

इस दृष्टि से दुनिया, और उसमें भी दुःखद रूप से भारत, की स्थिति कहीं अधिक विषादमय बन गई है। जहाँ कहीं थोड़ा-बहुत हास्य देखने में आता है, वह बेहद सीमित है। भाषा भी मात्र कामचलाऊ बनकर रह गई है, प्रत्येक पेशे में उसकी विशिष्ट शब्दावली विकसित हो गई है, जिसे उस पेशे के लोग ही समझ सकते हैं। अपने कार्यक्षेत्र से बाहर और अपने साथी अर्थशास्त्रियों से दूर कोई भी अर्थशास्त्री अपने को अजनबी के रूप में पाता है, मानो किसी अनजान जगह में आ गया हो। वह सदा भयभीत रहता है कि कहीं उसे अपरिचित भाषा न सुननी पड़े! वकीलों, डॉक्टरों, शिक्षकों, पत्रकारों और अन्य पेशों से संबद्ध लोगों का भी यही हाल है।

इससे भी अधिक दुःख की बात यह है कि मानव कल्पना बीभत्स और विकृत चीजों की ओर उन्मुख होती जा रही है। पुस्तकों और फिल्मों के पास तो मानो हिंसा और सेक्स, यही दो विषय रह गए हैं। अप्रिय और आघातपूर्ण घटनाओं को छोड़कर कुछ भी मानव संवेदना को झकझोरता दिखाई नहीं देता। अब भले ही यह शब्दों और फिल्मों का प्रभाव हो या न हो, लेकिन समाज इन्हीं मानसिकताओं को प्रतिबिंबित करता है। विमान अपहरण, लूटपाट, दुराचरण और हत्या दैनिक घटनाएँ बनती जा रही हैं। कभी-कभार तो इन घटनाओं को राजनीतिक रंग देकर सम्मानित कार्यों का जामा पहनाया जाता है।

किंतु 'शंकर्स वीकली' एक बेमिसाल आशावादी पत्र है। हमें पूर्ण विश्वास है कि वर्तमान परिस्थिति के बावजूद दुनिया एक दिन खुशनुमा और कहीं अधिक आरामदायक जगह बन जाएगी। अंत में मनुष्यता की भावना मृत्यु का कारोबार करनेवाली शक्तियों पर विजय प्राप्त करेगी और जीवन उस हद तक प्रफुल्लित हो जाएगा कि दुनिया में मानवता का सर्वोच्च उद्देश्य स्वयमेव पूर्ण हो जाएगा। कुछ लोग इसे ईश्वर कहते हैं; हम इसे मानव की नियति कहना चाहते हैं, और इस विचार के साथ हम आपके सुखद भविष्य की कामना करते हुए आपसे सस्नेह विदा लेते हैं।

* 'शंकर्स वीकली' के 31 अगस्त, 1975 के अंक में प्रकाशित शंकर के अंतिम संपादकीय से लिये गए अंश।

आदेश दिया है।

कुछ दिनों पहले बीबीसी ने एक 'सर्कुलर लेटर' का हवाला देते हुए प्रसारित किया कि दृश्य, श्रव्य एवं प्रचार निदेशालय ने सभी सरकारी विभागों तथा निजी संस्थानों को ये आदेश दिए हैं कि 'स्टेट्समैन' ग्रुप के समाचार पत्रों तथा चंडीगढ़ से प्रकाशित 'ट्रिब्यून' को विज्ञापन न दिया जाए।

उपर्युक्त उदाहरण से प्रमाणित होता है कि सेंसरशिप के कारण भारतीय मीडिया को न केवल प्रताड़ित किया गया अपितु उस पर से लोगों का भरोसा उठ गया था। लोग बीबीसी और वायस ऑफ अमेरिका की ओर नजरें टिकाए रखते थे। ब्रिटेन के 'टाइम्स' और 'गार्जियन' के समाचार प्रतिनिधियों को आपात्काल के दौरान सत्ता विरोधी खबर छापने के कारण भारत से निकाल दिया गया। तमाम बंदिशों के बावजूद रेडियो ऑस्ट्रेलिया, बीबीसी तथा वॉयस ऑफ अमेरिका ही भारतीयों के लिए खबर जानने का आधार बन गए। लोग छोटी-बड़ी सभी प्रकार की खबरों के लिए विदेशी रेडियो की ओर अपना कान किए रहते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आपात्काल की भारतीय पत्रकारिता सेंसरशिप के कारण पंगु हो गई थी। अपने आपको बुद्धिजीवी कहलाने वाले साहित्यकार के साथ-साथ अधिकतर पत्रकार भी नपुंसक दिख रहे थे। संघर्ष का चोला पहनने वाले कम्युनिस्ट विचारधारा के बुद्धिजीवियों का बहुत बड़ा समूह तो तानाशाही के तलवे चाट रहा था। आजादी के बाद संकट के सबसे बड़े दौर में अपने आपको सुबुद्ध समझकर इतराने वाले पत्रकार समूह की भूमिका हास्यास्पद हो गई। दूसरे खेमे में जो गिने-चुने साहसी पत्रकार थे, वे पहले ही जेल की सींखचों के पीछे बंद कर दिए गए थे। बस रोजी-रोटी के लिए दुम हिलाने वाले अधिकतर तथाकथित बुद्धजीवी ही उन दिनों पत्रकारिता कर रहे थे। हाँ, पीड़ित-प्रताड़ित होकर भी पश्चिमी प्रेस अपनी विश्वसनीयता कायम किए हुए था।

'आपात्कालीन संघर्ष-गाथा' के लेखक श्री प्र. ग. सहस्रबुद्धे एवं श्री माणिकचंद वाजपेयी के अनुसार, 4 जनवरी, 1976 को दिशा-निर्देश जारी किया गया, जिसमें निर्देश था कि संसद की कार्यवाही के संबंध में कोई समाचार, टिप्पणी, विवरण इत्यादि सभी सेंसर कानून के अंतर्गत माना जाएगा। इसीलिए संसद संबंधी प्रत्येक समाचार सेंसर के अनुमोदन के बाद ही छापा जा सकेगा। इस दिशा-निर्देश के जारी होने के बाद संसद्-भवन में कक्ष-क्रमांक 64 को सेंसर कक्ष बना दिया गया। अब वहाँ दो पालियों में दो अधिकारी बैठकर क्या छपेगा और क्या नहीं, इसका निर्णय करने लगे। समाचार-पत्रों पर इतने प्रतिबंध और अंकुश डालने के बाद भी शायद सत्ता का मन नहीं भरा था। 11 फरवरी, 1976 को 'आपत्तिजनक सामग्री प्रकाशन निषेध अधिनियम, 1976' लाया गया। इस कड़े अधिनियम से मानो प्रेस की आजादी का गला घोंट दिया गया था। सबसे अधिक खतरनाक व्यवस्था इस कानून में यह की गई कि इसे संविधान की नौवीं अनुसूची में डाल दिया गया, इसका परिणाम यह हुआ कि इस कानून को किसी न्यायालय में इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती थी कि यह संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण करता है।

आपात्काल का उत्पीड़न सहने वाले कई और भी प्रेस हैं, जिनका नामोल्लेख करना यहाँ आवश्यक है। ऐसे पीड़ित-प्रताड़ित पत्र-पत्रिकाओं में मुंबई से प्रकाशित साप्ताहिक पत्रिका 'ओपीनियन' पवनार आश्रम की पत्रिका 'मैत्री' 'फ्रीडम फर्स्ट' (मुंबई), 'पांचजन्य' (लखनऊ), लोकवाणी (बंगलौर), 'अर्थ विकास' (कर्नाटक), 'दिव्यवाणी' (बंगलूर), 'विक्रम' (बंगलूर), 'साधना' (अहमदाबाद), 'आनंद बाजार पत्रिका' (कोलकाता), 'राष्ट्रवार्त्ता' तथा केसरी (केरल) 'हिम्मत' (मुंबई), 'शंकर्स वीकली' इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में सरकार द्वारा 26 जून, 1975 को घोषित आपात्काल का देश और समाज पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। आपात्काल की घोषणा के बाद भारतीय प्रेस पर प्री-सेंसरशिप लगा दिया गया था। कुल उन्नीस महीने के आपात्काल के दौरान भारतीय प्रेस ने जो त्रासदी भोगी-झेली, वह पत्रकारिता के इतिहास में काले अध्याय के रूप में रेखांकित हो गया है। पत्रकारिता-जगत् के अधिकतर पत्रकारों-संपादकों ने माना है कि सन् 1974-75 के दौरान भारत की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियाँ ऐसी नहीं थीं कि देश पर आपात्काल थोपना एक मात्र विकल्प बचा हो। भारत के महामहिम पूर्व राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी ने भी हाल में कहा है कि 'संभवत: आपात्काल को टाला जा सकता था।'

विश्लेषकों का मानना है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा श्रीमती इंदिरा गाँधी के चुनाव को अवैध घोषित करने तथा उन्हें छह वर्षों तक चुनाव लड़ने से अयोग्य घोषित किए जाने की निराशा और हताशा से उपजी मानसिकता संभवत: आपात्काल की घोषणा का तात्कालिक कारण बना हो। इसके अतिरिक्त विपक्षी दलों द्वारा आंदोलन की घोषणा, कांग्रेस के अंदर विद्रोह की आशंका, श्रीमती गाँधी की तानाशाही प्रवृत्ति, कांग्रेस के चापलूस नेताओं की चौकड़ी, सत्ता से चिपके रहने की मानसिकता तथा महँगाई, बेरोजगारी और भ्रष्टाचार पर नियंत्रण की असमर्थता जैसे कुछ प्रमुख कारणों ने आपात्काल थोपने की पृष्ठभूमि निर्मित की थी। खैर जो कुछ भी हो आपात्काल ने जो तांडव मचाया, उससे समाज-जीवन त्राहिमाम् कर उठा था।

आपात्काल की घोषणा के साथ ही वयोवृद्ध राजनेता और संपूर्ण क्रांति के प्रणेता लोकनायक जयप्रकाश नारायण, अटल बिहारी वाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी

आपात्काल की भारतीय पत्रकारिता सेंसरशिप के कारण पंगु हो गई थी। अपने आपको बुद्धिजीवी कहलाने वाले साहित्यकार के साथ-साथ अधिकतर पत्रकार भी नपुंसक दिख रहे थे। संघर्ष का चोला पहनने वाले कम्युनिस्ट विचारधारा के बुद्धिजीवियों का बहुत बड़ा समूह तो तानाशाही के तलवे चाट रहा था। आजादी के बाद संकट के सबसे बड़े दौर में अपने आपको सुबुद्ध समझकर इतराने वाले पत्रकार समूह की भूमिका हास्यास्पद हो गई

इत्यादि सहित हजारों लोगों को गिरफ्तार किया गया। इसमें राजनेताओं और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के साथ-साथ लेखक, पत्रकार, प्राध्यापक, अधिवक्ता जैसे बुद्धिजीवी वर्गों के लोग भी बड़ी संख्या में शामिल थे। केवल दिल्ली विश्वविद्यालय के 300 से अधिक प्राध्यापक आपात्काल के दौरान गिरफ्तार किए गए थे। आपात्काल की त्रासदी और भयावह स्थिति का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि आपात्काल के 19 महीनों के दौरान 1 लाख से भी अधिक लोगों को बंदी बनाया गया था, जो 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' से भी अधिक था।

आपात्काल के दौरान प्रेस की स्वतंत्रता को छीनने के लिए प्री-सेंसरशिप के साथ-साथ और भी कई कदम उठाए गए। देश के प्राय: सभी समाचार-पत्रों के कार्यालयों पर पुलिस का पहरा डाल दिया गया। अनेक समाचार पत्रों की प्रेस की बिजली काट दी गई ताकि समाचार-पत्र को छपने से रोका जा सके। जो समाचार पत्र छप गए थे, उन्हें वितरित नहीं होने दिया गया। कुल मिलाकर उसी रात इस बात की पूरी व्यवस्था कर ली गई कि देश में क्या कुछ हो रहा है, इसका पता जनता को नहीं चल सके। इसके बावजूद 'दैनिक जागरण' और 'नई दुनिया' सहित अनेक समाचार-पत्रों में उस दिन विरोधस्वरूप संपादकीय का स्थान खाली छोड़ दिया था और इस प्रकार सरकार को खुली चुनौती दी गई। इतना ही नहीं, देश के सैकड़ों पत्रकारों ने जनसामान्य को वस्तुस्थिति से अवगत कराने के लिए भूमिगत संचार-व्यवस्था शुरू कर दी तथा इसके तहत दर्जनों समाचार बुलेटिनों का प्रकाशन करने लगे।

कुल मिलाकर प्रत्यक्ष रूप से प्रकाशित तथा वितरित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं के सेंसरित होने के मद्देनजर भूमिगत संचार-व्यवस्था समानांतर रूप से खड़ी हो गई थी। जनता के बीच सूचना-संप्रेषण प्रक्रिया के छिन्न-भिन्न हो जाने के बावजूद सरकार द्वारा एकतरफा संवाद संप्रेषित करने की मानसिकता पर कुठाराघात किया गया। पत्रकार ने गुप्त रूप से निकलने वाले नियमित समाचार बुलेटिन के साथ-साथ पूरे देश में अलग-अलग स्थानों से विभिन्न प्रकार के हैंडबिल, पर्चे, बुकलेट, पैंफलेट इत्यादि निकालकर पुलिसिया-दमन का कच्चा-चिट्ठा खोल दिया। जनसंचार की इस वैकल्पिक व्यवस्था ने न केवल जनजीवन को आपात्काल की सच्चाई से अवगत कराया, अपितु भूमिगत आंदोलन को भी धारदार बनाया।

'अखिल भारतीय लोक-संघर्ष-समिति' द्वारा निम्नलिखित बुकलेट प्रकाशित किए गए, जो आपात्काल का कच्चा चिट्ठा खोलते हैं 1- ट्वंटी लाइस ऑफ मिसेस एंटी गाँधी, 2- एनाटॉमी ऑफ फॉसिज्म, हू इज फॉसिस्ट वी ऑर दे, 3- फैक्ट्स (नेल इंदिराज लाइस), 4- व्हेन डिसऑबिडिएंस टू लॉ इज ए ड्यूटी, 5- चार्टर ऑफ सिविल लिबर्टीज, 6- संविधान को बदल डालने का प्रारूप, 7- इमरजेंसी एक्स-रेज , 8- फॉसिज्म, 9- राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और राजनीति, 10- काली रात।1

आपात्काल के दौरान अनेक समाचार बुलेटिन भी प्रकाशित किए गए, जिनमें पटना से प्रकाशित निम्नलिखित बुलेटिन के नाम उपलब्ध हैं 1- लोकवाणी (लोक-संघर्ष-समिति और विद्यार्थी-परिषद्), 2- तरुण क्रांति (छात्र-संघर्ष-समिति), 3- हमारा संघर्ष (भारतीय लोकदल), 4- मुक्ति-संग्राम (लोहिया विचार मंच एवं छात्र-संघर्ष-समिति), 5- जनमुक्ति (मार्क्सवादी), 6- क्रांतिवाद (युवावाहिनी), 7- छात्र-शक्ति (विद्यार्थी-परिषद्), 8- भारतीय (अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्), 9- जनता समाचार, 10- लोकसंघर्ष, 11- संग्राम, 12- लोकपक्ष (युवावाहिनी एवं छात्र-संघर्ष-समिति), 13- युवा संघर्ष।[2]

सेंसरशिप के कारण सरकार और समाज के बीच सूचनाओं के संप्रसारण में आने वाली परेशानियों का अनुभव सरकार को भी नहीं था। प्रशासन की तानाशाही की खबर किसी-न-किसी रूप में जनता तक तो पहुँच जाती थी, किंतु सरकार तक वह समाचार नहीं पहुँच पाता था। तानाशाही की तेज आँच में लोक-स्वातंत्र्य धू-धू कर जल रहा था और सरकार बेखबर थी। सरकार को यह गलतफहमी बनी रही कि सभी समस्याओं की जड़ पत्र-पत्रिकाएँ ही हैं। यही कारण है कि आपात्काल के दौरान उन्नीस महीनों तक सत्ता के दमन-चक्र के नीचे पत्रकारिता कराहती रही। सेंसर की कैंची ने उसका स्वरूप ही बिगाड़ दिया, जिसका खामियाजा उसे भुगतना पड़ा।

प्रचार के द्वारा सत्य को असत्य और असत्य को सत्य में बदला जा सकता है, ऐसा हिटलर तथा स्टालिन दोनों करके दिखा गए थे। इंदिरा जी कम्युनिस्टों की मदद से उसी प्रकार का प्रचारात्मक आक्रमण कर रही थीं। जेपी, आचार्य कृपलानी, मुहम्मद करीम छागला, कुलदीप नैयर, दुर्गा भागवत, फणीश्वरनाथ 'रेणु', डॉ. रघुवंश, गौर किशोर घोष इत्यादि अनेक सर्वमान्य नेताओं, पत्रकारों तथा प्रतिष्ठित साहित्यकारों की आवाज कुचल दी जाती थी।[3]

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की वैचारिक पृष्ठभूमि से जुड़े हुए पत्रकार, लेखक और साहित्यकार देश के प्राय: सभी राज्यों से भूमिगत पत्र-पत्रिकाएँ निकालने लगे थे। यह सब काम पुलिस-प्रशासन को चकमा देकर गुपचुप तरीके से किया जाता था। जाहिर है, इन कामों में जोखिम भी कम नहीं था, किंतु इसका प्रभाव जनमानस पर काफी पड़ रहा था। दिल्ली से प्रकाशित होने वाली 'जनवाणी', 'देहली न्यूज बुलेटिन', 'पब्लिक सर्वेंट' और 'दिल्ली समाचार' ने समानांतर प्रचार-व्यवस्था कायम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तो हरियाणा का 'दर्पण' पुलिस-प्रशासन के लिए सिरदर्द बन गया। इन सभी पत्र-पत्रिकाओं ने भूमिगत संचार व्यवस्था में जान फूँक दी। इससे

आपात्काल के दौरान प्रेस की स्वतंत्रता को छीनने के लिए प्री-सेंसरशिप के साथ-साथ और भी कई कदम उठाए गए। देश के प्राय: सभी समाचार-पत्रों के कार्यालयों पर पुलिस का पहरा डाल दिया गया। अनेक समाचार पत्रों की प्रेस की बिजली काट दी गई ताकि समाचार-पत्र को छपने से रोका जा सके। जो समाचार पत्र छप गए थे, उन्हें वितरित नहीं होने दिया गया

न केवल संगठनात्मक-आंदोलनात्मक सूत्र संचालित होने लगे, अपितु सरकार के झूठे प्रचार का खंडन भी होने लगा। इस अवधि में महिलाओं ने खतरे मोल लेकर भूमिगत साहित्य का वितरण किया। जेलों में बंद कार्यकर्त्ताओं के लिए अन्न-धन एकत्र किया, परिवारों को सांत्वना और सहायता दी तथा बिखरे कार्यकर्त्ताओं के बीच सूचनाओं का आदान-प्रदान किया। इसमें न केवल सामान्य कार्यकर्त्ता थीं, बल्कि ऐसे बड़े अफसरों की पत्नियाँ भी थीं, जो स्वयं खुलकर सामने नहीं आ सकते थे, पर सरकारी सूचनाएँ देकर अपनी पत्नियों के माध्यम से आंदोलनकारियों को उचित बचाव के संदेश भिजवा देते थे और सरकार द्वारा उठाए जाने वाले कदमों की पूर्ण जानकारी दे देते थे।[4]

भूमिगत संचार व्यवस्था में सूचनाओं के चार प्रमुख वर्ग थे (क) संगठनात्मक सूचनाएँ, (ख) सरकार के तानाशाही कदम, जैसे गिरफ्तारियाँ, दमन, गोलाबारी, बाजारों आदि की तोड़-फोड़, आततायी सरकारी आदेश, नसबंदी के अमानुषिक अभियानों और साम्राज्ञी इंदिरा गाँधी और राजकुमार संजय गाँधी की हरकतों की जानकारियाँ, (ग) सरकारी घबराहट, कर्मचारियों और कर्मियों आदि के बारे में जानकारी एकत्र करना, (घ) सरकारी महकमों, प्रधानमंत्री सचिवालय, मंत्रिमंडल, गुप्तचर संगठनों आदि में दबी हुई या गुप्त जानकारियों को प्राप्त करना।[5]

जनमाध्यम के प्रमुख स्रोत समाचार-पत्र ही नहीं, आकाशवाणी और दूरदर्शन पर से भी जनता का विश्वास उठ चुका था। जनसंचार के लगभग सभी विकल्पों पर सत्ता की पहरेदारी हो गई थी। सेंसरशिप की कैंची से पत्रकारिता कराहने लगी थी। एकपक्षीय समाचार के कारण जनता ने अपना मुँह बीबीसी और वॉयस ऑफ अमेरिका की तरफ कर लिया था। इसकी कमी एक हद तक भूमिगत पत्र-पत्रिकाएँ भी दूर कर रही थीं। आपात्काल के दौरान केवल सत्ता पक्ष की खबरें प्रसारित करना मानो रेडियो का धर्म और कर्त्तव्य हो गया था। आकाशवाणी की प्रामाणिकता समाप्त हो जाने के कारण लोग बीबीसी की ओर टकटकी लगाए रहते थे। सन् '77 के चुनाव के दौरान यद्यपि सेंसरशिप हट गई थी, फिर भी आकाशवाणी

अडवानी, चरण सिंह गिरफ्तार

THE HINDU
India's National Newspaper

KIRLOSKAR

President Proclaims National Emergency

"Security of India Threatened by Internal Disturbances"

Preventive Arrests: Press Censorship Imposed

PM Explains Action

साभार : https://www.newsclick.in/reflections-emergency-and-press-censorship-today

की खबरें सूचना प्रसारण मंत्रालय के सचिव और अतिरिक्त सचिव जैसे अधिकारियों से सेंसर होकर ही प्रसारित होती थीं। कहने का तात्पर्य यह है कि यह सुनिश्चित कर लिया जाता था कि जनमानस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने वाले कोई समाचार प्रसारित न किए जाएँ और समाचारों में विपक्ष को महत्त्व न दिया जाए।

आकाशवाणी तो आम लोगों की भाषा में 'इंदिरा वाणी' कही जा रही थी और इन सबकी विश्वसनीयता समाप्त हो चुकी थी। ग्रामीण-अनपढ़ लोग भी गाँव की चौपाल में बीबीसी लंदन प्रतिदिन सुनते थे, जो भारत संबंधी किसी भी समाचार को बड़े ही प्रामाणिक रूप से प्रसारित करता था।[6] आकाशवाणी द्वारा एकपक्षीय खबर देने का सिलसिला आपात्काल घोषित होने के पहले ही प्रारंभ हो गया था। 'अधिकांश घटनाओं में किसी-न-किसी रूप में आंदोलन की आग सुलगने लगी थी, किंतु उनके समाचार 'आकाशवाणी' में नहीं आते थे, वह मुख्य रूप से सरकारी दृष्टिकोण से ही समाचारों और विचारों को प्रसारित करती।[7]

आपात्काल के दौरान भूमिगत संघर्ष और भूमिगत पत्रकारिता जनमानस के सहयोग के बल पर ही चलता रहा। लोगों ने जान को जोखिम में डालकर भूमिगत संघर्ष को जीवंत बनाए रखा। जन-सहयोग के कारण ही हर मोर्चे पर पुलिस-प्रशासन और अधिकारी गच्चा खाते रहे। तब हाथ मलने के अतिरिक्त उनके पास कोई विकल्प नहीं रह पाता था। भूमिगत पत्रिकाओं, पैंफलेट एवं बुलेटिन को एक जगह से दूसरी जगह भेजने तथा जनता तक वितरित करने के लिए एक से एक तरीके अपनाए गए। कभी बच्चों के हाथों तो कभी महिलाओं के हाथों सूचना-संप्रेषण का कार्य चलता रहा। प्रचार-तंत्र की नई-नई तकनीक के सामने पुलिस दिन-दहाड़े उल्लू बनती रही। महिलाओं ने घोर निराशा के इस घने अंधकारकाल में भी उसी विलक्षण धैर्य, साहस और बुद्धि के साथ काम करना शुरू किया। भूमिगत कार्यकर्ताओं को प्रश्रय देना, खबरें पहुँचाना, पर्चे और चिट्ठियाँ बाँटना, आंदोलन-साहित्य को घर-घर पहुँचाना, जेल गए हुए सेनानियों से संपर्क करके उनका मनोबल बनाए रखना, विशेष उत्सवों में विशेष रूप से राखी, मिठाई, दीपों से उन्हें उत्साहित करते रहना, उनके परिवार को सहायता पहुँचाना और गुप्त बैठकों के माध्यम से प्रदेश-भर में एक भूमिगत संगठन का जाल बिछा देना महिलाओं के द्वारा ही बहुत अंशों से संभव हो सका।[8]

भूमिगत प्रचार-तंत्र की उपलब्धि के संबंध में अटल बिहारी वाजपेयी ने लिखा है कि सेंसर और प्रचार-तंत्र के एकाधिकार द्वारा श्रीमती गाँधी जनता को विपक्ष से पूरी तरह से काट देना चाहती थीं, लेकिन हुआ ठीक इसका उलटा। उनके प्रचारतंत्र की विश्वसनीयता खत्म-सी हो गई थी। भूमिगत साहित्य ने विपक्ष से जनता को जोड़े रखा। इसके विपरीत श्रीमती गाँधी जनता से बुरी तरह कट गई थी। जनता की इस मनःस्थिति से अनभिज्ञ रहने के कारण श्रीमती गाँधी चुनाव कराने का फैसला कर बैठीं और जब उन्होंने जनमानस का बदला हुआ रूप देखा, तब तक बहुत देर हो चुकी थी। बहुत हद

तक इसका श्रेय भूमिगत प्रचारतंत्र का है।[9]

आपात्काल में भूमिगत पत्रकारिता के कारण जेलों की खबरें बाहर और बाहर की खबरें जेलों में जाने की व्यवस्था भी बन गई थी। ये खबरें विदेशों तक पहुँचती थीं और विदेशों की खबरें इसी माध्यम से भारत आती थीं। एक प्रकार से एक नई अंतरराष्ट्रीय समाचार-सेवा खड़ी हो गई थी। इस स्वत:स्फूर्त किंतु गुप्त समाचार सेवा से प्राप्त समाचारों को विभिन्न नामों के छोटे-छोटे गुप्त भूमिगत बुलेटिनों द्वारा जनता तक पहुँचाया जाता था। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो एकपक्षीय समाचार ही जनजीवन को मिल पाता और सच्ची खबरें उन्हें नहीं मिल पातीं। भारत के भूमिगत संचारतंत्र को विदेशों तक पहुँचाने की जिम्मेदारी कुछ प्रमुख नेताओं को सौंपी गई थी। भूमिगत प्रचारतंत्र का एक विस्तार विदेशों में था। इसी के कारण सरकार का तानाशाही चरित्र विदेशों में छिप नहीं सका। विदेशों में रहने वाले लाखों भारतीयों, बुद्धिजीवियों और सोशलिस्ट इंटरनेशनल नेताओं, जिन्होंने तानाशाही के विरुद्ध हमारे संघर्ष का नैतिक समर्थन किया, हम उनके आभारी हैं। इस संघर्ष के विदेशों में हुए प्रचार-अभियान का विशेष रूप से सर्वश्री सुब्रह्मण्यम स्वामी, लैला फर्नांडीज, राम जेठमलानी, सीआर ईरानी, केदारनाथ साहनी, मकरंद देसाई इत्यादि का योगदान विशेष रूप से स्मरणीय है।[10]

भूमिगत पत्रकारिता का आपात्काल में क्या महत्व था? इस बात का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि सरकारी विज्ञप्तियों के आधार पर छपने वाली पत्र-पत्रिकाओं की प्रसार-संख्या घटती जा रही थी और भूमिगत बुलेटिनों की प्रसार संख्या बढ़ रही थी, जिसके कारण एक समानांतर प्रचार-तंत्र खड़ा हो गया था। इसकी विश्वसनीयता प्रत्यक्ष रूप से प्रकाशित-प्रसारित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं की तुलना में अधिक थी। रेडियो और टेलीविजन जैसे सरकारी माध्यम तो मानो सरकारी भोंपू बन गए थे। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उसके लिए कोई अर्थ नहीं रह गया था। सरकार ने सेंसरशिप लगाकर यह बात सुनिश्चित करने की पूरी चेष्टा की कि जनता उनके ही चश्मे से समाज-व्यवस्था को देखें।

आपात्काल के प्रतीक बन गए थे संजय गाँधी और इंदिरा गाँधी

अंदर-ही-अंदर प्रवाहित हो रही यह समाचार एवं सूचनाधारा प्रकट में प्रकाशित और प्रसारित हो रहे समाचार पत्रों, आकाशवाणी, दूरदर्शन इत्यादि की खबरों से अधिक प्रभावी बन गई। इस धारा ने श्रीमती गाँधी तथा उनकी सरकार द्वारा जनता और सत्य समाचारों के बीच में खड़े किए गए सारे अवरोधों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।[11] मजेदार बात यह थी कि आपात्काल के दौरान वैधानिक कहे जाने वाले अखबारों की प्रसार-संख्या तो निरंतर घट रही थी। पर इन बुलेटिनों का प्रसार बढ़ रहा था। इसका कारण यही था कि ये पत्रिकाएँ जनता के सत्य को जानने की जिज्ञासा को पूर्ण करती थी।[12]

भूमिगत पत्रकारिता का प्रभाव

आपात्काल के दौरान भूमिगत पत्रकारिता का बड़ा प्रभाव पड़ा। संपूर्ण क्रांति के समर्थक पत्रकारों ने भूमिगत पत्रकारिता को जीवंत बनाए रखा। उन लोगों की भूमिका सराहनीय रही। पुलिस-प्रशासन की नजर से बचने के लिए ये लोग नाम बदलकर काम किया करते थे। इन लोगों का भूमिगत तंत्र इतना सफल था कि सरकारी खुफिया तंत्र को पता ही नहीं चल पाता था कि भूमिगत पत्रिकाएँ कहाँ से छपती हैं और किस तरह वितरित होती हैं। हरियाणा से प्रकाशित होने वाले 'दर्पण' के मुख्य पृष्ठ पर संपादक, मूल्य और कार्यालय का विवरण भी निराले ढंग से दिया जाता था। उसका उल्लेख करना भी यहाँ प्रासंगिक होगा। संपादक : नारायण, मूल्य : पढ़ो-पढ़ाओ, कार्यालय : चलता-फिरता।

वरिष्ठ पत्रकार श्री राजनाथ सिंह 'सूर्य' के अनुसार, समाचार-पत्रों के मालिक और संपादक शासन के सामने पूरी तरह घुटने टेक चुके थे। इसलिए संवाददाताओं की कोई स्वतंत्र भूमिका अपने पत्र के संबंध में नहीं रह गई थी। हाँ, भूमिगत अभियान में सामंजस्य बैठाने में कुछ पत्रकारों की भूमिका बहुत अधिक थी। उत्तर- प्रदेश में हमारे साथ श्री अच्युतानंद मिश्र और पीके रॉय ने इस संघर्ष में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया था। वस्तुत: भूमिगत अभियान के संपर्क-सूत्र अधिकतर पत्रकार ही थे। श्री 'सूर्य' बताते हैं कि आपात्काल के दौरान जन-जन में चेतना जगाने के लिए साइक्लोस्टाइल किए गए पत्रक विभिन्न भाषाओं में निकाले जाते थे। ये पत्रक देश के अनेक स्थानों से गुप्त रूप में निकाले जाते थे और विभिन्न गोपनीय तरीकों से उसका प्रसारण किया जाता था। उस समय निकलने वाले पत्रकों में, जिसका जनजागरण में सर्वाधिक योगदान रहा, उसका संपादन श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी जी करते थे। इन बुलेटिन और गुप्त एजेंसी के वार्ताकार बड़े खोजी पत्रकार थे। वे निर्भय और पैनी नजर वाले थे। सरकार, मंत्रिमंडल और कांग्रेस पार्टी की गुप्त बैठकों की चर्चाओं की जानकारी भी वे प्राप्त कर लेते थे। जब खबरें गुप्त बुलेटिनों में छपकर जनता तक पहुँचती थीं,

तब सरकारी खेमे में तहलका मचता था कि 'खबर कैसे लीक हो गई?' विद्याचरण शुक्ल पर कैसे डाँट पड़ी, संजय और इंदिरा गाँधी में कैसी कहा-सुनी हुई, उत्तर-प्रदेश के मुख्यमंत्री ने संजय की चप्पलें कब, कैसे उठाई आदि समाचार भी गुप्त पत्रकों में छा जाते थे। 'टॉप सीक्रेट' पूरा 'ओपन सीक्रेट' बन जाता था।[13]

आपात्काल के दौरान दो-दो बार गिरफ्तारी के वारंट जारी होने के बावजूद पुलिस को चकमा देने में सफल रहे श्री वचनेश त्रिपाठी के अनुसार, आपात्काल के दौरान गुप्त रूप से निकाली जाने वाली पत्र-पत्रिकाओं का योगदान बौद्धिक जनजागरण में काफी रहा। प्री-सेंसरशिप के बाद तो लोगों को सही सूचनाएँ नहीं मिल पा रही थीं। गुप्त रूप से निकाली जाने वाली ऐसी पत्र-पत्रिकाओं ने बहुत अहम भूमिका अदा की। दुस्साहसी और उत्साही पत्रकारों ने साइक्लोस्टाइल्ड पत्र एवं न्यूजलेटर वितरित किए। यहाँ तक कि जेपी का हस्तलिखित पत्र भी लोगों को वितरित कर आंदोलन को जारी रखने का आह्वान किया गया। यह सब जनसहयोग से ही संभव हो पाता था। वरिष्ठ पत्रकार श्री दीनानाथ मिश्र दावा करते हैं कि भूमिगत आंदोलन को गति देने में गुप्त रूप से निकलनेवाली पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। सेंसरशिप और गिरफ्तारी के कारण तोड़ी गई संचार-व्यवस्था को फिर से स्थापित करना चुनौती बन गया था। देश-भर में विभिन्न केंद्रों से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा। एक आँकड़े के अनुसार, भूमिगत साप्ताहिक पत्रों की वितरण-संख्या पाँच लाख से भी अधिक थी। इंदिरा गाँधी की तमाम कोशिशों के बावजूद भूमिगत संचार-व्यवस्था ठप न की जा सकी।

श्री मिश्र के अनुसार आपात्काल के विरुद्ध भूमिगत आंदोलन में अगर कुछ सफलतापूर्वक किया जा सका तो यही कि जनता और विरोधी नेताओं के बीच संचार हर कीमत पर बनाए रखा गया। लोगों के पास सही खबर पहुँचती रही, यह सरकार की पराजय थी, जिसे व्यापक जनसहयोग के कारण हासिल किया जा सका। इसकी गति सरकारी प्रचार से कम थी, लेकिन विश्वसनीयता अधिक थी। श्रीमती गाँधी ने जो संचार-अवरोध पैदा किया, उसका शिकार वे स्वयं बनीं। समाचार-पत्र पर सेंसर लगे रहने के कारण वे जनता की मनोदशा को नहीं समझ पाईं और उन्हें हार का सामना करना पड़ा। आपात्काल में सेंसरशिप और पुलिस चौकसी के कारण पत्र और पत्रकार सबसे अधिक तबाह हुए। कहीं से कोई आंदोलन समर्थक पर्चा भी पुलिस को प्राप्त हो जाता तो तुरंत मुद्रक या प्रकाशक की खोज में प्रशासन पिल पड़ता और यदि कोई 'शिकार' हाथ आता तो जब्ती-कुर्की, तोड़-फोड़, हाजत-जेल और गोली-बंदूक से उनका समुचित भंजन किया जाता। फिर भी कुछेक साहसी पत्रकारों और मुद्रकों ने आपात्काल के अंधकार में भी प्रकाशनों के माध्यमों से लोकनायक के संदेशों, आंदोलन की गतिविधियों और गंभीर विश्लेषणों से सबको जाग्रत रखा।[14]

आपात्काल के दौरान सेंसरशिप की कैंची से पत्रकारिता पर प्रभाव के सवाल पर 'दिनमान' में उस समय सहायक संपादक रह चुके श्री जीतेंद्र कुमार गुप्त गंभीर दिखते हैं। उनके अनुसार, सेंसरशिप की वजह से समाचार पत्रों और अन्य सभी सूचना-माध्यमों के अलावा सरकार की विश्वसनीयता घट गई थी। समाचार-पत्रों में सरकारी विज्ञप्तियाँ अधिक छपती थीं। सत्ता के खिलाफ एक शब्द भी छापना कठिन था। समाचारों को दबाए जाने के कारण उन दिनों अफवाहों का बाजार गर्म रहता था। छिटपुट गोपनीय परचे छपा करते थे। उन्हीं से कुछ घटनाओं की जानकारी मिलती थी।

'पंजाब केसरी' समूह के प्रबंधक और वयोवृद्ध पत्रकार श्री विजय चोपड़ा बताते हैं कि आपात्काल में अनेक गुप्त पत्र-पत्रिकाएँ और पैंफलेट छपते थे। उस समय की वास्तविक पत्रकारिता तो उन्हीं पत्र-पत्रिकाओं में हो रही थी, जिसका बौद्धिक जनजागरण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। मुझे जो भी इस तरह की पत्र-पत्रिकाएँ और साहित्य प्राप्त होता था, उसे मैं जेल में बंद अपने पिताजी श्री लाला जगतनारायण जी के पास पहुँचा देता था। इस कार्य में जेल अधीक्षक और अन्य अधिकारियों तथा कर्मचारियों की सहयोगात्मक भूमिका होती थी। जेल के भीतर इसे अन्य कैदी भी पढ़ते थे और सरकार के विरुद्ध मानस तैयार होता था। एक बार तो पटियाला जेल में किसी अन्य जेल से स्थानांतरित होकर आए राजनेता चंद्रशेखर को भी लाला जी ने ये पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध कराई थीं। वे तब इससे काफी प्रसन्न और प्रभावित हुए थे। बाद में जब चंद्रशेखर जी लालाजी की हत्या के बाद एक स्मृति समारोह में आए तो उन्होंने कहा था कि जब जेल में मुझे कोई नहीं पूछता था तो लाला जी ने ही पूछा और पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने के लिए दीं। इस प्रसंग के बाद लाला जी के प्रति चंद्रशेखर जी का आत्मीय भाव सदैव बना रहा। आपात्काल में 'नवभारत टाइम्स' के वरिष्ठ पत्रकार डॉ. नंदकिशोर त्रिखा की वैधता समाप्त कर दी गई थी। उनके अनुसार, गुप्त रूप से निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं ने संकल्प और साहस बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। आपात्काल लंबा खींचने के कारण लोगों का मनोबल टूटता दिख रहा था। ऐसे में गुप्त पत्र-पत्रिकाओं, देश के सुप्रसिद्ध चिंतकों और विचारकों के ऑडियो कैसेट्स, उनकी अपील, हैंडबिल इत्यादि ने कार्यकर्त्ताओं में ऊर्जा का संचार किया। संघर्ष को जारी रखने की प्रेरणा जाग्रत की।

लब्धप्रतिष्ठ पत्रकार अच्युतानंद मिश्र के अनुसार, आपात्काल के दौरान बौद्धिक जनजागरण में गोपनीय ढंग से निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। बिहार, उत्तर-प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, हरियाणा सहित अनेक प्रांतों से पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही थीं। गुप्त रूप से निकलने वाली पत्रिकाओं को प्रचंड जन-समर्थन मिल रहा था, क्योंकि उन दिनों सत्य सूचनाओं के वही स्रोत थे। श्री मिश्र बताते हैं कि विपक्ष की प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाएँ बंद हो गई थीं, लेकिन उनसे कई गुणा ज्यादा गुप्त रूप से नई पत्र-पत्रिकाएँ निकलने लगी थीं, जिनका उस दौर के लोक-जागरण में अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। 'दिनमान' के वरिष्ठ संवाददाता रहे रामसेवक श्रीवास्तव ने बताया कि आपात्काल के दौरान पत्र-पत्रिकाओं का गुपचुप प्रकाशन खतरों से भरा था। उसके लिए बहुत ही साहस की आवश्यकता थी, क्योंकि 'मीसा', जिसे हम असुर कानून कहते थे, प्रभावी था। जिन लोगों ने इस तरह की पत्रिकाएँ निकालीं और किसी-न-किसी रूप में उसके प्रचार-प्रसार में अपनी भूमिका का निर्वहन किया, उनकी जितनी प्रशंसा की

जाए कम है, क्योंकि ऐसी पत्रिकाओं का प्रकाशन असहजता के उस आपात्कालीन दौर में आम आदमी के अस्त-त्रस्त मनोबल को बनाए रखने में सहायक था।

दिनमान के सहायक संपादक रहे श्री जीतेंद्र कुमार गुप्त के अनुसार, गुप्त रूप से निकलनेवाली पत्रिकाओं से जनमानस में सरकार के प्रति आक्रोश पैदा होता था, जिसका परिणाम चुनाव में इंदिरा गाँधी की पराजय के रूप में सामने आया। जनता और सरकारी कर्मचारी सरकार की नीतियों से परेशान हो चुके थे। परिवार-नियोजन के संबंध में सरकारी अमले के तौर-तरीकों को लेकर जनता में काफी क्षोभ था। आपात्काल के दौरान चूँकि तथ्य प्रकाश में नहीं आते थे, इसलिए यह पता नहीं चलता था कि अमुक नीति के परिपालन में कितनी ज्यादती हो रही है। गुप्त रूप से निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं में जनता की आवाज मुखरित होती थी, जिसने बौद्धिक जनजागरण में अपनी भूमिका का निर्वहन किया। दक्षिण भारत के चर्चित पत्रकार एसएस महादेवन के अनुसार, प्री-सेंसरशिप के चलते समाचार-पत्र-पत्रिकाओं में आपात्काल के दौरान पुलिस प्रशासन और सरकार की ज्यादती एवं जुल्म संबंधी खबरें प्रकाशित नहीं हो पाती थीं। आमतौर पर वही लिखा जाता था, जो प्रशासन चाहता था। ऐसे में गुप्त रूप से निकाले जाने वाले न्यूज लेटर, पत्रिकाएँ और बुलेटिन की अहम भूमिका थी। आंदोलनकारियों को इन्हीं के माध्यम से सही जानकारी मिल पाती थी। देश-भर में विभिन्न भाषाओं में लगभग सौ पत्र-पत्रिकाएँ निकाली जाती थीं। प्रतिबंध के बावजूद इनको घर-घर बँटवाया जाता था।

पश्चिम बंगाल के चर्चित पत्रकार और 'स्वास्तिक' के संपादक श्री असीम मित्रा बताते हैं कि गुप्त रूप से निकलने वाली पत्रिकाओं को डाक से भेजना असंभव-सा था, लेकिन कोलकाता में बाकायदा एक पूरा नेटवर्क खड़ा किया, जो इन पर्चों को पाठकों तक पहुँचाए। सभी घरों में ये पर्चे सुबह-सुबह डाल दिए जाते थे। बाद में लोग इन्हें पढ़कर आपस में चर्चा करते। इस चर्चा के दौरान हम भी शरीक हो जाते और वाद-विवाद का आनंद लेते।

आपात्काल के खिलाफ जंग था जेपी का आंदोलन

आपात्काल के दौरान जबलपुर से प्रकाशित 'धर्मयुग' के सह संपादक रहे बबन प्रसाद मिश्र के अनुसार, लोग जेलों की खबरें, पुलिस अत्याचार एवं प्रशासनिक ज्यादतियों को इन्हीं गुप्त पर्चों और पत्रिकाओं से जान रहे थे। इससे उनमें तब इंदिरा जी की सत्ता के विरुद्ध आक्रोश बढ़ता गया। विशेषकर इंदिरा जी के छोटे पुत्र संजय गाँधी की हरकतों से सारा देश सन्न था। आपात्काल के दौरान पटना से प्रकाशित हिंदी दैनिक 'प्रदीप' के पत्रकार रहे श्री मगनदेव नारायण सिंह बताते हैं कि हिंदी में एक टेबलाइड साइज का अखबार निकलता था 'प्रतिपक्ष', एक साप्ताहिक था 'युवा', इनकी जबरदस्त माँग थी। लोगों को इन पर पूरा यकीन था, जबकि पूर्व से स्थापित समाचार पत्रों पर से लोगों का विश्वास उठ-सा गया था। सेंसरशिप के बावजूद कुछ प्रमुख पत्र संकेत भाषा में कुछ लिख ही देते थे और पाठक उसे समझ भी जाते थे।

आपात्काल के दौरान 'मीसा' के अंतर्गत जबलपुर सेंट्रल जेल में बंद रहे पत्रकार श्री सुरेंद्र द्विवेदी बताते हैं कि आपात्काल के दौरान राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जनसंघ के कार्यकर्त्ताओं द्वारा जनता से संवाद स्थापित करने के लिए हाथ से और साइक्लोस्टाइल कराकर परचे और बुलेटिन की शक्ल में समाचार छापे जाते थे। आपात्काल के समय 'स्वदेश' के भिंड जिले के ब्यूरो प्रमुख रहे रामभुवन सिंह कुशवाह के अनुसार, आपात्काल के दौरान गुप्त रूप से कुछ बुलेटिन, पैंफलेट अवश्य निकल रहे थे। संयोग से ग्वालियर केंद्रीय कारागार में बाहर से आने वाले सभी ऐसे बुलेटिन पहले मेरे पास ही आते थे और मेरी जिम्मेदारी थी कि उन्हें सबको दिखाकर नष्ट कर दूँ। इसलिए मैं व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ कि आपात्काल के निराशामय घोर अंधकार में भी आशा की एक किरण यह अवश्य थी कि 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' और 'सर्वोदय' जैसे गैर राजनीतिक संगठनों की सक्रियता के कारण आपात्काल के विरुद्ध जबरदस्त जन-आंदोलन खड़ा हो सका था।

श्री कुशवाहा बताते हैं कि कांग्रेस के कारण विरोधी दलों को एकजुट किया जा सका था। यही नहीं, इन बुलेटिनों और पर्चों ने भूमिगत आंदोलन खड़ा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया था। बुलेटिन और गुप्त साहित्य हम तक अकसर मीसा बंदियों के परिवार जनों के साथ आता था, जो समय-समय पर इजाजत लेकर उनसे मिलने आते थे। ये सामग्री खाद्य पदार्थों में छुपाकर लाई जाती थी। आपात्काल के दौरान भोपाल के' दैनिक जागरण' में कार्यरत हिंदी के वरिष्ठ पत्रकार रमेश शर्मा के अनुसार, आपात्काल में गुप्त रूप से पत्रिकाएँ बहुत कम निकल पाती थीं, किंतु पर्चे, पैंफलेट का चलन बढ़ गया था। इससे आंदोलनकारियों और दमित परिवारों का मनोबल बना रहा। राजस्थान के वरिष्ठ पत्रकार गुलाब बत्रा बताते हैं कि उस समय

गुप्त रूप से पत्रिका अथवा पत्रक छापना और वितरित करना साहसिक कार्य था, जो मानो अग्निपरीक्षा ही थी। इन पत्रिकाओं ने ऐसा माहौल बनाया कि चुनाव की घोषणा के बाद लावा बनकर फूट पड़ा।

छत्तीसगढ़ के वरिष्ठ पत्रकार रमेश नैय्यर के अनुसार, छोटी-छोटी गुप्त बैठकों में बाँटी जाने वाली पत्रिकाओं के अलावा एक-एक पन्ने के परचों के द्वारा भी आपात्काल का प्रतिरोध किया जाता था। कुछ परचे दीवारों पर भी रात के अंधेरे में चिपका दिए जाते थे। वे सत्ताविरोधी माहौल बनाने में बहुत कारगर होते थे। अंग्रेजी के वरिष्ठ पत्रकार बीआर जेटली के अनुसार, आपात्काल के दौरान सत्ता और सरकार के खिलाफ गुप्त रूप से भूमिगत पैंफलेट और पुस्तिकाएँ बड़ी संख्या में निकलती रहीं। गुप्तचर विभाग के अधिकारी और कर्मचारी इसको पकड़ने के लिए डाकघरों पर चौकसी रखते थे। आपात्काल के विरुद्ध सूचना-संप्रेषण में लगे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार करने के लिए पुलिस-प्रशासन मुस्तैद रहता था।

आपात्काल के समय 'युगधर्म' के प्रधान संपादक रहे भगवतीधर वाजपेयी कहते हैं कि गुप्त पत्र-पत्रिकाएँ ही उस दौर में सूचना-संप्रेषण के एकमात्र साधन रहे। निराशा और भय के उस माहौल में भी उन पत्र-पत्रिकाओं ने जनता के मनोबल को पूरी तरह गिरने से तो बचाया ही, लगे हाथ उसे आपात्काल की काली हकीकत से भी बखूबी परिचित करवा दिया। आपात्काल के समय इंदौर में 'स्वदेश' के सिटी रिपोर्टर रहे जयकृष्ण गौर बताते हैं कि उस समय कुछ लोग जेल में रहते हुए कागज पर हाथ से लिखकर पर्चा निकालते थे। उस पर्चे को जेल के बाहर चोरी-छिपे लक्षित पाठक समूह तक पहुँचाया जाता था। ऐसे अखबारों का उस समय जनता के बौद्धिक जनजागरण में बड़ा योगदान था।

आपात्काल के समय राँची से 'पायोनियर' के लिए रिपोर्टिंग करने वाले वरिष्ठ पत्रकार डॉ. वीपी शरण के अनुसार, गुप्त तरीके से निकलने वाली पत्रिकाओं का जनजागरण में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। पत्रकारिता पर कड़ी नजर के बावजूद गुप्त रूप से निकलने वाली कुछ पत्रिकाएँ लोगों तक सरकार की ज्यादतियों और देश में उत्पन्न परिस्थितियों की जानकारी पहुँचाती थीं। 'राँची एक्सप्रेस' के संपादक बलवीर दत्त के अनुसार, आपात्काल के दौरान गुप्त रूप से निकलने वाली कुछ पत्रिकाओं का इंतजार लोग बेसब्री से करते थे। राँची इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंस के कुछ विद्यार्थियों ने नवजागरण समिति का गठन किया था। वे लोग चुपचाप पर्ची बाँटते और सरकार की दमनकारी नीतियों और ज्यादतियों से लोगों को अवगत कराते थे।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आपात्काल में यदि प्रत्यक्ष तौर से निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं पर सरकार ने अंकुश लगा दिया था तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा समाजवादी पृष्ठभूमि से जुड़े कुछ पत्रकारों ने गुप्त रूप से पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू कर दिया था। इसके अतिरिक्त आपात्काल विरोधी साहित्य के रूप में सरकार की ज्यादतियों से अवगत कराने के लिए कुछ बुकलेट, पैंफलेट, हैंडबिल, बुलेटिन, परचे इत्यादि बड़ी संख्या में निकलने लगे थे। इसमें न केवल पुलिस-प्रशासन के अत्याचार का कच्चा-चिट्ठा खोला जाता था, अपितु आंदोलनकारियों और उनके समर्थकों के बीच संवाद-संप्रेषण का भी माध्यम बनता था। भय और आतंक के उस माहौल में अंधेरे के विरुद्ध लड़ाई में ऐसी गुप्त पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाश-स्तंभ का काम करती थीं। लोकनायक जयप्रकाश नारायण, अटल बिहारी वाजपेयी तथा लालकृष्ण आडवाणी जैसे नेताओं के संदेश भी इन पत्रकों में छपते थे, जो त्रासदी के उस काल खंड में कार्यकर्त्ताओं का उत्साहवर्धन करता था तथा आंदोलनकारी परिवारों के लिए संबल का कार्य करता था। कुल मिलाकर आपात्काल की भूमिगत पत्रकारिता ने समानांतर संचार व्यवस्था खड़ी कर दी थी, जिसने बौद्धिक जनजागरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।

संदर्भ :

1 चौधरी, श्री विभाष चंद्र; *आपात्काल के दौरान भूमिगत साहित्य* (आलेख), *छात्र आंदोलन से जनता सरकार तक* (स्मारिका), प्रकाशक : अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, बिहार प्रदेश (1977), पृ. 93
2 वही, पृ. 93
3 प्रसाद, डॉ. शत्रुघ्न; *आपात्कालीन संघर्ष में बिहार*, प्रकाशक: आपात्कालीन-संघर्ष- समिति, पटना (1978), पृ. 45
4 श्रीवास्तव, डॉ. शैलेंद्रनाथ; *लोकनायक जयप्रकाश नारायण*, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, (2002), पृ. 165-166
5 मिश्र, श्री दीनानाथ; *आपात्काल में गुप्त क्रांति*, सरस्वती विहार, दरियागंज, नई दिल्ली-2, संस्करण 1977, पृ. 36, 37
6 सागर, अन्नपूर्णा; *तानाशाही से जूझता हरियाणा*, कौटिल्य प्रकाशन, सोनीपत, पृ- 65
7 श्रीवास्तव, डॉ. शैलेंद्रनाथ; *लोकनायक जयप्रकाश* नारायण, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार (2002), पृ. 128
8 श्रीवास्तव, डॉ. वीणा; *आंदोलन में महिलाओं का योगदान* (आलेख), *छात्र-आंदोलन से जनता सरकार तक* (स्मारिका), प्रकाशक: अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, बिहार प्रदेश (1977), पृ. 31
9 वाजपेयी, श्री अटल बिहारी: श्री दीनानाथ मिश्र की पुस्तक '*आपात्काल में गुप्त क्रांति*' की भूमिका, प्रकाशक: सरस्वती विहार, दिल्ली-2 (1977), पृ. 5
10 वही, पृ. 5
11 सहस्रबुद्धे, श्री प्र. ग. एवं वाजपेयी, श्री माणिकचंद्र; *आपात्कालीन संघर्ष गाथा*, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली-55 (1990), पृ. 300
12 वही, पृ. 302
13 वही, पृ. 301
14 श्रीवास्तव, डॉ. शैलेंद्रनाथ; *लोकनायक जयप्रकाश नारायण*, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार (2002), पृ. 167

विजय क्रान्ति

भारतीय प्रिंट मीडिया उपलब्धियाँ और चुनौतियाँ

"विश्व प्रेस स्वतंत्रता दिवस एक स्वतंत्र और जीवंत प्रेस के प्रति हमारे अटूट समर्थन की पुष्टि करने का दिन है, जो एक लोकतंत्र के लिए महत्वपूर्ण है।
-नरेंद्र मोदी"

बीती आधी शताब्दी में हुए कई तकनीकी परिवर्तनों ने प्रिंट मीडिया के समक्ष कड़ी चुनौती रखी है। कुछ देशों में तो अखबार धीरे-धीरे बीते दिनों की बात होने की ओर बढ़ने लगे हैं, लेकिन भारत में समाचार पत्रों की प्रसार संख्या और पाठक दोनों बढ़े हैं। इस बढ़त पर एक नजर

भारतीय प्रिंट मीडिया के लिए यह बहुत बड़ी उपलब्धि है कि एक ऐसे काल में जब लगभग पूरी दुनिया में, विशेषकर यूरोप, उत्तरी अमेरिका, लैटिन अमेरिका, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया-ओशियानिया में प्रिंट मीडिया की हालत खराब चल रही है और एक के बाद एक कई समाचार पत्र और उन्हें छापने वाले प्रकाशन घराने बंद होते जा रहे हैं, भारत में दैनिक समाचार पत्रों और पत्रिकाओं की संख्या, सर्कुलेशन और पाठकों की संख्या लगातार बढ़ रही है।

एक जमाने में प्रिंट मीडिया पश्चिम के देशों, खास तौर से अमेरिका में सबसे ज्यादा रोजगार देने वाला व्यवसाय था। लेकिन पहले तो केबल टीवी और फिर इंटरनेट के रास्ते डिजिटल मीडिया ने उसकी हालत पतली कर दी है। 2008 वाली जानलेवा मंदी, लगातार गिरते सर्कुलेशन और विज्ञापन में घटते हिस्से की मार अमेरिका समेत कई पश्चिमी देशों का प्रिंट मीडिया नहीं झेल पाया है। 2004 के बाद अकेले अमेरिका में ही कम से कम 2100 जाने-माने अखबार बंद हो चुके हैं जिनमें से 70 साप्ताहिक पत्रिकाएँ थीं। कई दैनिक अखबार साप्ताहिक में बदल चुके हैं। छोटे-छोटे कितने अखबार बंद हो गए इसका अंदाजा भी नहीं है। एक ऐसे देश में जहाँ अखबार निकालना गर्व की बात होती थी और हर काउंटी (जिला या तहसील स्तर की इकाई) में कई-कई स्थानीय अखबार छपते थे, वहाँ की लगभग आधी काउंटी (1449) आज ऐसी हैं जहाँ अब केवल एक अखबार छपता है। और 171 से तो अब एक भी नहीं छपता।

अमेरिका के ब्यूरो ऑफ लेबर स्टैटिस्टिक्स के आंकड़ों से पता चलता है कि 2008 और 2019 के बीच समाचार माध्यमों के न्यूजरूम कर्मचारियों की संख्या में 23 प्रतिशत कमी हुई। ये कर्मचारी वे पत्रकार लोग थे जिनके सहारे समाचार संगठन चलते हैं। लेकिन इनमें सबसे बुरी हालत प्रिंट मीडिया की रही जिसके 71 हजार कर्मचारियों में से 35 हजार की नौकरियाँ जा चुकी हैं। डिजिटल मीडिया में जरूर कुछ नई भर्तियाँ हुई हैं लेकिन इसके बावजूद नौकरियाँ खोने वाले पत्रकारों की संख्या इससे काफी ज्यादा है।

भारतीय प्रिंट मीडिया और पाठक - बढ़ता रिश्ता

लेकिन भारतीय मीडिया पश्चिम के इस बुखार से मुक्त दिख रहा है। 2019 में भारत में पाठकीय रुचियों के सबसे व्यापक और नियमित रूप से किए जाने वाले वार्शिक अध्ययन 'भारतीय पाठक सर्वेक्षण' (इंडियन रीडरषिप सर्वे) में पाया गया कि भारतीय प्रिंट मीडिया के बढ़ने का क्रम जारी है और उसके पाठकों की संख्या भी लगातार बढ़ रही है। अब तक के इस नवीनतम सर्वेक्षण के अनुसार भारत

में दैनिक समाचार पत्रों के कुल पाठकों की संख्या 2017 में 40 करोड़ 70 लाख थी जो 2019 की पहली तिमाही के अंत तक बढ़कर 42 करोड़ 50 लाख हो चुकी थी। इन पाठकों में सबसे बड़ी संख्या हिंदी के पाठकों की है। इस सर्वेक्षण के अनुसार भारतीय पाठकों में से दैनिक अखबार पढ़ने वाले हिंदी पाठकों की संख्या 18 करोड़ 60 लाख थी जबकि शेष सभी भारतीय भाषाओं के कुल पाठक 21 करोड़ 10 लाख और अंग्रेजी के 3 करोड़ 10 लाख थे। सर्वे में पाया गया कि सभी श्रेणियों में पाठकों की संख्या निरंतर बढ़ रही है।

समाचार पत्रों की तरह पत्रिकाओं के पाठकों की संख्या में भी वृद्धि दर्ज की गई। यह 2017 के 8 करोड़ 70 लाख से बढ़कर 9 करोड़ हो गई। सर्वेक्षण दिखाता है कि समाचारपत्रों के ऑनलाइन संस्करणों के पाठक भी बढ़ रहे हैं। 2017 में समाचार पत्रों के कुल पाठकों में से डिजिटल संस्करण पढ़ने वाले लोगों का अनुपात 4 प्रतिशत था जो 2019 में बढ़कर 5 प्रतिशत हो गया। इंटरनेट की बढ़ती हुई उपलब्धता और लोकप्रियता को प्रतिबिंबित करने वाले आँकड़े बताते हैं कि 2017 में इंटरनेट का उपयोग करने वालों का अनुपात 19 प्रतिशत था जो 2019 की पहली तिमाही के अंत तक 24 प्रतिशत हो गया। लेकिन प्रिंट मीडिया और इंटरनेट उपयोग करने वाले पाठकों की हर श्रेणी की संख्या में भी वृद्धि जारी है। इंटरनेट के मामले में रोचक बात यह है कि ग्रामीण इलाकों में इंटरनेट की अपेक्षाकृत कम उपलब्धता के बावजूद इंटरनेट इस्तेमाल करने वाली कुल भारतीय आबादी का ग्रामीण हिस्सा शहरों के बराबर यानी 50 प्रतिशत था। लेकिन रोचक बात यह है कि कागज पर छपने वाले समाचार पत्रों का सर्कुलेशन ग्रामीण इलाकों में लगातार बढ़ रहा है। हालाँकि इंटरनेट और डिजिटल मीडिया का बढ़ता प्रसार प्रिंट मीडिया के लिए लगातार चुनौती बनता जा रहा है लेकिन पिछले कुछ साल की स्थिति को देखते हुए कहा जा सकता है ऐसे संकट के आसार फिलहाल उतने गंभीर नहीं हैं जैसा आज पश्चिमी देशों में दिख रहा है।

भारत में प्रिंट मीडिया और न्यूज-टीवी की चुनौती

1990 वाले दशक में जब न्यूज-टीवी सरकारी दूरदर्शन के एकाधिकार से मुक्त हुआ तब अचानक ही दिन भर खबरें देने वाले प्राइवेट न्यूज चैनलों की भरमार होने लगी। 1990 वाले दशक में सन टीवी और जी टीवी द्वारा की गई शुरुआत के बाद स्टार न्यूज, आज तक, जैन टीवी, सहारा टीवी, टीवी-18 और बीबीसी, सीएनएन तथा सीएनबीसी जैसे नामी-गिरामी विदेशी न्यूज-टीवी चौनेलों ने 1995-96 के आते-आते काफी गति पकड़ी और देखते-देखते कई चौनेलों पर समाचार परोसे जाने की एक नई होड़ शुरू हो गई।

साभार : https://www.samachar4media.com/vicharmanch/an-article-on-journalism-written-by-senior-journalist-punya-prasun-bajpai-10288.html

नए न्यूज चौनेल शुरू होने का एक असर यह हुआ कि प्रिंट मीडिया के पत्रकारों द्वारा न्यूज-टीवी की ओर पलायन ने एक नई गति पकड़ ली। उन दिनों इन चौनेलों की बढ़ती लोकप्रियता को देखकर मेरी पत्रकार बिरादरी को, खासकर दैनिक और साप्ताहिक पत्रों में काम करने वाले लोगों को यह डर सताने लगा था कि दिन भर रंग-बिरंगी और असली फुटेज के साथ चीख-चीखकर परोसी जाने वाली खबरें देखने के बाद क्या अखबार के पाठक में अगली सुबह वही बासी खबरें पढ़ने की इच्छा बची रहेगी? अगले वर्षों में न्यूज-टीवी का व्यापक स्तर पर प्रसार जारी रहा। तब वर्ष 2000 में भारतीय पत्रकार बिरादरी के सबसे बड़े संगठन और ट्रेड यूनियन नेशनल यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट्स (इंडिया), एनयूजेआई,में स्वर्गीय आरएन प्रभु, श्री श्याम खोसला, श्री बलबीर पुंज, श्री केएन गुप्ता और स्व. महेश्वर दयालु गंगवार जैसे मेरे वरिष्ठ सहयोगियों और मित्रों की आपसी चर्चा में यह अध्ययन करने का फैसला किया गया कि न्यूज-टीवी के इस फैलाव का असर प्रिंट मीडिया पर कैसा पड़ रहा है। इस अध्ययन की जिम्मेदारी मुझ पर डाली गई।

प्रिंट मीडिया पर न्यूज टीवी के प्रभाव को समझने के लिए यह देखना जरूरी था कि इस दौरान प्रकाशित होने वाले अखबारों और पत्रिकाओं की संख्या और उनके पाठकों की संख्या पर क्या असर पड़ा है। भारत में प्रिंट मीडिया के प्रकाशनों के पंजीकरण का काम सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय का 'रजिस्ट्रार ऑफ न्यूज पेपर्स ऑफ इंडिया' (आरएनआई) देखता है। आरएनआई के आंकड़ों के विश्लेषण के परिणाम बहुत चौंकाने वाले थे। अध्ययन में हमने पाया कि न्यूज टीवी चैनलों की संख्या और दर्शकों में उनकी लोकप्रियता बढ़ने के साथ-साथ न केवल प्रकाशित होने वाले अखबारों और पत्रिकाओं की संख्या भी बढ़ रही थी, बल्कि उनके पाठकों की संख्या में भी लगातार बढ़ोतरी हो रही थी। हमने पाया कि 1996 में जब न्यूज टीवी चौनेलों के फैलाव ने गति पकड़ी तब तक भारत में प्रकाशित होने वाले कुल प्रकाशनों की संख्या 39,149 थी जो हर साल बढ़ते हुए 1999 तक के चार वर्षों में 46,655

हो गई। यानी इस दौर में दैनिक और साप्ताहिक पत्रों की संख्या में 19.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इनमें से दैनिक अखबारों की संख्या 1996 के 4,680 से बढ़कर 1999 में 5,157 हो गई। यह वृद्धि 10.2 प्रतिशत थी जबकि साप्ताहिक पत्रों ने 14,300 से बढ़कर 16,872 (18 प्रतिशत) वृद्धि दर्ज की। इससे भी ज्यादा चौंकाने वाली बात यह उभरकर सामने आई कि इन चार वर्षों में जब न्यूज-टीवी चैनलों की संख्या तेजी से आगे बढ़ रही थी उस समय उनके साथ-साथ पत्र-पत्रिकाओं की पाठकों की संख्या में भी भारी वृद्धि हुई। 1996 में दैनिक समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के पाठकों की कुल संख्या 8 करोड़ 94 लाख थी जो 1997 में 10 करोड़ 57 लाख, 1998 में 12 करोड़ 78 लाख और 1999 में 13 करोड़ 1 लाख हो गई। यानी चार साल में 45.5 प्रश की वृद्धि। ये आँकड़े यह दिखाने के लिए काफी हैं कि भारत में न्यूज-टीवी के बढ़ते प्रसार के साथ-साथ प्रिंट मीडिया के प्रकाशनों और पाठकों की संख्या भी लगातार बढ़ी है। इसका एक ही अर्थ है कि टीवी पर उस दिन के समाचारों को देखने के बाद भारतीय दर्शक में समाचारों को और विस्तार से जानने और उनसे जुड़े विषयों को संपादकीय टिप्पणियों और लेखों के माध्यम से समझने की जिज्ञासा बढ़ी है, घटी नहीं। यानी दुनिया के दूसरे कई देशों के मुकाबले भारतीय पाठकों के मन में छपे हुए समाचार और सामग्री के प्रति आकर्षण और आस्था दोनों कायम हैं।

प्रिंट मीडिया की बढ़ती लोकप्रियता

भारत में प्रकाशित दैनिक, साप्ताहिक और उनका सर्कुलेशन

(स्रोत: रजिस्ट्रार ऑफ न्यूजपेपर्स ऑफ इंडिया)

वर्ष	1996	1997	1998	1999	1996 से 1999 वृद्धि(%)	2016	2018
कुल प्रकाशन	39,149	41,705	43,828	46,655	19.2 %	110,851	118,239
दैनिक	4,680	4,719	4,890	5,157	10.2 %	16,136	17,573
साप्ताहिक	14,300	14,743	15,645	16,872	18 %	94,715	100,666
कुल सर्कुलेशन (लाख प्रतियाँ)	894.3	1057	1278	1301	45.5 %	3145	4300.66
स्रोत: आर एन आई							

रोचक बात यह है कि आज से बीस साल पहले किए गए हमारे इस अध्ययन के बाद आज भी यह क्रम जारी है। आरएनआई के 2016 और 2018 के आँकड़े दिखाते हैं कि भारत में प्रकाशनों की कुल संख्या क्रमश: 1 लाख 10,851 और 1 लाख 18,239 थी। यानी 19 साल के इस अंतराल में भारत में रजिस्टर्ड समाचार पत्रों और पत्रिकाओं की संख्या 253 प्रतिशत (ढाई गुणा) हो गई है। इनमें दैनिक समाचार पत्रों की संख्या 2016 में बढ़ते-बढ़ते 16,136 और 2018 में 17,573 हो गई। अर्थात यह 340.7 प्रतिशत (लगभग साढ़े तीन गुणा) हो गई। इसी अवधि में साप्ताहिक पत्रिकाओं की संख्या 2016 में 94,715 और फिर 2018 में 1 लाख 666 हो गई। यानी 596.6 प्रतिशत जो लगभग 6 गुणा है। महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रकाशन उद्योग की सही हालत दिखाने वाले पाठकों की कुल संख्या भी लगभग इसी अनुपात में बढ़ी। 2016 में दैनिक और साप्ताहिक पत्रों के पाठकों की संख्या 31 करोड़ 45 लाख और 2018 में 43 करोड़ 66 हजार हो गई। जिसका अर्थ है 1999 के मुकाबले यह बढ़कर 330 प्रतिशत यानी सवा तीन गुणा से भी ज्यादा पाठक। ये आँकड़े भारत में प्रिंट मीडिया के प्रति पाठक की रुचि बनी हुई है और न्यूज-टीवी फिलहाल उसके लिए गंभीर चुनौती नहीं है।

हालाँकि मीडिया पर नजर रखने वाले कई विशेषज्ञों का मानना है कि पिछले कुछ वर्षों में समाचार पत्र और पत्रिकाओं के पाठकों की संख्या बढ़ने का कारण यह है कि अधिकांश न्यूज टीवी चैनलों में कानफोड़ू चीख पुकार, तू-तू मैं-मैं और सेंसेशनल बनने की होड़ में समाचारों और विषयों का स्तर इतना गिर चुका है कि ठोस समाचारों और गंभीर विश्लेषण के लिए प्रिंट मीडिया में उनके दर्शकों की आस्था बढ़ने लगी है। इस राय में अतिशयोक्ति तो हो सकती है लेकिन प्रिंट मीडिया के लिए शुभ समाचार यह है कि न्यूज-टीवी ने प्रिंट मीडिया के पाठकों में समाचारों और विश्लेषण के प्रति उत्सुकता को और बढ़ाया है।

बढ़ती साक्षरता का प्रभाव

लेकिन थोड़ा गहरा उतरने पर पता चलता है कि भारत में प्रिंट मीडिया की लोकप्रियता के कई और कारण भी हैं। इनमें से सबसे बड़ा कारण है भारत के हिंदी क्षेत्रों में शिक्षा और साक्षरता में सुधार जिसके कारण अखबार पढ़ सकने वाले लोगों की संख्या में बहुत भारी वृद्धि हुई है। इस क्रम को आगे बढ़ाने में समाज में लगातार बढ़ रही राजनीतिक जागरूकता और लोकतंत्र के विकास ने सोने पर सुहागे का काम किया है। आम नागरिक के आर्थिक स्तर में सुधार के कारण मूल आवश्यकताओं से आगे जाकर अपनी रुचि की चीजों पर पैसा खर्च करने की उसकी क्षमता और परिवार के बच्चों को जागरूक बनाने की इच्छा ने भी अखबार के प्रति लोगों की रुचि को बढ़ाया है। इसके अलावा न्यूज टीवी के भारी फैलाव के बावजूद छपे हुए शब्द में भारतीय मानस की आस्था ने भी समाचार पत्रों के फैलाव में खासा योगदान दिया है।

छपाई टेक्नोलॉजी और डिजिटल क्रांति का असर

खबरों और अखबार के लिए आम नागरिक की बढ़ती भूख को शांत करने में पिछले लगभग चार दशक में जो योगदान टैक्नोलॉजी ने दिया है उसे ऐतिहासिक, बल्कि युग प्रवर्तक कहा जा सकता है। 1980 वाले दशक के शुरू में प्रकाशन उद्योग में कंप्यूटर के प्रवेश ने समाचार पत्रों और पत्रिकाओं की छपाई में जिस तरह का क्रांतिकारी परिवर्तन किया है उसने भारतीय प्रकाशन उद्योग के पूरे चरित्र और उसके प्रभाव क्षेत्र का कायापलट कर

दिया है। एक-एक अक्षर या एक-एक लाइन की कंपोजिंग करने, गैली बनाने, प्रूफ रीडिंग के बाद गलतियाँ सुधारने और उसके बाद पूरे पृष्ठ का फ्लांग तैयार करके एक-एक पृष्ठ को पिघले सिक्के में ढालने और रोटरी मशीन पर चढ़ाकर अखबार छापने की दुरूह और समय खपाने वाली टेक्नोलॉजी देखते-देखते अतीत की कहानी बनकर रह गई है। कंप्यूटर पर आधारित पेजमेकिंग की डिजिटल टेक्नोलॉजी के आने के बाद समाचार पत्र का प्रकाशन एक नए युग में प्रवेश कर चुका है। इस परिवर्तन ने भले ही लाइनो आपरेटर और प्रूफ रीडर जैसे कई रोजगार खत्म कर दिए लेकिन खूबसूरत डिजाइनिंग और द्रुत गति से अखबार के पूरे पन्ने को प्रिंटिंग मशीन पर चला देने की सुविधा ने अखबारों का कलेवर और गति दोनों को बदल डाला है। छपाई से कुछ मिनट पहले तक आए समाचारों को भी नए संस्करण में शामिल कर सकने और चलती छपाई को रोककर किसी महत्वपूर्ण खबर को शामिल कर पाने की नई क्षमता ने समाचार पत्रों के बीच ताजा समाचार की प्रतिस्पर्धा को भी नया आयाम दे दिया है।

नई टेक्नोलॉजी ने अखबार के एक ही केंद्र से एक साथ कई शहरों के अलग-अलग संस्करण तैयार करना बहुत सुगम बना दिया है। इंटरनेट के माध्यम से इन संस्करणों के पृष्ठों को देश भर में फैले कई कार्यालयों में हाथों हाथ भेजना और वहां के स्थानीय पृष्ठों को उसमे जोड़कर स्थानीय संस्करण छाप लेना अब सामान्य बात हो गई है। इस टेक्नोलॉजी से दूरस्थ शहरों के स्थानीय संस्करणों को भी राष्ट्रीय स्वरूप देना संभव हो गया है। इसी बदलाव का परिणाम है कि भारत में मल्टी-एडिशन अखबारों की भरमार हो गई है। उदाहरण के लिए भारत का सबसे ज्यादा बिकने वाला 'दैनिक जागरण' देश के 11 राज्यों से अपने 37 संस्करण प्रकाशित करता है। इसी तरह दैनिक भास्कर हिंदी, मराठी और गुजराती में 12 राज्यों से 65 संस्करण प्रकाशित करता है जबकि अंग्रेजी के टाइम्स आफ इंडिया के 50 और द हिंदू के 11 संस्करण प्रकाशित होते हैं।

अंग्रेजी का गैर आनुपातिक दबदबा

भारत दुनिया के उन गिने-चुने देशों में है जहाँ अपनी समृद्ध और विकसित भाषाओं के बावजूद एक विदेशी भाषा का राज चल रहा है। यह मात्र संयोग नहीं है कि इस श्रेणी में आने वाले सभी देश उपनिवेशवादी गुलामी से मुक्त हुए देश हैं और वहाँ की शिक्षा और राजकाज आज भी वापस जा चुके विदेशी शासकों की भाषा में चल रहे हैं। और यह स्थिति इस तथ्य के बावजूद है कि इन देशों की अपनी भाषाएँ समृद्ध हैं और विदेशी भाषा पढ़ने वाले लोग स्थानीय भाषाएँ पढ़ने और जानने वालों के मुकाबले बहुत कम हैं।

आईआरएस चार्ट-1: भारत के चोटी के 20 दैनिक समाचार पत्रों की दैनिक पाठक संख्या (20119)- स्रोत:इंडियन रीडरशिप सर्वे -2019

INDIAN READERSHIP SURVEY

TOP 20 DAILIES : ALL INDIA : AIR

READ YESTERDAY (AVERAGE ISSUE READERSHIP)

PUBLICATIONS	IRS 2017	IRS 2019 Q1
Dainik Jagran	20241	20258
Dainik Bhaskar	13872	15395
Amar Ujala	11166	10183
Malayala Manorama (Daily)	9383	9758
Rajasthan Patrika	7586	7543
Eenadu	7016	6727
Daily Thanthi	6971	6572
Mathrubhumi	6355	6443
Lokmat	5963	6085
The Times Of India	5080	5646

PUBLICATIONS	IRS 2017	IRS 2019 Q1
Gujarat Samachar	4703	4477
Prabhat Khabar	3559	3439
Ananda Bazar Patrika	3847	3436
Sandesh	3554	3384
Punjab Kesari	3252	3323
Daily Sakal	2946	3092
Patrika	3314	3038
Sakshi	3348	2988
Dinamalar	3135	2886
Vijay Karnataka	2554	2669

DATA FOR HINDUSTAN AND HINDUSTAN TIMES NOT REPORTED PENDING REVIEW

Figs in 000s (12+ Years); Urban+Rural

nielsen

MRUC

आईआरएस चार्ट-2: भारत के चोटी के 10 अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्रों की दैनिक पाठक संख्या (20119)- स्रोत:इंडियन रीडरशिप सर्वे -2019

INDIAN READERSHIP SURVEY

TOP 10 DAILIES : ALL INDIA : ENGLISH

READ YESTERDAY (AIR READERSHIP)

ENGLISH	IRS 2017	IRS 2019 Q1
The Times Of India	5063	5646
The Hindu English	1568	1635
The Economic Times	938	983
Mumbai Mirror	662	800
The Telegraph	498	487
The Indian Express	426	434
The New Indian Express	421	432
Deccan Chronicle	420	422
Mid Day	301	374
Mint	299	342

DATA FOR HINDUSTAN TIMES NOT REPORTED PENDING REVIEW

Figs in 000s (12+ Years); Urban+Rural

nielsen

MRUC

2019 के नवीनतम भारतीय पाठक सर्वेक्षण (आईआरएस) को देखने से पता चलता है कि भारत के सबसे अधिक लोकप्रिय और सबसे ज्यादा पढ़े जाने वाले पहले नौ दैनिक अखबारों में से एक भी अखबार अंग्रेजी का नहीं है। (कृपया आईआरएस का चार्ट-1 देखें)। पहले 20 दैनिक अखबारों में अंग्रेजी का केवल एक अखबार (टाइम्स ऑफ इंडिया) है जिसका स्थान 10वां है और जिसकी पाठक

संख्या (56.46 लाख) पहले स्थान वाले हिंदी अखबार दैनिक-जागरण (2 करोड़ 3 लाख) के मुकाबले मात्र एक चौथाई है। केवल इतना ही नहीं, हिंदी के अकेले दैनिक जागरण के दैनिक पाठकों की संख्या अंग्रेजी के सबसे ज्यादा बिकने वाले पहले 7 दैनिक अखबारों की कुल दैनिक पाठक संख्या के मुकाबले लगभग दुगनी है। (आईआरएस चार्ट-2)

चोटी के 20 भारतीय दैनिक अखबारों की कुल पाठक संख्या में अंग्रेजी अखबारों की औकात आटे में नमक के बराबर भी नहीं है। 2019 में पहले 20 भारतीय दैनिक अखबारों का कुल सर्कुलेशन 127,342,000 (12 करोड़ 73 लाख 2 हजार) था जबकि इस सूची में एकमात्र स्थान पाने वाले अंग्रेजी अखबार टाइम्स ऑफ इंडिया का केवल 5,646,000 (56 लाख 46 हजार। यानी चोटी के 20 दैनिक अखबारों के कुल पाठकों में अंग्रेजी के पाठक मात्र 4.43 प्रतिशत हैं। आसान शब्दों में अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के पाठकों का अनुपात 1 के मुकाबले 22.55 है। यानी साढ़े 22 गुणा से भी ज्यादा।

केवल इतना ही नहीं, हर तरह के बाजार अध्ययनों में यह सिद्ध हो चुका है कि आज के भारतीय बाजार में भले ही कार हो, कपड़े हों, खाने-पीने का सामान हो या फिर इंश्योरेंस जैसी सेवाएँ, भारत के उपभोक्ता बाजार का सबसे बड़ा खरीदार गैर अंग्रेजी पाठक है। लेकिन क्योंकि भारत के विज्ञापन उद्योग और उसके रेट तय करने वाले विज्ञापन-एजेंसी वालों और कॉरपोरेट बिरादरी पर अभी भी अंग्रेजी बोलने वाले हावी हैं, इसलिए नाममात्र की पाठक संख्या के बावजूद अंग्रेजी अखबारों के विज्ञापन रेट भारतीय भाषाओं के मुकाबले आज भी बहुत ज्यादा है। ऐसा अजूबा केवल भारत में ही हो सकता है कि स्थानीय भाषाओं के मुकाबले नाममात्र की सर्कुलेशन होने के बावजूद भारत के अंग्रेजी अखबारों की न केवल विज्ञापन दरें अप्रत्याशित अनुपात में ज्यादा हैं बल्कि राजनीतिक और सामाजिक विषयों से जुड़े सरकारी फैसलों और बौद्धिक विमर्श पर भी उनका लगभग एकाधिकार बना हुआ है। इसका एक मुख्य कारण यह है कि केंद्र और राज्य सरकारों में नीतियाँ

साभार : https://www.lifewire.com/what-is-web-press-1074624

तय करने वाले और प्रशासनिक फैसले करने वाले वरिष्ठ अफसर, कॉरपोरेट घरानों के वरिष्ठ अधिकारी, विज्ञापन एजेंसियों को चलाने वाले प्रोफेशनल और देश के नेरेटिव पर कब्जा जमाए बैठी बुद्धिजीवी बिरादरी के स्वयंभू नेता केवल अंग्रेजी में सोचते और फैसले लिखते हैं तथा हिंदी और स्थानीय भाषाओं में अनपढ़ हैं। इसे भला गुलामी की मानसिकता नहीं तो और क्या कहा जा सकता है?

प्रिंट मीडिया के सामने नई चुनौतियाँ

यह तो तसल्ली की बात है कि भारत में प्रिंट मीडिया अब तक न्यूज टीवी की आँधी के सामने न केवल मजबूती से टिका हुआ है बल्कि लगातार फल-फूल रहा है। लेकिन कई ऐसी चुनौतियाँ हैं जिनके कारण उसका अस्तित्व और साख दोनों संकट में हैं। इनमें से कुछ चुनौतियाँ भीतरी हैं और कुछ बाहरी। भीतरी चुनौतियों में सबसे बड़ी है भारतीय प्रकाशन उद्योग में पत्रकारिता के परंपरागत प्रोफेशनल मूल्यों और कारपोरेट शैली के व्यापारिक दबावों के कारण पत्रकार स्टाफ और मैनेजमेंट के बीच बदला हुआ समीकरण। अब वे दिन लद चुके हैं जब समाचार पत्र और पत्रिकाओं की हायरार्की में संपादक का स्थान सर्वोच्च और सम्मान वाला होता था। टाइम्स ऑफ इंडिया के गिरिलाल जैन, हिंदुस्तान टाइम्स के बीजी वर्गीज, इंडियन एक्सप्रेस के अरुण शौरी, इलस्ट्रेटिड वीकली के खुशवंत सिंह और जनसत्ता के प्रभाश जोशी जैसे संपादकों के युग में लगभग हर अखबार का संपादक उस अखबार और प्रकाशन घराने की साख का प्रतिबिंब हुआ करता था। वह ऐसा युग था जब लगभग हर प्रकाशन घराने और अखबार का अपना वैचारिक व्यक्तित्व था और देश के बड़े से बड़े राजनेता और अफसरशाह संपादकों और उनकी संपादकीय राय का बहुत सम्मान करते थे। उस दौर में अधिकांश अखबारों के जनरल मैनेजर तथा दूसरे प्रबंध अधिकारी अपने संपादक से समय और अनुमति लेकर ही उनके कमरे में किसी सलाह के लिए जाया करते थे।

संपादक और न्यूज-रूम का अवमूल्यन

लेकिन प्रकाशन घरानों के बीच बढ़ती हुई आपसी गलाकाट व्यापारिक स्पर्धा में अब अखबारों की संपादकीय नीति और पत्रकारिता के स्तर के बजाए उसका सर्कुलेशन और विज्ञापन रेवेन्यू प्रमुख वरीयता बन चुके हैं। इस नए वातावरण में अब असली शक्ति सर्कुलेशन मैनेजर

और एडवर्टाइजिंग विभाग के प्रमुख के हाथों में आ चुकी है। अधिकांश समाचार पत्रों में अब संपादक को सर्कुलेशन और विज्ञापन विभाग से निर्देश लेकर संपादकीय नीति और कवरेज नीति तय करनी होती है ताकि प्रतिस्पर्धी अखबारों के साथ सर्कुलेशन और विज्ञापन की होड़ में खड़े रहा जा सके। प्रकाशन घरानों में सत्ताधारियों और बड़े राजनेताओं को खुश रखकर व्यापारिक फायदे उठाने की बढ़ती प्रवृत्ति ने भी संपादक और पत्रकारों की गरिमा को घटाने में योगदान दिया है। और समाचार पत्रों में नियमित पत्रकारों की नियुक्ति की जगह कांट्रेक्ट व्यवस्था लागू करने की नई परंपरा ने तो संपादकों, संवाददाताओं और संपादकीय डेस्क कर्मियों को नौकरी की सुरक्षा के मामले में असहाय बनाकर पूरी पत्रकार बिरादरी के आत्मविश्वास और आत्मसम्मान की जड़ों को हिला डाला है। स्वाभाविक है कि इस नए वातावरण में अखबार की प्रोफेशनल साख के लिए पत्रकारों की सामूहिक रूप से जागरूक रहने की पुरानी परंपरा अब लगभग समाप्त होने के कगार पर है। यही कारण है कि अपने-अपने हितों और अपनी-अपनी नौकरी बचाए रखने के नए वातावरण में पेड-न्यूज जैसी बीमारियाँ गंभीर रूप ले रही हैं।

कांट्रेक्ट सिस्टम और ट्रेड यूनियन का ह्रास

पत्रकारों की इस असहाय स्थिति और देश में नए व्यापारिक वातावरण तथा नौकरियों की सुरक्षा से जुड़े नियम-कानूनों में बदलाव का सीधा असर प्रिंट मीडिया में ट्रेड यूनियन आंदोलन पर पड़ा है। कांट्रेक्ट व्यवस्था में अपनी नौकरी के प्रति चिंतित अधिकांश पत्रकार और प्रेस कर्मचारियों द्वारा ट्रेड यूनियनों से किनारा कर लेने के कारण पत्रकारों की अधिकांश ट्रेड यूनियन या तो ठप हो चुकी हैं या केवल नाममात्र के लिए बनी हुई हैं। जहाँ एक ओर ट्रेड यूनियन के माध्यम से अपने आर्थिक और व्यवसायिक अधिकारों के लिए कर्मचारियों की सामूहिक शक्ति लगभग समाप्त हो गई है वहीं पत्रकारिता के प्रोफेशनल मूल्यों को बनाए रखने के लिए ट्रेड यूनियनों का जो सामूहिक नैतिक दबाव बना रहता था वह अब लगभग पूरी तरह से गायब हो चुका है। यही कारण है कि राडिया टेप कांड जैसी शर्मनाक घटनाओं से जुड़े नामी गिरामी पत्रकार अपनी खुल्लमखुल्ला दलाली का परदाफाश होने के बाद भी पत्रकार बिरादरी के सामूहिक नैतिक दबाव से न केवल मुक्त रहे बल्कि आज भी छुट्टा घूम रहे हैं और देश को हर विषय पर नसीहतें दे रहे हैं। इस तरह के कांडों ने समाज में पूरी भारतीय पत्रकार बिरादरी के नाम पर बट्टा लगाया है। लेकिन दुर्भाग्य से मीडिया में एक भी ऐसा सामूहिक मंच नहीं है जो इस गिरावट को रोकने और पत्रकार बिरादरी के सम्मान को पुनर्स्थापित करने की जिम्मेदारी निभाने की ताकत रखता हो।

डिजिटल प्लैटफॉर्म पर समाचार मीडिया

भारतीय प्रिंट मीडिया के सामने एक बाहरी संकट भी है जो डिजिटल समाचार मीडिया के रूप में उसके मालिकों, पत्रकारों, गैर पत्रकार कर्मचारियों और उनके आर्थिक हितों के लिए नई चुनौती बन कर उभरा है। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत के 50 करोड़ स्मार्टफोन धारक अपने सर्फिंग समय का तीन-चौथाई हिस्सा समाचार और मनोरंजन में खर्च करते हैं। इस सर्वेक्षण के आँकड़ों की सटीकता को भले ही चुनौती दी जा सकती है लेकिन इसमें शक नहीं कि स्मार्टफोन हाथ में आने के बाद आम भारतीय पाठक ताजा समाचारों के लिए डिजिटल मीडिया को गंभीरता से लेने लगा है। इसके पीछे एक बड़ा कारण आम भारतीय के मानस पर राजनीति का गहरा प्रभाव और दैनिक राजनीति में उसकी गहरी रुचि है। स्मार्टफोन की लोकप्रियता के साथ डिजिटल दुनिया में समाचार पोर्टलों की बेतहाषा वृद्धि भारत के समाचार पाठक की इसी रुचि को दिखाती है। स्मार्टफोन धारकों की आंखों की पकड़ में आने की इस होड़ में पिछले थोड़े से वर्षों में कितने हजार समाचार पोर्टल लांच हो चुके हैं, इसका अनुमान लगाना मुश्किल है। इस सुनामी का एक मुख्य कारण यह है कि इंटरनेट के प्रसार ने सूचना और टेक्नोलॉजी की उपलब्धता का जिस विशाल स्तर पर जनतंत्रीकरण किया है उसने एक सामान्य व्यक्ति को भी अपना पोर्टल लांच करने और उसे चलाते रहने की वही सुविधा उपलब्ध करा दी है जो देश या दुनिया के सबसे अमीर व्यक्ति को उपलब्ध है। इंटरनेट पर पोर्टल लांच करने की इस सुविधा ने डिजिटल प्रकाशन के रास्ते से परंपरागत प्रकाशन के लिए आवश्यक छपाई मषीन, कागज, बिल्डिंग, कर्मचारी, दफ्तर और वितरण का वह सारा तामझाम हटा दिया है जिसके कारण समाचार पत्र प्रकाशन उद्योग पहले केवल उन लोगों और व्यापारिक घरानों तक सीमित था जो इसके लिए बड़ी पूँजी लगाने की हैसियत रखते हैं।

पाठक के लिए एक नई सुविधा यह हो गई है कि दैनिक समाचार पत्र के लिए अगली सुबह तक इंतजार करने के बजाए उसे अब डिजिटल समाचार पोर्टल और वेब-मैग्जीन के माध्यम से हाथों-हाथ नए समाचार और विश्लेषण मिलने लगे हैं। समाचारों को पाठक तक पहुँचाने की इस होड़ में प्रिंट मीडिया से जुड़ा लगभग ऐसा हर समाचार पत्र और प्रकाशन घराना भी शामिल हो चुका है जो पाठकों के बीच हमेशा लोकप्रिय रहे हैं। इसलिए आज किसी भी समाचार पत्र के पोर्टल पर उसके ताजा अंक के साथ पिछले अंकों को भी आराम से देखा जा सकता है। इस काम के लिए प्रकाशन घरानों ने अपने समाचार पत्रों

पत्रकारों की इस असहाय स्थिति और देश में नए व्यापारिक वातावरण तथा नौकरियों की सुरक्षा से जुड़े नियम-कानूनों में बदलाव का सीधा असर प्रिंट मीडिया में ट्रेड यूनियन आंदोलन पर पड़ा है। कांट्रेक्ट व्यवस्था में अपनी नौकरी के प्रति चिंतित अधिकांश पत्रकार और प्रेस कर्मचारियों द्वारा ट्रेड यूनियनों से किनारा कर लेने के कारण पत्रकारों की अधिकांश ट्रेड यूनियन या तो ठप हो चुकी हैं या केवल नाममात्र के लिए बनी हुई हैं

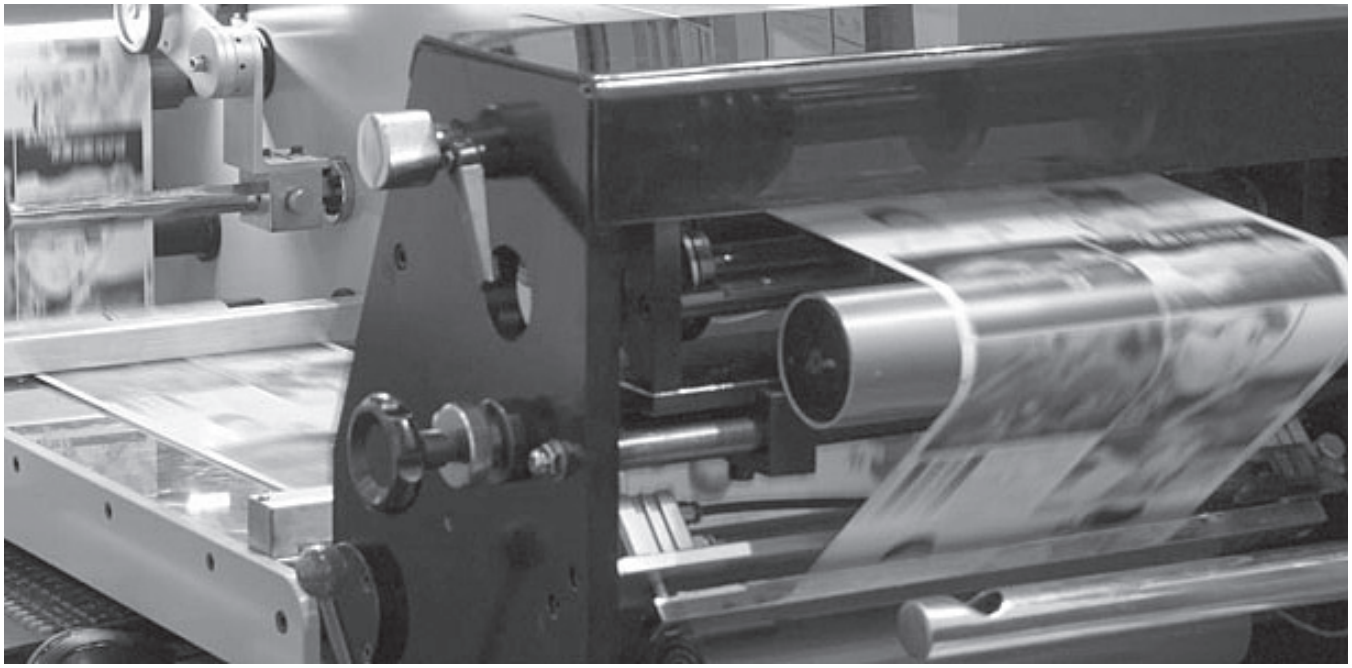

साभार : https://www.carel.com/blog/-/blogs/why-does-the-printing-industry-require-humidity-control-

के ऑनलाइन संस्करण प्रकाशित करना भी शुरू कर दिया है जिन पर पाठक दिन भर नवीनतम खबरें और विश्लेषण पढ़ सकते हैं।

डिजिटल मीडिया का दुरुपयोग

लेकिन इस सुविधा के अगर लाभ हैं तो इसके खतरे भी छोटे नहीं हैं। समाचार पोर्टल लांच करने की इस होड़ में अच्छे और बुरे सभी तरह के तत्व और ताकतें शामिल हो चुकी हैं। इनमें यदि कुछ गंभीर और वरिष्ठ पत्रकारों के निजी न्यूज पोर्टल भी देखे जा सकते हैं तो ऐसे न्यूज पोर्टलों की भी संख्या बेहिसाब है जो किसी खास राजनीतिक, सांप्रदायिक, विदेशी और यहाँ तक कि आतंकवादी शक्तियों के एजेंडे को लेकर मैदान में उतरे हुए हैं। ऐसे में गंभीर समाचारों के साथ-साथ शरारती एजेंडा वाले और खुराफाती इरादे से जारी किए जाने वाले झूठे यानी 'फेक न्यूज' की भी नेट पर भरमार हो चुकी है, जिससे सामाजिक शांति और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा पैदा हो गया है। हाल ही में राजधानी में शाहीन बाग आंदोलन और उसके कारण भड़के सांप्रदायिक दंगों ने फेक-न्यूज के इस खतरे से देश का सीधा आमना सामना करा दिया।

इस सबको देखते हुए प्रिंट मीडिया के इस नए डिजिटल अवतार को लेकर देश में कई मुद्दे गंभीर चर्चा का विशय बने हुए हैं। इनमें डिजिटल मीडिया पर नजर रखने और उसके माध्यम से की जाने वाली खुराफातों पर नियंत्रण लगाने का विषय बहुत गंभीर है। एक ओर समाज का एक बड़ा वर्ग वर्तमान प्रिंट मीडिया कानूनों को नए सिरे से परिभाषित करने और दंतहीन भारतीय प्रेस परिषद (प्रेस काउंसिल आफ इंडिया) के स्थान पर डिजिटल मीडिया पर समुचित नियंत्रण और दंडात्मक शक्तियों वाले एक नए 'मीडिया आयोग' स्थापित करने के पक्ष में है। वहीं दूसरी ओर ऐसे लोगों और संगठनों की भी कमी नहीं है जो ऐसे सुझाव को 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' के खिलाफ एक 'अलोकतांत्रिक' कदम बता रहे हैं। डिजिटल मीडिया को नियंत्रण में रखने के प्रयासों में एक तकनीकी समस्या यह भी है कि भारतीय पाठक को दिग्भ्रमित करने और देश में अशांति फैलाने का काम भारत के भीतर से करने के बजाए बाहर किसी दूसरे देश से ऐसे वेब न्यूज पोर्टल आसानी से चलाए जा सकते हैं जिनके मूल स्रोत को पकड़ पाना और उन्हें भारतीय न्याय प्रक्रिया के दायरे में लाना लगभग असंभव है।

वेब न्यूज पोर्टलों को लेकर एक और गंभीर विवाद शुरू हो चुका है जिसने प्रिंट मीडिया के आर्थिक हितों को बहुत गहरे से प्रभावित किया है। समाचार पत्र प्रकाशित करने वाले प्रकाशन संस्थानों और व्यवसायिक स्तर पर समाचार संकलन करने वाली समाचार एजेंसियों को इस बात से परेशानी हो रही है कि गूगल और फेसबुक जैसे कई डिजिटल प्लैटफार्म उनके लाए हुए समाचारों को अपने प्लैटफार्म पर अपने ग्राहकों को उपलब्ध कराते हैं और इन समाचारों के साथ जारी किए जाने वाले विज्ञापनों की सारी आय खुद हड़प जाते हैं। यह विवाद आस्ट्रेलिया, फ्रांस, स्पेन और भारत समेत कई देशों में तूल पकड़ चुका है। हाल ही में आस्ट्रेलिया सरकार के इस फैसले को लेकर फेसबुक टकराव की मुद्रा में आ गया है कि आस्ट्रेलिया के प्रिंट मीडिया से लिए गए समाचारों के एवज में गूगल और फेसबुक अपनी विज्ञापन आय का एक हिस्सा आस्ट्रेलिया के प्रकाशन घरानों को भी दे।

लेकिन इन सब विवादों और चुनौतियों के बीच भारतीय प्रिंट मीडिया के लिए फिलहाल संतोष की बात यह है कि भारतीय पाठक की रुचि उसमें न केवल बरकरार है बल्कि लगातार बढ़ रही है। अब देखना यह है कि बदलती हुई टेक्नोलॉजी और नए व्यापारिक और सामाजिक बदलावों के बीच प्रिंट मीडिया कितना टिका रह पाएगा।

सिद्धार्थ ज़राबी

भारतीय मीडिया का भविष्य सोशल और डिजिटल ही है

स्मार्टफोन और मोबाइल के जरिये इंटरनेट के उपयोग ने मीडिया बाजार को बिलकुल नया आकार दे दिया है। तथ्यों के आलोक में मीडिया के भविष्य पर एक दृष्टि

“प्रत्येक व्यक्ति को मत प्रकट करने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है। इस अधिकार में बिना हस्तक्षेप के विचार प्रकट करना और संचार के किसी भी माध्यम के जरिये तथा सीमाओं के निरपेक्ष सूचना की खोज, ग्रहण और प्रदान करना शामिल हैं।”

10 दिसंबर, 1948 को अंगीकृत संयुक्त राष्ट्र महासभा की बोलने एवं अभिव्यक्ति की वैश्विक घोषणा।

क्या आप पहले से जानते हैं कि दुनिया भर में फेसबुक का उपयोग करने वालों की सबसे अधिक संख्या भारत में है, कुल 34.6 करोड़? और क्या आप इस तथ्य से अवगत हैं कि 40 करोड़ उपयोगकर्ताओं के साथ भारत व्हाट्सएप का सबसे बड़ा बाजार है? क्या आपने फोटो और वीडियो साझा करने की सेवाएँ देने वाले एप इंस्टाग्राम का उपयोग कभी किया है, जिसके उपयोगकर्ताओं के मामले में भारत दूसरे नंबर पर है? भारत में इसका उपयोग करने वाले करीब 12 करोड़ लोग हैं।

क्या आपके लिए यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि भारत में हर महीने करीब 32.5 करोड़ लोग यूट्यूब का उपयोग करते हैं और यह भी कि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल मीडिया का सर्वाधिक उपयोग किया जाने वाला प्लैटफॉर्म यही है।

भारत में बंद किए जाने के ठीक पहले विडियो साझा करने वाली सोशल नेटवर्किंग सेवा टिकटॉक के करीब 20 करोड़ उपयोगकर्ता थे। यह संयोग ही है कि यह चीन के इसके घरेलू बाजार के बाद सबसे बड़ी संख्या है।

ठहरिए जरा, एक तथ्य और जान लीजिए। यह कि ऑनलाइन व्यावसायिक नेटवर्किंग और नौकरियों की साइट लिंक्डइन के भारत में लगभग 7.2 करोड़ सदस्य हैं, जो अमेरिका के बाद दूसरे नंबर पर और चीन से कहीं अधिक हैं।

सोशल मीडिया और संदेश सेवा प्रदान करने वाले केवल पाँच मुख्य वैश्विक प्लैटफॉर्मों पर भारत के लगभग 1.2 अरब खाते हैं, जो कि भारत की जनसंख्या के लगभग बराबर ही हैं।

मुझे थोड़े और तथ्यों की चर्चा की अनुमति दें। भारत में मोबाइल फोन के 96 करोड़ से अधिक सक्रिय मोबाइल कनेक्शन हैं और इनमें से 75 करोड़ लोग अपने फोन का उपयोग इंटरनेट के लिए करते हैं। यह दोनों ही मामलों में हमारे देश को वैश्विक स्तर पर दूसरा सबसे बड़ा बाजार बनाता है।

प्रिंट, टेलीविजन और वेबसाइट के बाद चौथी पीढ़ी है सोशल मीडिया

परिणामत: भारत एक दशक से कम समय में ही मोबाइल प्राथमिकता के साथ प्लैटफॉर्म वर्चस्व वाले मीडिया बाजार के रूप में उभरा

है। दूसरे शब्दों में कहें तो प्रिंट, टेलिविजन और वेबसाइट के बाद सोशल मीडिया ही मीडिया की चौथी पीढ़ी (फोर जी) है।

स्मार्ट फोन और मोबाइल के जरिये इंटरनेट की सुविधा पाने वाले भारत के लोग मीडिया परिदृश्य में अभूतपूर्व बदलाव ला रहे हैं। भारत में पाठ्य एवं दृश्य-श्रव्य सामग्री की खपत बढ़ती जा रही है, वहीं क्षेत्रीय भाषाओं की सामग्री को आशातीत वृद्धि मिल रही है। इनमें हिंदी, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और बंगाली सबसे ऊपर हैं। वस्तुत: भारत में चार में से तीन उपयोगकर्ता सोशल मीडिया का इस्तेमाल अपनी क्षेत्रीय भाषा में करते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत में मोबाइल इंटरनेट की दरें विश्व की सबसे सस्ती दरों में से एक है।

इन सबका एक अभिप्राय यह भी है कि ग्रामीण क्षेत्रों में मोबाइल इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या शहरी क्षेत्रों की तुलना में अधिक है। इससे डिजिटल विभाजन को कम करने और कथ्य सामग्री के निर्माण, वितरण और उपभोग पर अंग्रेजी भाषी छोटे अभिजात वर्ग की पकड़ को तोड़ने में काफी मदद मिली है।

स्मार्टफोन के साथ मिलकर सस्ते मोबाइल के जरिये इंटरनेट तक पहुँच वह सक्षम शक्ति साबित हुई है जिसने मानवीय उद्यम के सभी पक्षों को नया आकार दिया है। इसने दुनिया भर में और खासकर भारत में समाज, संस्कृति, राजनीति और वाणिज्य के साथ-साथ मीडिया के परिदृश्य को नए सिरे से परिभाषित किया है।

मोबाइल प्राथमिकता के साथ प्लैटफॉर्म वर्चस्व वाला समाचार बाजार है भारत

2019 में हुए एक अध्ययन के अनुसार भारत मोबाइल प्राथमिकता के साथ प्लैटफॉर्म वर्चस्व वाला बाजार बन चुका था, यहाँ तक कि ब्राजील और तुर्की से भी आगे। इस क्रम में अमेरिका और जर्मनी जैसे देश भारत से बहुत पीछे हैं।

रायटर्स इंडिया डिजिटल न्यूज द्वारा किए गए एक अध्ययन में 68 प्रतिशत लोगों ने कहा कि वे ऑनलाइन समाचार जानने के लिए स्मार्टफोन ही उनका मुख्य उपकरण है। रोचक तथ्य यह है कि 31 प्रतिशत लोगों ने यह कहा कि वे ऑनलाइन समाचार जानने के लिए केवल केवल मोबाइल का ही उपयोग करते हैं।

चार्ट 1		
सोशल मीडिया के माध्यम से न्यूज देखने में भारत पहले नंबर पर है		
प्लैटफॉर्म	उपयोगकर्ता (करोड में)	विश्व में भारत का स्थान
फेसबुक	34.6	1
व्हाट्सएप	40..0	1
यूट्यूब	32.5	1
इंस्टाग्राम	12.0	2
ट्विटर	1.9+	3
स्रोत: औद्योगिक आँकड़े, मीडिया रिपोर्ट		

दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष समाचार जानने के लिए 'प्लैटफॉर्मों' के वर्चस्व का है।

रायटर्स द्वारा किए गए एक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मुख्यत: फेसबुक और व्हाट्सएप का ही व्यापक उपयोग होता है। समाचार जानने के लिए 75 प्रतिशत लोग फेसबुक और 82 प्रतिशत लोग व्हाट्सएप का उपयोग करते हैं। समाचार के लिए व्यापक रूप से उपयोग किए जाने वाले अन्य सोशल मीडिया प्लैटफॉर्म हैं - इंस्टाग्राम (26 प्रतिशत), ट्विटर (18 प्रतिशत) और फेसबुक मेसेंजर (16 प्रतिशत)।

इस तरह, यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि भारत में ये सोशल मीडिया प्लैटफॉर्म ही 'समाचारों के ऑनलाइन प्रसार में पूरी तरह केंद्रीय भूमिका' निभा रहे हैं। यह भी कि वे जिस तरह अपरिमित रूप से शक्तिसंपन्न हो चुके हैं, वह संभावनाओं एवं आकार की दृष्टि से इस देश के इतिहास में अभूतपूर्व है।

वहीं शेयर चौट और नीलसन इंडिया द्वारा भारत के अगले अरबों इंटरनेट उपयोगकर्ताओं पर किए गए एक अन्य अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि 73 प्रतिशत इंटरनेट उपयोगकर्ता प्रतिदिन सोशल नेटवर्किंग साइटों का प्रतिदिन उपयोग करते हैं, जिसमें सर्वाधिक देखी जाने वाली सामग्री विडियो होते हैं।

भारत में समाचार पत्रों और टेलीविजन बाजार के आँकड़े इसके विपरीत हैं।

भारत की दर्जनों भाषाओं में 1,10,851 पंजीकृत समाचार पत्र और नियतकालीन पत्रिकाएँ हैं। इसके बाद भी इनकी कुल प्रसार संख्या 24 करोड़ प्रतियों तक सीमित है।

भारत में करीब 20 करोड़ टेलिविजन सेट हैं और अमूमन 17.5 करोड़ केबल एवं डीटीएच कनेक्शन हैं। यह 'प्रसार भारती' के भौमिक टीवी नेटवर्क के अतिरिक्त है, जो भारत की 92 प्रतिशत से अधिक आबादी को अपनी सेवाएँ प्रदान करता है।

चार्ट 2	
भारत में टीवी चैनलों की संख्या	
समाचार	198
सामान्य सामग्री	160
सिनेमा	111
खेल	31
बच्चे	19
अन्य	131
'स्रोत: बार्क	

इस परिवर्तन का वाहक कौन?

मीडिया के इस कायापलट के बीज भारत में इंटरनेट और मोबाइल क्रांति के साथ ही आज से 25 साल पहले ही बो दिए गए थे। (बॉक्स देखें)

यह एक सुस्थापित तथ्य है कि भारत में लोग समाचार अधिकतर स्मार्टफोन या सोशल मीडिया के माध्यम से पढ़ते और देखते हैं। इस प्रकार सोशल मीडिया के उपयोग में तेज गति से यह वृद्धि तो भारत में मीडिया का भविष्य 'पूरी तरह डिजिटल'

स्मार्टफोन और सस्ते मोबाइल के जरिये इंटरनेट का उपयोग वह सक्षम शक्ति साबित हुई है जिसने मानवीय उद्यम के सभी पक्षों को नया आकार दिया है। इसने दुनिया भर में और खासकर भारत में समाज, संस्कृति, राजनीति और वाणिज्य के साथ-साथ मीडिया के परिदृश्य को नए सिरे से परिभाषित किया है

होने की ओर ही संकेत करती है।

ऐसा क्यों है? इसके कई कारण हैं और उनमें सबसे महत्वपूर्ण यह कि सोशल मीडिया प्लैटफॉर्म लोगों को व्यापक दायरे में अपने विचार व्यक्त करने, अपनी आवाज उठाने और अपनी भावनाएँ साझा करने की आजादी देता है। मित्रों के एक पूरे समुदाय के बीच भागीदारी का बोध एवं उनसे त्वरित प्रतिसाद वह पुरस्कार है जो सोशल मीडिया का एक उपयोगकर्ता सहज ही प्राप्त करता है। जानी-मानी हस्तियों का अनुसरण करना, या उनके द्वारा अपना अनुसरण प्राप्त करना तथा मित्रों के ऑनलाइन समुदाय में व्यापक स्वीकृति उपयोगकर्ता को सीधे जुड़ाव का भाव देता है। यह भाव एक चुंबक की भाँति काम करता है और सोशल मीडिया में लोगों का आकर्षण एवं उनकी व्यस्तता बनाए रखता है।

सोशल मीडिया इस दृष्टि से भी बहुत शक्तिशाली है कि यह उबाऊ पाठ और सादे चित्रों से बहुत आगे तक जाता है। इनमें विडियो आख्यान सर्वाधिक लोकप्रिय हैं तथा समाचार के सभी रूपों में सबसे तेज गति से वृद्धि प्राप्त करने वाले यही हैं। एक बार पुनः, इसका श्रेय भी मोबाइल वेब के विकास और सस्ते डाटा को दिया जाना चाहिए। पहले तो वर्षों तक खराब बैंडविड्थ समेत अन्य तकनीकी समस्याओं ने ऑनलाइन समाचार को केवल टेक्स्ट् फॉर्मेट और लो रिजॉल्यूशन फोटो तक ही सीमित रखा। हैंडसेट और नेटवर्क की सेवाओं में आए परिवर्तन ने उच्च गुणवत्ता वाले विडियो दिखाने की दिशा में तेज गति से विकास किया है।

भविष्य

पाठ्य एवं दृश्य-श्रव्य सामग्री के सृजन एवं प्रसार की दृष्टि से सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों की केंद्रीयता पूर्वाभासित भविष्य के लिए भारतीय मीडिया के एक नियामक तत्व की तरह काम करेगी।

यह सच है कि इनमें से अधिकतम बड़े प्लैटफॉर्म वैश्विक और बहुराष्ट्रीय हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि देश केंद्रित नियामक ढाँचे को व्यापक जटिलताओं एवं उन व्यापारिक शक्तियों से निपटना सीखना होगा, जो उनके अपने भूक्षेत्र से बाहर की हैं।

साभार : https://yourstory.com/2016/12/future-of-digital-content-and-media-disruption-in-india

वहीं नीति निर्माताओं के सामने पहली चुनौती यह समझने और स्वीकार करने की है कि भारत में समाचारों की जो कुल खपत है, उसकी 80 प्रतिशत खपत सोशल मीडिया प्लैटफॉर्म्स के जरिए ही होती है।

इस वास्तविकता का सामना सामग्री निर्माता पहले से ही करते आ रहे हैं। भारत की पारंपरिक मीडिया कंपनियाँ, जिनमें प्रिंट और टेलीविजन समाचार और मनोरंजन सामग्री निर्माता भी शामिल हैं, इस बदले परिवेश में अपनी जगह बनाने में जुटी हैं।

संयोग से, यूट्यूब पर विश्व स्तर पर ग्राहकों का सबसे लोकप्रिय चैनल टी-सीरीज है, जो एक भारतीय संगीत और फिल्म निर्माण कंपनी है। इसकी स्थापना स्वर्गीय गुलशन कुमार ने की थी। 16.6 करोड़ से अधिक ग्राहकों वाले टी-सीरीज के पास एक स्वीडिश कॉमेडियन द्वारा संचालित दूसरे सबसे बड़े यूट्यूब चैनल की तुलना में डेढ़ गुना अधिक सबस्क्राइबर हैं।

पारंपरिक मीडिया कंपनियों के लिए तकनीक ही वह तत्व है जो नव-सामान्य को परिभाषित करती है। वहीं तकनीक और मीडिया दोनों के साथ आ जाने से बिजनेस मॉडल और ग्राहकों की अपेक्षाओं दोनों ही में मूलभूत परिवर्तन देखा जा रहा है।

कंटेंट सृजन की लागत के बड़े पैमाने पर लोचरहित होने एवं विज्ञापन राजस्व में गिरावट से उनके वर्तमान व्यापारिक मॉडल पर ही अस्तित्व का संकट गहराने लगा है। डिजिटल से उत्पन्न, प्राथमिक रूप से सोशल तथा तकनीक केंद्रित मीडिया कंपनियों में निवेशकों की भरपूर रुचि के साथ तेज वृद्धि देखी जा रही है। अभी वर्चस्व वाली कंपनियों को मिल-बैठकर देखना होगा यह स्वीकार करना होगा कि स्टार्ट अप कहे जाने वाले नए शुरू हुए उद्यमों में अपरिमित विध्वंसक शक्ति है।

इसका बेहतरीन उदाहरण सब्सक्रिप्शन आधारित नेटफ्लिक्स है जिसमें दर्शक इंटरनेट के माध्यम से बिना किसी विज्ञापन के टीवी शो या फिल्म देख सकते हैं।

2010 में, हॉलीवुड के दिग्गजों ने नेटफ्लिक्स् की महत्वाकांक्षाओं पर प्रकाश डाला, टाइम वार्नर के सीईओ जेफ बेवक्स ने कथित तौर पर कहा कि नेटफ्लिक्स कंपनी उनके व्यवसाय के लिए खतरा नहीं थी।

एक दशक बाद 1 सितंबर 2020 को नेटफ्लिक्स 'बाजार पूँजीकरण' के जरिये दुनिया की सबसे बड़ी मनोरंजन कंपनी बन गई। इस उपलब्धि को हासिल करने में नेटफ्लिक्स को केवल 23 साल लगे!

यही कारण है कि भारतीय मीडिया के भविष्य या भविष्य के मीडिया को समझने के लिए किए गए किसी भी प्रयास से पहले पूरे समाचार जगत को नया आकार देने वाले दो प्रभावी तत्वों इंटरनेट और स्मार्टफोन की भूमिका को स्वीकार करना अति आवश्यक है।

डिजिटल की ओर कूच करने का सबसे ज्यादा असर आज युवा पीढ़ी में देखा जा रहा है। इस प्रक्रिया के तहत वह टेलीविजन

भारत में इंटरनेट और मोबाइल फोन के 25 वर्ष

आज से करीब 25 वर्ष पूर्व भारतीय मीडिया के इतिहास में दो ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ हुई जिन्होनें भारत में मीडिया के एक नये युग की शुरुआत कर दी। उस समय शायद यह किसी को भी ज्ञात न था कि तेजी से बढ़ती तकनीक और आर्थिक सुधारों के लगभग साथ-साथ आ जाने से भारतीय मीडिया में इतनी उथल-पुथल मच जाएगी। यहां तक कि जिन्होंने इस परिवर्तन की अगुवाई की, उन्हें भी भारत जैसे दुनिया के सबसे बड़े और अराजक लोकतंत्र इसके परिणामों का पूर्वानुमान नहीं था।

पहली घटना 31 जुलाई, 1995 को हुई जब कांग्रेस के नेता और तत्कालीन केंद्रीय दूरसंचार मंत्री सुखराम ने बंगाल के उस समय के कम्युनिस्ट पार्टी के मुख्यमंत्री ज्योति बसु को फोन किया। दिल्ली और कलकत्ता के बीच हुई इस बातचीत को भारत के इतिहास में मोबाइल पर हुई पहली फोन कॉल के रूप में दर्ज किया जाएगा।

दूसरी घटना इसके ठीक दो सप्ताह बाद यानी कि भारत के 48वें स्वतंत्रता दिवस के दिन दिल्ली में हुई। भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पीवी नरसिम्हा राव ने उस सुबह देशवासियों को अपने संबोधन में कुछ ऐसा कहा जिसे वर्षों तक याद रखा जाएगा। प्रधानमंत्री के तौर पर अपने आखिरी संबोधन में सटीक हिंदी का प्रयोग करते हुए बहुभाषी राव ने कहा कि आर्थिक सुधारों का उद्देश्य लोगों को सशक्त करना है व यह सुधार गरीबों के पक्ष में ही हैं और इनसे वह गरीबी से बाहर आ पाएंगे।

इसके कुछ घंटों बाद ही मुंबई स्थित विदेश संचार निगम लिमिटेड़ नामक सरकारी कंपनी ने कुछ ऐसा किया जिसे भारत के लोकतंत्र को सशक्त बनाने की ओर एक अहम कदम माना जाता रहा है। बीके सहगल के नेतृत्व में कंपनी ने भारत में इंटरनेट को लांच किया। इसके साथ ही भारत चीन को भी पीछे छोड़कर विश्व में लोगों तक व्यावसायिक रूप से इंटरनेट पहुंचाने वाला चौथा देश बन गया।

और सिनेमा सब कुछ छोड़कर समाचार और मनोरंजन हर तरह की सामग्री के लिए सीधे डिजिटल प्लैटफॉर्म की ओर कूच कर चुकी है। आज भारत के हर मध्यम वर्गीय परिवार में एक टीवी के बरक्स औसतन चार मोबाइल हैंडसेट हाईस्पीड डेटा के साथ उपलब्ध हैं। यह तथ्य अकेले ही समाचार एवं मनोरंजन दोनों ही प्रकार की सामग्रियों के व्यक्तिगत हैंडसेटों पर खपत में वृद्धि तथा पारिवारिक रूप से यह सब देखने से दूरी बनाने की प्रवृत्ति को स्पष्ट कर देता है।

संक्षेप में बात करें तो ये आँकड़े बताते हैं कि सब्सक्राइबर्स, रीडरशिप और कुल दर्शकों के मामले में भारत दुनिया के सबसे बड़े बाजारों में एक है। हालाँकि, प्लैटफॉर्म पावर का अर्थ यह भी है कि सामग्री के कई और निर्माता होने के बावजूद हैं, जिनमें वे स्वतंत्र आवाजें भी शामिल हैं जो कि प्रथमत: और केवल सोशल मीडिया पर ही प्रकाशित होती हैं, वितरण की शक्ति टेक-मीडिया वाली कुछ भीमकाय शक्तियों के पास ही सीमित है।

जहाँ चाइना ने विदेशी मीडिया प्लैटफॉर्म्स के लिए अपने दरवाजे बंद कर रखे हैं, वहीं भारत ने अपने द्वार सभी के लिए खोल रखे हैं। हाल ही में भारत सरकार ने ऑनलाइन समाचारों, सोशल मीडिया और वीडियो स्ट्रीमिंग प्लैटफॉर्मों, जिसमें विदेशी निवेशकों द्वारा फंड किए गए प्लैटफॉर्म भी शामिल हैं, की गतिविधियों पर नजर रखने व उन पर लगाम कसने के लिए नए नियम बनाए हैं। इसके पीछे सरकार ने सभी प्रकार के मीडिया को बराबरी का अवसर देने का हवाला दिया।

निष्कर्षत:, यह स्पष्ट है कि आने वाले समय में बड़े पैमाने पर खपने वाले समाचारों का भविष्य संक्षिप्त, आकर्षक व आसानी से समझ आने वाले शॉर्ट फॉर्मेट वाले विडियो में ही हैं। भविष्य में इन्हें आसानी से समझने वाले प्रारूप में संपादित और वितरित किया जाएगा। इसने ही आज चौथी पीढ़ी के सोशल-फर्स्ट किस्सागो और प्रकाशकों जैसे न्यूज (न्यू इमर्जिंग वर्ल्ड ऑफ जर्नलिज्म) को जन्म दिया है, जो कि अपनी उच्च गुणवत्ता वाली दृश्य सामग्री को प्रदर्शित करने के लिए तकनीक, डाटा और किस्सागोई का उपयोग करते हुए उछलकूद कर रहे हैं।

लोग जो समाचारपत्र पढ़ते हैं, अपना मत अधिकांशत: उन्हीं से प्राप्त करते हैं। इसलिए यदि प्रेस स्वतंत्र हो, तो स्कूलों के भ्रष्टाचार का उतना महत्व नहीं रह जाता। किंतु प्रेस स्वतंत्र नहीं है। लंदन में एक प्रेस की स्थापना में कम से कम एक मिलियन की एक चौथाई का खर्च आता है, इसलिए समाचारपत्रों के स्वामी अमीर लोग होते हैं। और वे अन्य अमीर लोगों के विज्ञापनों पर निर्भर करते हैं। जो संपादक और पत्रकार समाचारपत्र में अमीर लोगों के हितों के विरुद्ध विचार व्यक्त करते हैं, उन्हें बाहर कर उनके स्थान पर उनके सहायकों को बहाल कर लिया जाता है।

– जॉर्ज बर्नार्ड शॉ

मध्यप्रदेश शासन

नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा की सूची में

37 लाख

नये हितग्राही जुड़े

शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

जरूरतमंदों के साथ हर कदम पर है सरकार

- प्रदेश के 25 श्रेणियों के पात्र लगभग 37 लाख हितग्राही जिनके पास राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम की पात्रता पर्ची नहीं है, उन्हें पात्रता पर्ची जारी कर निःशुल्क खाद्यान्न प्रदाय किये जाने का अभियान प्रारंभ किया गया है।
- एक सितम्बर से प्रदेश के ऐसे सभी गरीबों को जिन्हें अभी तक उचित मूल्य राशन नहीं मिल रहा था, अब उन्हें 1 रुपये प्रति किलो में 5 किलो गेहूं, चावल एवं एक किलो नमक का पैकेट प्रतिमाह प्रदान किया जा रहा है।

- कोरोना संक्रमण के दौरान गरीब परिवारों को अतिरिक्त खाद्यान्न उपलब्ध कराने के उद्देश्य से अप्रैल माह से दिया जाने वाला निःशुल्क राशन अब नवंबर माह तक प्रदाय किया जाएगा।
- प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना के अंतर्गत सम्मिलित पात्र हितग्राहियों को अतिरिक्त रूप से अप्रैल 2020 से 5 किलो प्रति हितग्राही निःशुल्क खाद्यान्न और प्रति परिवार 01 किलो दाल दी जा रही है।

हर हितग्राही को खाद्यान्न देने के लिए प्रतिबद्ध

मध्यप्रदेश सरकार

प्रधानमंत्री स्ट्रीट वेंडर आत्मनिर्भर निधि योजना

शहरी पथ विक्रेता ऋण

योजना के अंतर्गत नाई, बांस की डलिया, कबाड़ी वाला, लोहार, पनवाड़ी, मोची, चाय की दुकान, सब्जी भाजी, फूल विक्रेता, वस्त्र विक्रेता, हथकरघा और आईसक्रीम पार्लर सहित 35 व्यवसायों को सम्मिलित किया गया है।

मुख्यमंत्री ग्रामीण पथ विक्रेता ऋण योजना

- ग्रामीण क्षेत्र के लिये योजना प्रारंभ करने वाला पहला राज्य बना मध्यप्रदेश।
- 8 लाख 56 हजार ग्रामीण पथ विक्रेताओं ने कराया इस योजना में पंजीयन।
- 4 लाख 7 हजार 707 प्रकरण सत्यापित।
- 3 लाख 52 हजार 656 प्रकरण स्वीकृत।
- 1 लाख 84 हजार 384 प्रकरण बैंक को अग्रेषित।
- 22 हजार 287 हितग्राहियों को ऋण वितरित

ग्रामीण पथ विक्रेता ऋण

योजना के अंतर्गत केश शिल्पी, हाथठेला चालक, साइकिल रिक्शा चालक, कुम्हार, साइकिल एवं मोटर साइकिल मैकेनिक, बढ़ई, ग्रामीण शिल्पी, बुनकर, धोबी, टेलर और कर्मकार मंडल से संबंधित कामगार लाभ ले सकेंगे।

देश में मध्यप्रदेश नंबर 1

- 378 नगरीय निकायों में 8 लाख 78 हजार 485 स्ट्रीट वेंडर्स का पंजीयन
- अभी तक 4 लाख 53 हजार 885 आवेदन सत्यापित
- 4 लाख 13 हजार 891 स्ट्रीट वेंडर्स को परिचय-पत्र वितरित
- लोन स्वीकृति हेतु बैंकों को 2 लाख 93 हजार 219 प्रकरण प्रेषित
- 1 लाख 67 हजार 315 से अधिक स्ट्रीट वेंडर्स को लोन स्वीकृत
- देश में कुल स्वीकृत प्रकरणों में 47 प्रतिशत से अधिक म.प्र. के
- अब तक 1 लाख 1 हजार 585 स्ट्रीट वेंडर्स को ऋण वितरित

आइये हम सब मिलकर आत्मनिर्भर मध्यप्रदेश बनायें

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2020

हरियाणा सरकार

पारदर्शी प्रशासन से सुशासन

श्री मनोहर लाल, मुख्यमंत्री, हरियाणा

गांववासियों को उनकी सम्पत्ति का मालिकाना हक देने के लिए
'लाल डोरा मुक्त योजना' शुरू
जिसे अब 'स्वामित्व योजना' के रूप में पूरे देश ने अपनाया
अब खरीद-फरोख्त व ऋण लेने का अधिकार मिला

सभी सरकारी योजनाओं का घर पर ही लाभ देने के लिए
'मेरा परिवार-मेरी पहचान'
www.meraparivar.haryana.gov.in पोर्टल की शुरुआत

इस पोर्टल पर **अब तक 60.14 लाख परिवारों का रिकॉर्ड** उपलब्ध

18.81 लाख परिवारों की संरचना की पुष्टि

पारदर्शिता लाने के लिए वाणिज्यिक वाहनों की चैकिंग व पासिंग करने वाले **वाहन निरीक्षक की बॉडी पर कैमरे** लगाए जाएंगे

वाणिज्यिक वाहनों की ओवरलोडिंग रोकने के लिए **सड़कों पर पोर्टेबल धर्मकांटे** लगाए गए

4747 ग्राम पंचायतों में इंटरनेट सेवाओं के लिए वाई-फाई हॉट-स्पॉट लगाए गए

15,311 अटल सेवा केन्द्रों और 117 अंत्योदय केन्द्रों के माध्यम से 39 विभागों की 542 सेवाएं और योजनाएं ऑनलाइन उपलब्ध

सी.एम. विंडो पर **7 लाख से अधिक शिकायतों का समाधान**

ग्राम दर्शन पोर्टल
पारदर्शिता का मंच
6,197 ग्राम पंचायतों का सम्पूर्ण डाटा व विकास परियोजनाओं की सूची उपलब्ध

पारदर्शिता लाने के लिए 70 विभागों और 4 निगमों व 22 उपायुक्त कार्यालयों में **'ई-ऑफिस' से कार्य शुरू**
जल्द ही सभी विभागों में होगा शुरू

कोरोना काल में भी है कामकाज जरूरी
चलो बढ़ायें कदम, बनाकर दो गज की दूरी

सूचना, जन सम्पर्क एवं भाषा विभाग, हरियाणा | www.prharyana.gov.in | @cmohry @DiprHaryana

विजयदत्त श्रीधर

पत्रकारिता का मेरुदंड आंचलिक पत्रकारिता

> यदि समाचारपत्रों में सरकार की आलोचना हुई है, तो इसका मुख्य कारण उसका सुस्त प्रशासन, आर्थिक क्षेत्र में धीमी प्रगति तथा कथनी और करनी में अंतर है। एक स्वतंत्र प्रेस की मेरी अवधारणा सच्चाई का पता लगाना और जनता को बताना है।
>
> -कुलदीप नैयर अनुभवी पत्रकार

भारत जैसे ग्रामप्रधान, कृषिप्रधान देश में आंचलिक पत्रकारिता वस्तुतः पत्रकारिता का मेरुदंड है। उसे लूलों की लाठी, गूँगों की वाणी, सिद्ध होना चाहिए। क्या वह अपनी यह भूमिका निभा पा रही है? एक अनुशीलन

हिंदुस्तान ऐसा विचित्र देश है जिसमें एक साथ दो देश बसते हैं - 'भारत' और 'इंडिया'। दोनों की परिस्थितियाँ और परिवेश एक -दूसरे से सर्वथा भिन्न और रिश्ते भी प्रायः परहेज और अपरिचय के। दोनों की प्राथमिकताएँ, आशाएँ, अभिलाषाएँ, अपेक्षाएँ अलग-अलग हैं। परंतु यह सच प्रकट और किसी हद तक बेशर्मी से भरा हुआ है कि 'इंडिया' का वर्चस्व 'भारत' का शोषण करने वाला है। हक और सपने छीनने वाला है। शासन, प्रशासन, नीतियाँ, योजनाएँ, निवेश सबके सब जनता का खजाना 'इंडिया' पर लुटाने के लिए कमर कसे हुए हैं और 'भारत' इसे बर्दाश्त करने के लिए अभिशप्त है। देश की राजनीति भी भारत-विमुख है। हद तो यह है कि संवेदना और सरोकारों को शब्द देने वाले साहित्य और पत्रकारिता भी प्रायः 'भारत' की ओर से उदासीन हैं। सब के सब 'इंडिया' में मगन हैं। यहीं हमें आंचलिक पत्रकारिता का ध्यान आता है। साहित्य में भी 'राग-दरबारी' या 'मैला आँचल' अपवाद बनकर रह जाते हैं। जबकि राग दरबारी का लंगड़ अभी भी भटक रहा है और मैला आँचल के धतकरम बाढ़ पर हैं।

उपर्युक्त कठोर सच्चाई के साथ-साथ हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि महादेश भारत में पत्रकारिता की शुरुआत अन्य देशों-समाजों से सर्वथा भिन्न परिस्थितियों में हुई। भारत में राष्ट्रीय नवजागरण और पत्रकारिता साथ-साथ चले हैं। नवजागरण आंदोलन का पहला आयाम राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना, दूसरा आयाम फिरंगियों द्वारा भारत के नैसर्गिक संसाधनों की लूट और भारतीय शिल्प-कौशल का गला घोंटने की दुर्नीतियों के खिलाफ संघर्ष करना, तीसरा आयाम समाज सुधार था। चौथा आयाम आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा से समाज को जोड़ना रहा। नवजागरण के नायक और सेनानी जहाँ इन उद्देश्यों के लिए सतत संघर्ष कर रहे थे, वहीं संपादकगण कंधे से कंधा मिलाकर जनचेतना की मशाल जला रहे थे। यहाँ भी भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता और अँगरेजी पत्रकारिता के बीच खाई थी। चंद अपवादों को छोड़कर अँगरेजी प्रेस और तथाकथित मुख्य धारा के अखबार आंदोलन से नकारात्मक दूरी बनाए हुए थे, वहीं भारतीय भाषाई पत्रकारिता अधिकांशतः संघर्षशीलता के साथ थी। इसकी कड़ी कीमत भी चुका रही थी। सन 1947 तक की भारतीय पत्रकारिता में आज जैसा 'भारत' और 'इंडिया' वाला विभाजन नहीं था। यह तो आजादी के बाद पनपी व्याधि है, जो बजट और अवसरों को ज्यादा से ज्यादा हड़पने की प्रवृत्ति के साथ नत्थी है।

जब देश आजाद हुआ, तब तीन-चौथाई आबादी ग्रामों में बसती थी। उनका जीवन कृषि

और कृषि-आधारित कारीगरी एवं कामकाज पर निर्भर था। शहर और शहरी जनसंख्या पच्चीस प्रतिशत से कम थी। आयोजना और विकास का ताना-बाना बुना गया, तब नारा तो ग्रामीण विकास और खेती-किसानी की तरक्की का उछाला गया, परंतु विकास के लाभ और संसाधनों की बौछार शहरी क्षेत्रों की ओर होती रही। शिक्षा, चिकित्सा, सड़क, बिजली, पानी, आवागमन के साधन, आवास, किसानों की आमदनी बढ़ाने के लिए ग्रामीण दस्तकारी को बढ़ावा देने और संसाधनों तथा तरक्की के उपायों को इस तरह नियोजित करने पर ध्यान नहीं दिया गया, जिससे ग्रामीण की आमदनी में इजाफा होता और गाँवों में ही रोजगार की सुनिश्चितता बढ़ती।

शिक्षा और चिकित्सा का स्तर भी इतना उन्नत होता कि न तो रोजगार के लिए और न उच्चस्तरीय सुविधाओं के लिए गाँवों से शहरों की ओर पलायन की प्रवृत्ति को बल मिलता। एक विकट समस्या यह कि पश्चिमी संस्कृति के अंधानुकरण की हवस ने भारतीय संस्कृति की उपेक्षा का वातावरण रचा। जनपदीय संस्कृति और ग्राम्य संस्कृति को पिछड़ा और अविकसित ठहराया जाने लगा। उपेक्षा का बर्ताव किया गया। इन परिस्थितियों ने 'इंडिया' और 'भारत' के बीच बनी खाई को बीते सात दश कों में बढ़ाने का ही काम किया।

अब हम बदलते सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संदर्भों की बात करें तो आंचलिक पत्रकारिता की महत्वपूर्ण भूमिका सामने आती है। सामाजिक सरोकारों के अध्येता प्रखर पत्रकार गणेश मंत्री ने इस विषय पर एक सुचिंतित आलेख में विस्तार से विचार किया है। वे लिखते हैं, "ग्रामीण परिवेश में परिवर्तन का सबसे महत्वपूर्ण सूचक है, साक्षरता का अनुपात, जो उन्नीस सौ इक्यावन की तुलना में तीन गुना बढ़ गया है। साक्षरता बढ़ने से चेतना बढ़ी है और समाचार पत्रों के पाठक भी बढ़े हैं।"[1]

हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि समाचारपत्र गाँव-गाँव पहुँच रहे हैं। यहाँ दृश्य-श्रव्य माध्यमों की भी उपस्थिति का जायजा लें तो रेडियो और टेलीविजन देश के कोने-कोने तक पहुँचे हैं। हर हाथ में मोबाइल ने सोशल मीडिया को घर-घर तक पहुँचा दिया है। दूरस्थ छोटे-छोटे हिस्से ही संचार क्रांति की पहुँच से दूर बचे हैं। उन्नत कृषि ने गाँवों में बड़े किसानों तक धन की आवक बढ़ाई है। तात्पर्य यह कि उदारीकरण से उपजे बाजारवाद के लिए भारत के ग्राम और ग्रामीण अब बड़ा बाजार हैं।

गणेश मंत्री जिस दूसरे परिवर्तन का उल्लेख करते हैं, वह सामाजिक स्तर पर है। वे लिखते हैं, "अब हमारे ग्रामीण समाज में वर्ग वैमनस्य, जातिगत प्रतिद्वन्द्विता, राजनीतिक संघर्ष दिनोंदिन उग्र हो रहा है। जिन जातियों और वर्गों को हमारी पारंपरिक समाज व्यवस्था ने सदैव दबाकर रखा, वे अब राजनीतिक चेतना और आर्थिक परिवर्तन की दोहरी प्रक्रिया से प्रभावित होकर अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुए हैं।"[2]

यहाँ हम चुनाव प्रक्रिया में भागीदारी पर निगाह डालें तो कई चौंकाने वाले तथ्य सामने आते हैं। आजादी के साथ ही भारत में संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली अपनाई गई। बिना किसी भेदभाव के सभी वयस्क नागरिकों को मताधिकार दिया गया। अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए निर्वाचन क्षेत्र आरक्षित किए गए। कालांतर में संविधान में संशोधन कर नगरीय निकायों और पंचायत राज संस्थाओं के लिए भी संवैधानिक प्रावधान सुनिश्चित किए गए। जाहिर है, लोकतांत्रिक प्रक्रिया में व्यापक भागीदारी ने ग्रामीण जनसंख्या और उपेक्षित वर्गों को भी अधिकार चेतना से सम्पन्न किया है। इससे भी आंचलिक पत्रकारिता की संभावना बलवती हुई है।

डा. शिवप्रसाद सिंह का महत्वपूर्ण उपन्यास है 'अलग-अलग वैतरणी'। इस उपन्यास में शहरों वाले इंडिया के द्वारा गाँवों वाले भारत के औपनिवेशिक शोषण पर मार्मिक टिप्पणी की गई है। वे लिखते हैं, "हमारे गाँवों से आजकल इकतरफा रास्ता खुला है, निर्यातक सिर्फ निर्यात, जो भी अच्छा है, काम का है वह यहाँ से चला जाता है। अच्छा अनाज, दूध, घी, सब्जी जाती है। अच्छे मोटे-ताजे जानवर, गाय, बैल, भेड़, बकरे जाते हैं। हट्टे-कट्टे मजबूत आदमी, जिनके बदन में ताकत है, देह में बल है, खींच लिए जाते हैं, पलटन में, पुलिस में, मलेटरी में, मिल में, फिर वैसे लोग जिनके पास अकल है, पढ़े लिखे हैं, यहाँ कैसे रह जाएँगे, वे जाएँगे ही।"[3]

गणेश मंत्री लिखते हैं, ''होने को गरीब शहर में भी हैं, वहाँ भी गंदी बस्तियाँ और झोपड़पट्टियाँ हैं, किंतु शहर का किनारा छोड़ते ही भारतीय गाँव का दरिद्रता का जो महासागर शुरू होता है, उसका कोई अंत नहीं।

दूसरी सुविधाओं की बात छोड़िए, पीने के पानी की सुविधा के लिए तरसते लोग,

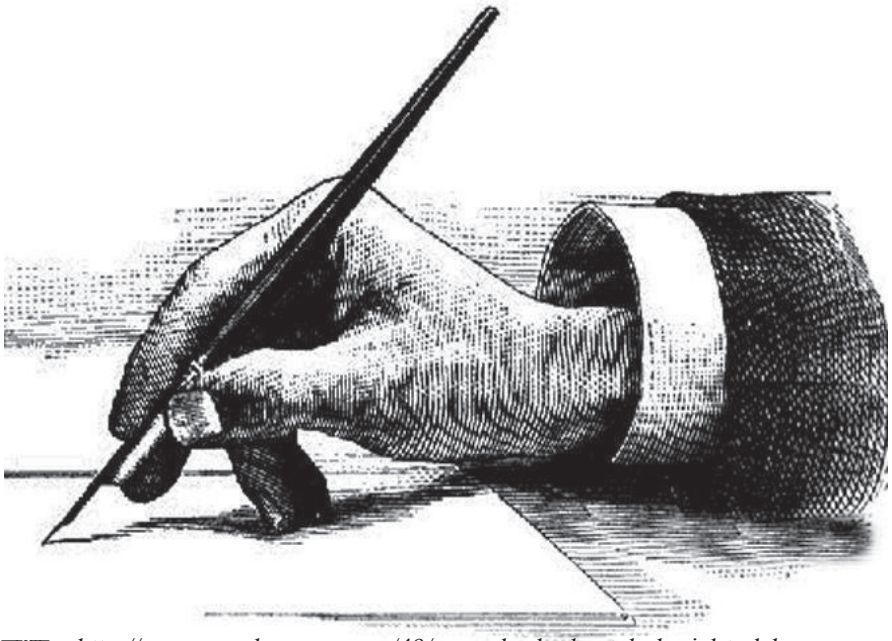

साभार : http://www.nayaharyana.com/49/omprakash-chautala-ke-jel-todakar-ane-vale-bayan-ke-siyasee-mayane

गाँव या छोटे कस्बों में ही बसते हैं। इसी तरह से गाँवों, कस्बों में ऐसा उद्योग-व्यापार भी या तो है ही नहीं अथवा फिर नहीं के बराबर है, जो अपने माल की बिक्री के लिए विज्ञापनों का सहारा ले और छोटे पत्रों को वित्तीय संबल दे।[4]

आंचलिक पत्रकारिता अथवा ग्रामीण पत्रकारिता अथवा जनपदीय पत्रकारिता के आयाम तो व्यापक हैं। संभावना और उपादेयता की भी कमी नहीं है। कुछ फर्क आया भी है। महानगरीय पत्रकारिता या कहें बड़े शहरों पर केंद्रित तथाकथित राष्ट्रीय पत्रकारिता की तुलना में क्षेत्रीय पत्रकारिता का महत्व और प्रभाव बढ़ा है। भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों ने प्रसार संख्या के मामले में अँगरेजी अखबारों को पीछे छोड़ा है। इनमें भी राज्यों की राजधानियों या अन्य प्रमुख केंद्रों से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों ने बढ़त बनाई है।

कभी जिन उत्पादों के विज्ञापनों पर कथित राष्ट्रीय पत्रों का एकाधिकार था, अब बाजार की गरज ने उनका पलड़ा क्षेत्रीय अखबारों की ओर झुकाया है। कार, फ्रिज, एयरकंडीशनर समेत अन्यान्य महँगी उपभोक्ता वस्तुओं का बाजार छोटे नगरों, कस्बों और गाँवों तक फैला है। केवल मुनाफे की भाषा जानने-समझने वाले बाजार ने भारतीय भाषाओं के क्षेत्रीय प्रेस की विज्ञापन सामर्थ्य बढ़ाई है। विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या क्षेत्रीय प्रेस ने ग्रामीण भारत को अपने पृष्ठों में उतना स्थान दिया है, जितने के वो हकदार हैं?

जिस तरह भारत में गाँव और ग्रामीण समाज दुर्लक्षित है, कमोबेश वही स्थिति ग्रामीण पत्रकारिता की है। ग्रामीण पत्रकारिता के सामने इन दिनों उपस्थित सबसे बड़ा सवाल किसानों की आत्महत्या का है। शहरीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति के बावजूद देश की दो-तिहाई आबादी अभी भी गाँवों में है, जो प्रत्यक्षत: अथवा परोक्षत: खेती-किसानी पर निर्भर है। भारत में कृषि और कृषक की संकटग्रस्त भीषण परिस्थिति को पहले पहल राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने गहराई से समझा। सन 1917 के चम्पारण आंदोलन में किसानों की कारुणिक परिस्थिति का प्रत्यक्ष अध्ययन-अवलोकन करने के उपरांत गांधी जी ने राष्ट्रीय एजेंडा में वरीयता दी।

आजादी के बाद की पत्रकारिता पर दृष्टिपात करें तो किसान और किसानी से संबंधित मुद्दों को तुलनात्मक रूप से उपेक्षित ही पाते हैं। महानगरों की नकल करते हुए क्षेत्रीय समाचार पत्र भी साठ प्रतिशत से ज्यादा स्थान राजनीति पर जाया करते हैं। बचे हुए स्थान पर भी फैशन और मनोरंजन को तरजीह दी जाती है। गाँव और खेती किसानी तो भूले-भटके ही स्थान प्राप्त कर पाते हैं

उनके लिए संघर्ष का शंखनाद किया। यह संघर्ष सफल भी हुआ और चंपारन के किसानों को निलहे गोरों के शोषण से मुक्ति मिली। अत्याचारी तिनकठिया प्रथा का अंत हुआ। पत्रकारिता में चंपारन की समस्या को गणेश शंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' और एक दो अन्य पत्रों ने ही उठाया था।

ग्रामीणों और किसानों से जुड़े ऐसे ही एक दूसरे मुद्दे ने मध्य प्रदेश में भी जड़ पकड़ी थी। सन 1920 में सागर जिले के रतौना ग्राम में फिरंगी हुकूमत ने एक अँगरेज कंपनी को यंत्रीकृत कसाईखाना खोलने की इजाजत दी थी। इसमें रोज बड़ी संख्या में गाय-बछड़े काटे जाने थे। ग्रामीण अर्थव्यवस्था और जनजीवन में गोधन की महत्ता को देखते हुए 'कर्मवीर' संपादक माखनलाल चतुर्वेदी ने इस योजना का पुरजोर विरोध किया। 'ताज' के संपादक ताजुद्दीन अहमद और सागर के तरुण पत्रकार भाई अब्दुल गनी ने डटकर उनका साथ दिया। ऐसा प्रबल प्रतिरोध खड़ा किया कि हुकूमत को अपना इरादा बदलना पड़ा।"[5]

आजादी के बाद की पत्रकारिता पर दृष्टिपात करें तो किसान और किसानी से संबंधित मुद्दों को तुलनात्मक रूप से उपेक्षित ही पाते हैं। महानगरों की नकल करते हुए क्षेत्रीय समाचार पत्र भी साठ प्रतिशत से ज्यादा स्थान राजनीति पर जाया करते हैं। बचे हुए स्थान पर भी फैशन और मनोरंजन को तरजीह दी जाती है। गाँव और खेती किसानी तो भूले-भटके ही स्थान प्राप्त कर पाते हैं। हालात यह हैं कि बमुश्किल दस फीसद किसान ही अच्छी आर्थिक स्थिति में कहे जा सकते हैं।

अधिकांश किसान छोटी जोत वाले हैं। जिनके बेहतर जीवन निर्वाह के लिए उनकी खेती पर्याप्त नहीं है। इस बड़े सवाल पर पत्रकारिता प्राय: मौन है। चूँकि किसान देश की आबादी का सबसे बड़ा हिस्सा होने के बावजूद संगठित वर्ग में नहीं आते, इसलिए वे शासन-प्रशासन को अपने हालात पर गौर करने और उन्हें बेहतर बनाने के लिए आवश्यक कदम उठाने हेतु विवश नहीं कर पाते। यह कितने आश्चर्य की बात है कि हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं ने किसानों का ज्वलंत मुद्दा नहीं उठाया, बल्कि अँगरेजी अखबार 'हिंदू' के ग्रामीण मामलों के संपादक पी. साईनाथ ने लगातार देश भ्रमण कर किसानों की समस्याओं का जायजा लिया, मैदानी अध्ययन से तथ्य जुटाए और किसानों की आत्महत्या के त्रासद विषय को चिंता का मुद्दा बनाया। आत्ममुग्ध टेलीविजन मीडिया को फैशनवीक और नाग-नागिन का बदला, भूत-प्रेतों की कहानियाँ जैसे फिजूल के विषयों के कवरेज की तो ललक रहती है, परंतु कर्जग्रस्त किसानों की लाखों की संख्या में पहुँच चुकी आत्महत्याएँ नहीं कचोटतीं।

अखबारों में खेती का उत्पादन और भंडारों की चर्चा तो यदा-कदा होती है, परंतु यह चर्चा नगण्य है कि रसायनों के बेइंतहा इस्तेमाल ने अनाजों, फलों और सब्जियों की पौष्टिकता छीन कर उन्हें जहरीला बना डाला है। जिस उर्वर जमीन पर किसानों को गर्व हुआ करता था, अब वह कैंसर जैसी जानलेवा बीमारियों की जनक बन रही है। वस्तुत: आंचलिक पत्रकारिता के अप्रभावी होने के कारण कभी ऐसा कोई अभियान आकार ही नहीं ले सका कि रासायनिक खादों, कीटनाशकों और खरपतवारनाशकों का किस सीमा तक प्रयोग किया जा सकता है और कहाँ वह लक्ष्मण रेखा आ जाती है, जिसे पार करना घातक सिद्ध होता है। इन्हीं रसायनों से मिश्रित माटी जब खेतों से बहकर नदियों, तालाबों में पहुँचती है तो जलस्रोतों को भी जानलेवा प्रदूषण से ग्रस्त कर डालती है। यदि आंचलिक पत्रकारिता

चौतन्य हो और उसके लिए अखबारों और अन्य मीडिया में पर्याप्त स्थान मिले, तो रासायनिक प्रदूषण के खतरों से किसानों को आगाह किया जा सकता है। ऐसा ही एक गंभीर मुद्दा पराली (नरवाई) जलाने का है। इससे वायु प्रदूषण का संकट बढ़ रहा है। दिल्ली जैसे विशालकाय शहर में जान ही साँसत में पड़ जाती है।

यह भी पत्रकारिता से अपेक्षित प्रभावी निगरानी के अभाव का दुष्परिणाम है कि किसानों की मदद के लिए परिकल्पित सहकारिता अपने उद्देश्यों में बुरी तरह असफल सिद्ध हुई है। बल्कि ऐसे भी उदाहरण मौजूद हैं, जब भ्रष्टाचार और भर्राशाही से ग्रस्त सहकारी तंत्र ने किसानों की बरबादी का सामान जुटाया है।

अव्वल तो गाँव का प्राथमिकता की सूची से गायब होना एक बड़ी मुसीबत है, दूसरे, भारी भ्रष्टाचार और प्रशासनिक अमले की अकर्मण्यता और लापरवाही ने गाँव के जीवन को नरक बनाया है। यदि बुनियादी सुविधाएँ सुनिश्चित और गुणवत्तापूर्ण हों और रोजगार के साधन भी हों तो ग्रामीण आबादी का पलायन रुक सकता है। इससे शहरों पर पड़ने वाले दबाव में भी कमी आएगी। परंतु समाचार पत्रों के पन्नों और टेलीविजन की दृश्यावलियों से यह मुद्दा गायब है।

हमारी पत्रकारिता का एक बड़ा दोष यह भी है कि जब कोई योजना या नीति घोषित होती है अथवा उसकी आधारशिला रखी जाती है, तब मीडिया कीर्तनिए की तरह वाहवाही के भजन गाने लगता है। परंतु कार्यान्वयन के स्तर पर क्या हो रहा है, कैसे हो रहा है, और समाज को लक्षित लाभ मिल पा रहा है या नहीं, इसकी निगरानी कतई नहीं की जाती। जबकि सोशल ऑडिट आंचलिक पत्रकारिता का प्रमुख तत्व होना चाहिए। एक और कमजोरी यह है कि सरकारी तंत्र हितग्राहियों तक उनके हितों और हकों की जानकारी ठीक से नहीं पहुँचाता, क्योंकि जागरूक जनमत से नेताओं-अफसरों को डर लगता है। वास्तव में यह आंचलिक पत्रकारिता की जवाबदारी है कि वह ग्रामीण समाज को सूचित, शिक्षित और प्रेरित करने की भूमिका का मुस्तैदी के साथ निर्वाह करे। हाल के वर्षों

हमारी पत्रकारिता का एक बड़ा दोष यह भी है कि जब कोई योजना या नीति घोषित होती है अथवा उसकी आधारशिला रखी जाती है, तब मीडिया कीर्तनिए की तरह वाहवाही के भजन गाने लगता है। परंतु कार्यान्वयन के स्तर पर क्या हो रहा है, कैसे हो रहा है, और समाज को लक्षित लाभ मिल पा रहा है या नहीं, इसकी निगरानी कतई नहीं की जाती

में सूचना के अधिकार के रूप में पत्रकारिता को ऐसा औजार मिल गया है जो तमाम खामियों को प्रामाणिकता के साथ प्रकट करने में बहुत कारगर सिद्ध हो सकता है। इस तरह आंचलिक पत्रकारिता अधिक धारदार और परिणाममूलक बन सकती है।

ऐसा नहीं है कि आंचलिक पत्रकारिता में कुछ हो नहीं रहा है। महानगरीय अखबारों को अलग-अलग राज्यों के लिए आंचलिक संस्करण निकालने पड़ रहे हैं। राज्यों के आंचलिक समाचार पत्र भी अलग-अलग जिलों के लिए परिशिष्ट निकालने पर विवश हुए हैं। राजनीतिक गहमागहमी और स्थानीय संस्थाओं की गतिविधियों के चलते अखबारों के जिला ब्यूरो में विज्ञप्तियों की बाढ़ आ रही है। उन्हें जैसे-तैसे अखबारों में जगह भी मिल रही है। लेकिन गुणवत्तापूर्ण ग्रामीण पत्रकारिता का अभाव भी अनुभव किया जा रहा है। प्राप्त होने वाली किसी सूचना अथवा दस्तावेज को एक अच्छी खबर में तब्दील करने के लिए जिस कौशल की जरूरत होती है, अच्छी भाषा और शैली की जरूरत होती है, कमोबेश उसका अभाव ग्रामीण पत्रकारिता में महसूस होता है। इस कमी को दूर करने के लिए कम अवधि के प्रशिक्षण शिविर आंचलिक पत्रकारों के हुनर को निखारने में मददगार हो सकते हैं।

ग्रामीण समाज को विज्ञान चेतना से संपन्न करने की जवाबदारी आंचलिक पत्रकारिता की है। जनसामान्य तक सहज सरल शैली और बोधगम्य भाषा में विज्ञान की समझ बढ़ाने का दायित्व विज्ञान संचारकों के साथ-साथ आंचलिक पत्रकारों को भी निभाना चाहिए। समाज में यह विवेक जाग्रत करने का लक्ष्य हो कि वे विज्ञान के वरदानों और अभिशापों के बीच फर्क कर सकें। चाहे समाचार पत्र हों या टेलीविजन अथवा सोशल मीडिया, उन्हें अंधविश्वास, पाखंड, ठगी, धूर्तता के विरुद्ध वातावरण बनाना चाहिए और समाज को सावधान करना चाहिए। यह भी जरूरी है कि लोकसंस्कृति में विद्यमान रीति-रिवाजों और संस्कारों के उस पक्ष को उभारा जाए, जिसमें विज्ञान का पुट है, और सार्थकता भी है।

ग्रामीण पत्रकारिता के क्षेत्र में रायपुर के दैनिक समाचार पत्र 'देशबंधु' का कृतित्व विशेष उल्लेख का अधिकारी है। इस अखबार के दस से अधिक पत्रकारों को प्रतिष्ठित 'स्टेट्समेन ग्रामीण पत्रकारिता पुरस्कार' से सम्मानित किया जा चुका है। इसकी शुरुआत 'गाँव से पहचान कैसे' शीर्षक राजनारायण मिश्र की रिपोर्ट से होती है, जिन्होंने स्थापना के पहले साल ही यह पुरस्कार अर्जित किया। उनके बाद देशबंधु के सत्येन्द्र गुमास्ता, गिरिजा शंकर, जियाउल हुसैनी प्रभृति पत्रकारों को पुरस्कृत किया गया।

आंचलिक पत्रकारिता अथवा कहें कि ग्रामांचलों के कवरेज को बढ़ाकर कोई समाचार पत्र कैसे प्रगति और प्रतिष्ठा के शिखर को छूता है, इसका एक उजला उदाहरण 'राजस्थान पत्रिका' के कर्पूरचन्द कुलिश ने प्रस्तुत किया है। देश पर जब इमरजेंसी थोपी गई, नागरिक आजादी और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का गला घोंटा गया, तब कुलिश जी ने राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों का दौरा प्रारंभ किया। लगभग पूरे राज्य को अध्ययन के दायरे में समेटा और लगातार गाँव के हालात पर रिपोर्ट लिखी और छापी। परिणाम यह हुआ कि 'राजस्थान पत्रिका' गाँव गाँव तक पहुँच गया और शासकों-प्रशासकों के लिए भी आयोजना का ठोस आधार प्राप्त हो गया।

आंचलिक पत्रकारों को किस तरह खबर/रिपोर्ट/रिपोर्ताज/फीचर के लिए विषय उठाना चाहिए इसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

(एक) सत्तर के दश क में होशंगाबाद जिले में तवा नदी पर बड़ा बाँध बनाया गया। ऐसी विशाल योजनाएँ तरक्की और खुशहाली की लोकलुभावन घोषणाओं के साथ आती हैं। सब्जबाग दिखाती हैं। लेकिन सर्वोदय प्रेस सर्विस की एक रिपोर्ट में यह तथ्य उजागर हुआ कि रिसन की समस्या ने किसानों को परेशान कर दिया और बाँध योजना के पहले की तुलना में प्रति एकड़ पैदावार घटी।

(दो) प्रखर पत्रकार विजय मनोहर तिवारी ने मध्य प्रदेश का हरसूद कस्बा बाँध परियोजना में डूबने और वहाँ के बाशिंदों के जड़ों से उखड़ने की पीड़ा का यथार्थ और मार्मिक चित्रण कर विनाश के झंडाबरदार विकासवीरों की आँखें खोलने की चेष्टा की, वहीं यह खौलता हुआ सवाल सबके सामने रखा कि विशालकाय परियोजनाओं के अनुमानित लाभों का एक बड़ा हिस्सा कभी फलीभूत नहीं होता, जबकि विनाश तो पूरा का पूरा हो चुका होता है।

(तीन) सहकारिता की बरबादी की कहानी रचने में बढ़-चढ़कर भागीदारी करने वालों का शायद ही सहकारिता की आत्मा से साक्षात्कार हुआ हो। पश्चिमी निमाड़ के आदिवासी इलाकों में 'ढास प्रथा' विद्यमान है। यदि किसी ग्रामीण का घर बारिश में या अन्य किसी कारण से गिर जाता है, तो गाँव वाले मिल जुलकर उसका पुनर्निर्माण कर देते हैं। ये मकान कच्चे होते हैं। प्रथा यह है कि गाँव के लोग सुबह सवेरे अपने-अपने घर से कुछ खा-पीकर गैंती, फावड़ा, कुदाल, तगाड़ी, सब्बल, कुल्हाड़ी लेकर आ जाते हैं और मकान के काम में जुट जाते हैं। काम समाप्त होने पर शाम को वहीं सहभोज होता है, बस, किसी को मेहनत मजदूरी नहीं दी जाती और घर तैयार हो जाता है।

(चार) निराश्रित पेंशन सहित जितनी कल्याणकारी योजनाएँ चल रही हैं, लापरवाही और भ्रष्टाचार के उतने ही किस्से गूँजते हैं। भावना के स्तर पर एक आदर्श उदाहरण कटंगी से दमोह के बीच स्थित पुरानी गोंड रियासत गुबरा का मिलता है। गुबरा के राजा की यह परंपरा थी कि जब वे रात्रि भोजन के लिए बैठने वाले होते थे, तब गढी के फाटक पर रखे नगाड़े को बजाया जाता था। यह आमंत्रण संदेश होता था गुबरा के उन बाशिंदों के लिए जिन्हें भोजन न मिला हो, वे आएँ और राजा के साथ भोजन ग्रहण करें।

ये किस्से-कहानियों की बातें नहीं हैं। ये निंदा या प्रशंसा के विषय भी नहीं हैं। परन्तु मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक सरोकारों की प्रज्ज्वलित लौ अवश्य हैं, जो प्रेरक दृष्टांत रचते हैं और सही राह भी दिखाते हैं। आंचलिक पत्रकारिता के माथे पर आत्मा को झकझोरने वाले कई कांडों का खुलासा करने का श्रेय भी है। गर्व करने योग्य ऐसी कई रपटें कस्बों से निकलने वाले छोटे पत्रों और आंचलिक अखबारों ने छापीं, जिनसे समाज में हलचल मची। परदा डालने की या झुठलाने की शासकों-प्रशासकों की कोशिशें नाकाम हुईं। धमकियाँ और प्रताड़ना भी काम नहीं आई। कार्रवाई करने पर विवश होना पड़ा और पत्रकारों द्वारा उठाए गए प्रकरणों के परिणाम भी निकले। इस रूप में कहा जा सकता है कि भाषाई आंचलिक प्रेस ही भारत की फिक्र करता है। जिस प्रकार भारत की आत्मा गाँव में बसती है उसी तरह भारतीय भाषाई पत्रकारिता का मेरुदंड आंचलिक पत्रकारिता है।

मध्य प्रदेश सरकार की 'राजेन्द्र माथुर फेलोशिप' के अंतर्गत पत्रकार हरीश पाठक ने 'आंचलिक अखबारों की राष्ट्रीय पत्रकारिता' विषय पर विस्तृत शोध अध्ययन किया। इस अध्ययन में हरीश पाठक ने पाया कि छतरपुर (मध्य प्रदेश) के दो छोटे अखबारों - 'शुभ भारत' और 'क्रान्ति कृष्ण' ने 'छतरपुर बलात्कार कांड' की रिपोर्ट प्रकाशित की। छोटा-सा नगर और धमकाने दबाने पर आमादा जिला प्रशासन, फिर भी अखबार और पत्रकार डरे नहीं, -हजयुके नहीं, डटे रहे। नतीजा, आजाद भारत के इतिहास में संभवत: पहली बार जिला प्रशासन और अखबारनवीसों के संघर्ष में न्यायिक जाँच बिठानी पड़ी। बिहार में मासूम बच्चों के सिर कलम कर रहे कंकालों के सौदागरों का किस्सा हो या सरगुजा में भूख से मरते रिबई पण्डो के परिजन की पीड़ा, बिहार का पशुपालन घोटाला हो या सुरनकोट की महिलाओं की त्रास कथा जिन्हें आतंकवादी अपनी हवस का शिकार बनाते थे, ... आंचलिक पत्रों, पत्रकारों ने ही इन्हें उजागर किया। हैरतअंगेज यह कि जब ऐसे प्रकरण चर्चा में आ गए तब महानगरीय अखबारों को उन्हें छापना पड़ा। बहुधा ऐसा भी हुआ कि बड़े अखबारों और उनके संपादकों ने मूल स्रोत का उल्लेख करना तक जरूरी नहीं समझा।[6]

स्वनामधन्य संपादक राजेन्द्र माथुर ने मध्य प्रदेश आंचलिक पत्रकार संघ के अधि वेशन - (छतरपुर, 1984) में मंत्र दिया था - "आंचलिक पत्रकारों को अपनी शक्ति स्वयं पैदा करना है। नाम उन्हीं का होता है जो लीक से हटकर चलते हैं और अपना रास्ता खुद बनाते हैं।"

'रविवार' के संपादक सुरेन्द्रप्रताप सिंह ने टिप्पणी की - "एक नई तरह की पत्रकारिता का जन्म हुआ है -- एक नई भाषा, नई शैली, नया व्याकरण। सब कुछ नया ईजाद हो रहा है। और लोगों के सोच को पूरी तरह से बदल रहा है। यह न तो ब्रिटिश है, न ही अमेरिकन है - यह विशुद्ध भारतीय है।"

समाज विज्ञानी पत्रकार रामशरण जोशी लिखते हैं - "आंचलिक अखबार, राष्ट्रीय पत्रकारिता के लिए खाद-बीज का काम करते हैं।"

निश्चित ही आंचलिक पत्रकारिता में हालात को बदलने की सामर्थ्य है। समाचार पत्रों और मीडिया के अन्य उपक्रमों को यह बात समझ लेनी चाहिए कि आंचलिक पत्रकारिता उनके चेहरों को चमकाएगी। उन्हें जनप्रिय बनाएगी। उनका प्रसार-प्रचार बढ़ाएगी। अन्तत: शुभ के मार्ग से लाभ का पथ भी प्रशस्त करेगी।

संदर्भ

1. बदलते सामाजिक-आर्थिक संदर्भ में ग्रामीण पत्रकारिता, गणेश मंत्री, आंचलिक पत्रकार, फरवरी 1982
2. उपरिवत
3. अलग-अलग वैतरणी, डा. शिवप्रसाद सिंह, पृष्ठ 685
4. बदलते सामाजिक-आर्थिक संदर्भ में ग्रामीण पत्रकारिता, गणेश मंत्री, आंचलिक पत्रकार, फरवरी 1982
5. 'कर्मवीर', जबलपुर, 17 जनवरी 1920
6. 'आंचलिक अखबारों की राष्ट्रीय पत्रकारिता', हरीश पाठक, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली

डॉ. संतोष कुमार तिवारी

पत्रकारिता शिक्षा के अग्रदूत पी. पी. सिंह

"

एक दमित अथवा नियंत्रित प्रेस के बजाय मैं उस स्वतंत्रता के दुरुपयोग के सभी खतरों के बावजूद एक पूर्णतः स्वतंत्र प्रेस चुनता।
-जवाहर लाल नेहरू

"

भारत में एक विषय के रूप में मीडिया शिक्षा को मान्यता दिलाने में पी.पी. सिंह की भूमिका अविस्मरणीय है। पत्रकारिता शिक्षा के इस अग्रदूत के जीवन एवं कृतित्व पर एक दृष्टि

इस आलेख के लेखक को कभी पी. पी. सिंह के दर्शन नहीं हुए। उन्होंने पी. पी. सिंह पर एक शोधपत्र लिखा जो जयपुर से प्रकाशित कम्युनिकेशन टुडे में प्रकाशित हुआ (अप्रैल-जून 2010, पृ. 18-24)। वह शोधपत्र विशेष रूप से भारत में पत्रकारिता के वरिष्ठतम शिक्षकों में से एक प्रोफेसर के. ई. ईपेन की पुस्तक कम्युनिकेशन : ए डिसिप्लिन इन डिस्ट्रेस और पी. पी. सिंह के छात्र रहे एम. आर. दुआ से टेलीफोन पर हुए वर्तालापों तथा दि हिंदुस्तान टाइम्स नई दिल्ली से अवकाश प्राप्त और बाद में लखनऊ जा बसे वरिष्ठ पत्रकार एस. आर. निगम के साथ साक्षात्कार पर आधारित था।

कम्युनिकेशन टुडे में उस शोधपत्र के प्रकाशन के बाद भी, इस लेखक ने समय-समय पर पीपी सिंह पर अपना शोध जारी रखा। यह शोधपत्र उनके विशेष रूप से प्रोफेसर एम. आर. दुआ और पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ के संचार अध्ययन स्कूल (स्कूल ऑफ कम्युनिकेशन स्टडीज) की प्रोफेसर अर्चना सिंह के ई-मेल संदेशों के अनुरूप अगले शोध पर आधारित है। ई-मेल के ये संदेश दिसंबर 2020 के हैं।

भारत में पत्रकारिता की शिक्षा सन् 1920 के आसपास डॉ. एनी बेसेंट (1847-1933) द्वारा स्थापित नेशनल यूनिवर्सिटी (राष्ट्रीय विश्वविद्यालय), अड्यार, मद्रास में शुरू हुई। वहाँ पत्रकारिता का अध्यापन अंग्रेजी विभाग ने शुरू किया, जिसमें पत्रकारिता का इतिहास, संपादकीय कार्यप्रणाली और समाचारपत्र प्रशासन आदि की शिक्षा दी जाती थी।[1] किंतु, यह प्रयोग पाँच वर्ष से अधिक नहीं चल सका।[2]

प्रोफेसर रवींद्र गोपालन कहते हैं : "थियॉसॉफिकल सोसाइटी के अभिलेखों के अनुसार भारत में किसी कॉलेज/विश्वविद्यालय में पत्रकारिता की शिक्षा का पहला प्रयास सन् 1918 में एनी बेसेंट द्वारा मद्रास में स्थापित राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के कॉलेजों में से एक में किया गया। कुछ लोगों के अनुसार यह 1920 में शुरू हुई, जो गलत है। मैं बीते 15 वर्षों से मद्रास में आरंभिक प्रयासों पर कार्य करता रहा हूँ..."[3]

इसके बाद सन् 1938 में अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में रहम अली अल्हाशामी की देखरेख में इस विषय का एक वर्ष का डिप्लोमा पाठ्यक्रम शुरू किया गया।[4] किंतु, आंतरिक कलह के कारण सन् 1940 में यह पाठ्यक्रम बंद कर दिया गया।[5]

सन् 1941 में पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर में पी. पी. सिंह (3 अक्टूबर 1910 - 17 अगस्त 1979)[6] ने पत्रकारिता का एक कार्यक्रम आरंभ किया और यह भारत व पाकिस्तान में इस विधा का सर्वाधिक दीर्घ कार्यक्रम है। सन् 1947 में जब देश का विभाजन हुआ, तब पंजाब विश्वविद्यालय का विभाजन भी हो गया।

इसका पत्रकारिता विभाग नई दिल्ली आ गया और नई दिल्ली मंदिर मार्ग के किनारे बिरला मंदिर के निकट स्थित हरकोर्ट बटलर हायर सेकंडरी स्कूल में सायंकालीन कक्षाओं में पी. पी. सिंह

इसकी शिक्षा देने लगे।[7] सन् 1962 में विभाग को पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ के परिसर में स्थानांतरित कर दिया गया। एमआर दुआ ने जनवरी 1963 में पी. पी. सिंह के विभाग में एक वरिष्ठ व्याख्याता के रूप में कार्य करना शुरू किया। उन दिनों हिंदी, पंजाबी और उर्दू पत्रकारिता की शिक्षा देने वाले तीन अंशकालिक शिक्षक थे।[8]

शिक्षण आरंभ करने से पहले पी. पी. सिंह ने इंग्लैंड में लंदन से पत्रकारिता में एक वर्ष की डिप्लोमा की शिक्षा प्राप्त की। सन् 1938 में उन्होंने अमेरिका में संयुक्त राज्य अमेरिका के मसूरी विश्वविद्यालय से इस विधा में स्नातकोत्तर की शिक्षा ग्रहण की।[9]

सन् 1908 में मसूरी विश्वविद्यालय में अलग से एक पत्रकारिता स्कूल की स्थापना की गई। वॉल्टर विलियम्स इसके पहले संकायाध्यक्ष थे। इस स्कूल ने सन् 1921 में स्नातकोत्तर की पहली डिग्री और सन् 1934 में पत्रकारिता में पहला डॉक्टरेट प्रदान किया।[10]

विदेश से आने के बाद पी. पी. सिंह सन् 1938 में पं. जवाहर लाल नेहरू से मिले, जो उस समय लखनऊ से अनुभवी पत्रकार के. रामाराव के संपादकत्व में अपना दैनिक समाचारपत्र नेशनल हेराल्ड आरंभ करने जा रहे थे। पी. पी. सिंह ने नेशनल हेराल्ड में सेवा के लिए नेहरू से एक परिचयात्मक पत्र लिया। किंतु के. रामाराव ने नेहरू और पी. पी. सिंह को मना कर दिया।[11] तब पी. पी. सिंह ने लखनऊ में अंग्रेजों के स्वामित्व वाले दि पायनियर में कार्य करना शुरू किया। वहाँ उन्होंने एक अंग्रेज डेस्मंड यंग उसके संपादक थे। पी. पी. सिंह ने लगभग एक वर्ष तक वहाँ काम किया। उसके बाद स्वास्थ्य कारणों से उसे छोड़ दिया।[12] कुछ समय तक उन्होंने एक अमेरिकी समाचार एजेंसी एसोसिएटेड प्रेस (ए. पी.) में एक स्ट्रिंगर (अनियमित पत्रकार) के रूप में भी कार्य किया।[13]

यहाँ उल्लेख उचित है कि के. रामा राव (1897-1961) एक निहायत ही निर्भीक पत्रकार थे। उन्होंने मुंबई से प्रकाशित दि टाइम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली से ही प्रकाशित दि हिंदुस्तान टाइम्स, कराची से प्रकाशित सिंध ऑब्जर्वर, इलाहाबाद से प्रकाशित दि लीडर, इलाहाबाद से ही प्रकाशित दि पायनियर; और पटना से प्रकाशित सर्चलाइट समेत 25 से ज्यादा समाचारपत्रों में कार्य किया और उन्हें छोड़ा, किंतु उन्हें सबसे अधिक लखनऊ से प्रकाशित नेशनल हेराल्ड के संपादन के लिए स्मरण किया जाता है। महात्मा गांधी उन्हें जुझारू संपादक कहते थे। नेशनल हेराल्ड में प्रकाशित ब्रिटिश सरकार की आलोचना के उनके संपादकीय के कारण अगस्त 1912 में उन्हें छह माह के कारावास की सजा हुई। उनकी आत्मकथा पेन ऐज माई सोर्ड उनकी कई पुस्तकों में से एक है।[14] वह पहली राज्य सभा के सदस्य भी रहे।

पी. पी. सिंह जब लखनऊ में दि पायनियर में कार्यरत थे, तब वह लखनऊ विश्वविद्यालय में पत्रकारिता का एक पाठ्यक्रम शुरू करना चाहते थे, किंतु पाठ्यक्रम आरंभ करने के लिए वह अधिकारियों को राजी नहीं कर सके।[15] पी. पी. सिंह मूलत: उत्तर प्रदेश के लखीमपुर-खीरी जिले के वासी और लखनऊ विश्वविद्यालय के पूर्व छात्र थे। उन्होंने बी. ए. और एलएल. बी. की अपनी शिक्षा लखनऊ विश्वविद्यालय से प्राप्त की थी।[16]

वस्तुत:, उन दिनों किसी को यह समझा पाना कठिन था कि पत्रकारिता एक विषय है, जिसकी पढ़ाई कराई जा सकती है। लोग कहा करते कि महात्मा गांधी, तिलक आदि ने कभी किसी पत्रकारिता स्कूल में पढ़ाई नहीं की। आम धारणा यह थी कि पत्रकार जन्म से होते हैं, शिक्षा अथवा प्रशिक्षण से नहीं।

अमेरिका में सन् 1892 में पत्रकारिता की शिक्षा के लिए जॉसेफ पुलित्जर ने एक विशाल धनराशि की पेशकश की, फिर भी कई लोग इस तर्क को समझ नहीं सके।

पत्रकारिता के विश्व के पहले स्कूल की स्थापना के लिए सन् 1892 में, पुलित्जर ने कोलंबिया विश्वविद्यालय को धनराशि की पेशकश की। विश्वविद्यालय ने उनकी पेशकश को अस्वीकार कर दिया। किंतु, सन् 1902 में कोलंबिया विश्वविद्यालय के नए प्रशासन ने पत्रकारिता स्कूल की उनकी योजना के प्रति अभिरुचि दिखाई। पत्रकारिता स्कूल की स्थापना और पुरस्कारों के लिए पुलित्जर ने अपने वसीयतनामे में 2,000,000 डॉलर की धनराशि विश्वविद्यालय के नाम कर दी। सन् 1911 में पुलित्जर का स्वर्गवास हो गया और सन् 1912 में उनकी प्रदत्त धनराशि से कोलंबिया विश्वविद्यालय में पत्रकारिता स्कूल की स्थापना हुई।

पी. पी. सिंह जब लखनऊ विश्वविद्यालय में पत्रकारिता पाठ्यक्रम शुरू नहीं कर सके, तब उन्होंने लाहौर स्थित पंजाब विश्वविद्यालय में इसके लिए प्रयास किया जहाँ उनके अग्रज राणा जंग बहादुर पंजाब से प्रकाशित एक अग्रणी दैनिक दि ट्रिब्यून में संपादक थे।[17] अपने भाई के प्रभाव के कारण, वह पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, जो अब पाकिस्तान में है, में इस विधा की शिक्षा आरंभ करने में सफल रहे।

यह एक शिल्प उन्मुखी अंशकालिक डिप्लोमा पाठ्यक्रम था, जिसकी कक्षाएं सायंकालीन थीं। लाहौर से प्रकाशित प्रतिष्ठित दैनिक डॉन के तत्कालीन संपादक, जो एक अंग्रेज थे, भी सायंकालीन कक्षाओं में अध्यापन के लिए आया करते थे।[18]

सन् 1954-55 में पी. पी. सिंह के छात्र रहे सी. के. सरदाना ने कहा :

"प्रोफेसर सिंह पत्रकारिता के सभी छात्रों को अपनी आंखें और कान खुले रखने, आसपास होने वाली घटनाओं को देखने, जानकारी और मत संग्रह करने तथा मीडिया के लिए लिखने को प्रेरित करते थे। वह कहा करते 'लोकहित के सामयिक विषय पर संपादक के नाम पत्र से शुरू करो। एक अच्छे पत्रकार या एक अच्छे लेखक होने की अपनी मुहिम में ढील कभी मत दोश। वह भाषा, व्याकरण...प्रूफ जाँच पर विशेष ध्यान देते थे।. . . प्रोफेसर सिंह निहायत ऊर्जावान थे - हमेशा स्पंदनशील और मुझे (अन्यों को भी) महज अच्छा या बहुत अच्छा बनने को नहीं बल्कि शीर्ष पर पहुँचने को बढ़ावा और प्रोत्साहन देते रहते थे।"[19]

देश के विभाजन के बाद, पी. पी. सिंह और राणा जंग बहादुर सिंह दोनों दिल्ली चले आए। पी. पी. सिंह राजेंद्र नगर क्षेत्र में रहने लगे जो वस्तुत: एक शरणार्थी बस्ती था। आगे चल कर, राणा जंग बहादुर सिंह दिल्ली से प्रकाशित दि टाइम्स ऑफ इंडिया के स्थानीय संपादक बने। बाद में उन्होंने दिल्ली निर्वाचन क्षेत्र से कांग्रेस पार्टी के उम्मीदवार के रूप में चुनाव भी लड़ा और जनसंघ के बलराज मधोक को पराजित किया। उन दिनों जनसंघ में अटल बिहारी वाजपेयी और एल. के. आडवाणी आदि जैसे नेता थे। किंतु, अगले आम चुनाव में बलराज मधोक ने लोकसभा सीट जीत ली।[20]

अमेरिका से आने के बाद, पी. पी. सिंह ने सत्यवती सिंह से विवाह किया, जो उनसे बारह वर्ष छोटी थीं। उस समय सत्यवती सिंह हाई स्कूल की शिक्षा पूरी कर चुकी थीं। उन्होंने उन्हें आगे पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। आगे चलकर उन्होंने गणित से एम. ए., बी. एड. किया। एक स्कूल में शिक्षक के पद पर उनकी नियुक्ति हुई और बाद में वह दिल्ली प्रशासन द्वारा संचालित एक उच्चतर माध्यमिक स्कूल की प्रधानाचार्य बनीं। उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली था।[21]

सन् 1962 में जब पी. पी. सिंह चंडीगढ़ आए, तो एक छात्रावास के एक कमरे में रहने लगे और वह अपना भोजन स्वयं पकाते थे। वह सादे आचरण के व्यक्ति थे।[22]

पी. पी. सिंह 62 वर्ष की आयु में पंजाब विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त हुए। सेवानिवृत्त होने के बाद वह राजेंद्र नगर, नई दिल्ली के आर-ब्लॉक में रहने लगे। वह कोई पेंशन नहीं लेते थे। उन दिनों 60 वर्ष की आयु में सेवा निवृत्ति का प्रावधान था, किंतु उन्हें दो वर्षों का सेवा विस्तार दिया गया। उनके बाद पंजाब विश्वविद्यालय के इस विभाग की बागडोर बी. एस. ठाकुर नाम से लोकप्रिय भोला सिंह ठाकुर के हाथों में आई। वह मूलत: उत्तर प्रदेश के वासी थे।[23] उन्होंने अमेरिका के विस्कॉन्सिन विश्वविद्यालय से इस विधा में स्नातकोत्तर की शिक्षा प्राप्त की थी। पंजाब विश्वविद्यालय में सेवा आरंभ करने से पहले, ठाकुर ने सन् 1961 से 1968 तक हैदराबाद स्थित उस्मानिया विश्वविद्यालय में कार्य किया।[24] सेवानिवृत्ति के बाद, ठाकुर चंडीगढ़ के निकटवर्ती जिला पंचकुला (हरियाणा) में रहने लगे। ठाकुर आज हमारे बीच नहीं हैं।

पी. पी. सिंह ने पत्रकारिता व जनसंचार पर कोई पुस्तक नहीं लिखी, किंतु डॉ. रोलां ई. वोलसेली द्वारा संपादित और एशिया पब्लिशिंग हाउस, बंबई द्वारा प्रकाशित एक पुस्तक जर्नलिज्म इन मॉडर्न इंडिया में एक अध्याय का योगदान दिया।[25] डॉ. वोलसेली एक फुलब्राइट स्कॉलर के रूप में भारत आए थे।[26] पी. पी. सिंह कलकत्ता, मद्रास, उस्मानिया, गुवाहाटी, नागपुर आदि में भी पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग कायम करना चाहते थे।[27]

लाहौर के पंजाब विश्वविद्यालय में पी. पी. सिंह जो छोड़ आए थे, वह आज उस देश में उत्कृष्ट पाठ्यक्रमों में से एक है। सन् 1985 में पत्रकारिता विभाग से बदल कर इसका नाम संचार विभाग कर दिया गया, और आज यह संचार अध्ययन संस्थान (इंस्टिट्यूट ऑफ कम्युनिकेशन स्टडीज) के नाम से जाना जाता है। दुखद बात यह है कि आज इसकी वेबसाइट पर इसके संस्थापक पी. पी. सिंह का नाम तक दर्ज नहीं किया जाता है। वहाँ उनका नाम भुला दिया गया है।

भारत में पंजाब विश्वविद्यालय के पत्रकारिता विभाग का नाम बदलकर संचार अध्ययन विद्यालय कर दिया गया है। यह उत्तरी भारत के इस विधा के अग्रणी स्कूलों में से एक है। इसकी वेबसाइट पर पीपी सिंह का नाम प्रमुखता से प्रकाशित किया जाता है और इसकी दीवार पर उनके छायाचित्र भी सजे हैं।

वर्ष 2018 से पंजाब विश्वविद्यालय हर दूसरे वर्ष पी. पी. सिंह स्मृति व्याखयान का आयोजन करता रहा है। पहले व्याख्यान में वक्ता एच. के. दुआ और दूसरे में चंडीगढ़ से प्रकाशित दि इंडियन एक्सप्रेस की संपादक सुश्री मनराज ग्रेवाल थीं। दोनों पंजाब विश्वविद्यालय के इस विभाग के पूर्व छात्र थे।[28]

पी. पी. सिंह बहुत लंबे नहीं थे। उनकी लंबाई पांच फुट पांच या छह इंच थी। वह एक भारी व्यक्ति थे। (वह भारी थे, इसलिए कुछ छात्र उन्हें स्नेहवश "पीपा सिंह"[29] कहते थे)। उन्हें रक्तचाप की समस्या के साथ-साथ मधुमेह भी था। सन् 1979 में अपने कुछ संबंधियों से मिलने वह अकेले लखनऊ गए, उनकी पत्नी उनके साथ नहीं गईं। वहाँ दिल का दौरा पड़ा और उनका देहावसान उसी नगर में हो गया जहाँ वह सन् 1930 के दशक

के उत्तरार्ध में पत्रकारिता का एक विभाग शुरू करना चाहते थे। लखनऊ में उनका अंतिम संस्कार किया गया। वह अपने पीछे अपनी विधवा और एक पुत्र व दो पुत्रियाँ छोड़ गए।[30]

लखनऊ विश्वविद्यालय में पत्रकारिता पाठ्यक्रम का आरंभ 1992 में ही हो सका। आरंभ में, पाठ्यक्रम की शुरुआत हिंदी विभाग से की गई और फिर वर्ष 1995 में पत्रकारिता के एक अलग विभाग की स्थापना की गई।[31]

लाहौर में पाठ्यक्रम शुरू करने में पी. पी. सिंह को भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। आज मीडिया शिक्षा की स्थिति कहीं बेहतर और सुविधापूर्ण है, और अब आज के मीडिया शिक्षकों का यह कर्तव्य है कि जो ज्योति आठ दशक पहले पी. पी. सिंह ने जलाई थी, उसे वे आगे बढ़ाएँ।

संदर्भ :

1. मूर्ति, नडिग कृष्णा; *इंडियन जर्नलिज्म*, मैसूर विश्वविद्यालय 1966, पृ. 75-76
2. ईपेन, के. ई; *कम्युनिकेशन : ए डिसिप्लिन इन डिस्ट्रेस*, मद्रास : संचार विभाग, गुरुकुल लुथेरन थियॉलॉजिकल कॉलेज एवं रिसर्च इंस्टिट्यूट (गुरुकुल लुथेरन अध्यात्मविद्या कॉलेज एवं शोध संस्थान) (1995), पृ. 128
(के. ई. ईपेन भारत में अति वरिष्ठ मीडिया शिक्षकों में से एक थे। उन्होंने न्यूयॉर्क के साइरेक्यूज विश्वविद्यालय से एम. एस. और विसकॉन्सिन विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की शिक्षा प्राप्त की। सन् 1973 से 79 तक वह बंगलोर विश्वविद्यालय में संचार विभाग के प्रोफेसर/अध्यक्ष रहे, और फिर 1979 से 83 तक केरल विश्वविद्यालय में कार्य किया। वर्ष 1983 में वह बंगलोर चले गए और वहीं बस गए।)
3. इस लेखक के नाम 15 दिसंबर, 2020 को *प्रोफेसर रवींद्रन गोपालन का ईमेल संदेश*। प्रोफेसर रवींद्रन गोपालन संप्रति तमिलनाडु के केंद्रीय विश्वविद्यालय में जनसंचार के प्रोफेसर हैं।
4. अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के पत्रकारिता विभाग के प्रोफेसर (डॉ.) दुर्रानी से टेलीफोन वार्ता
5. दयाल, मनोन एवं कुमार पंकज; *मीडिया शिक्षा में शोध की जरूरत, मीडिया मीमांसा*, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल, खंड 3, अंक 2,अक्टूबर-दिसंबर 2009, पृ. 27
6. अर्चना सिंह का *ईमेल संदेश*, दिनांक 17 दिसंबर, 2020
7. 26 अप्रैल से 2 मई, 2010 के बीच *एम. आर. दुआ से टेलीफोन पर वार्तालाप*। (एम. आर. दुआ सन् 1957-58 में पी. पी. सिंह के एक छात्र और 1962 से 1968 तक एक व्याख्याता के रूप में उनके सहायक रहे। उन्होंने पांच वर्षों तक दि *इंडियन एक्सप्रेस* में भी कार्य किया। उन्होंने वर्ष 1978 में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से पत्रकारिता एवं जन संचार में स्नातकोत्तर की डिग्री प्राप्त की। उन्होंने कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में अध्यापन भी किया। वह कालीकट विश्वविद्यालय में इस विधा के संस्थापक अध्यक्ष और वर्ष 1979 से 1998 तक दिल्ली स्थित भारतीय जन संचार संस्थान (इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ मास कम्युनिकेशन) में प्रोफेसर रहे। आजकल वह कभी गुरुग्राम और कभी अपनी बेटियों के साथ अमेरिका में रहते हैं।)
8. एम. आर. दुआ का *ईमेल संदेश*, 17 दिसंबर, 2020
9. ईपेन, पूर्वोक्त, पृ. 23
10. वही, पृ. 127
11. एस. आर. निगम से साक्षात्कार (निगम ने लखनऊ विश्वविद्यालय, जे. डी. (नागपुर) से एम. ए., एलएल. बी. की शिक्षा प्राप्त की थी)। उन्होंने लखनऊ से प्रकाशित नेशनल हेराल्ड, नई दिल्ली से प्रकाशित पैट्रियट, पंजाब से प्रकाशित ट्रिब्यून, नई दिल्ली से प्रकाशित हिंदुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली से ही प्रकाशित मदरलैंड और भोपाल तथा अमृतसर के यूएनआई में कार्य किया। सन् 1975-76 में उन्होंने गढ़वाल विश्वविद्यालय में पत्रकारिता विभाग की स्थापना की, पत्रकारिता की शिक्षा आरंभ करने वाला उत्तर प्रदेश का यह पहला विश्वविद्यालय था। वर्ष 2009 में 77 वर्ष की आयु में निगम का देहावसान हो गया।
12. निगम, वही
13. दुआ का साक्षात्कार, यथा उद्धृत
14. रस्तोगी, विनय के, के. रामा राव : *संपादकीय, वन पॉकेट रेजिगनेशन इन दि अदर*, मीडिया मीमांसा, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय (नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ जर्नलिज्म एंड कम्युनिकेशन), भोपाल, खंड 3, अंक. 2, अक्टूबर-दिसंबर 2009, पृ. 90-91
15. निगम, यथा उद्धृत
16. दुआ का साक्षात्कार, यथा उद्धृत
17. वही
18. वही
19. सेवा निवृत्त महाप्रबंधक/कॉर्पोरेट पीआर/बीएचईएल एवं संप्रति भोपाल में पत्रकारिता एवं संचार के शिक्षक और भोपाल से प्रकाशित मीडिया मीमांसा के सहायक संपादक सी. के. सरदाना का *ईमेल संदेश*, 2 मई, 2010
20. दुआ का साक्षात्कार, पूर्वोक्त
21. वही
22. वही
23. वही
24. ईपेन, यथा उद्धृत, पृ. 17
25. दुआ का साक्षात्कार, यथा उद्धृत
26. ईपेन, यथा उद्धृत, पृ. 141
27. दुआ का साक्षात्कार, यथा उद्धृत
28. अर्चना सिंह का *ईमेल संदेश*, 17 दिसंबर, 2020
29. अमेरिका से दुआ का ईमेल संदेश, 15 दिसंबर, 2020
30. दुआ का साक्षात्कार, यथा उद्धृत
31. लखनऊ विश्वविद्यालय के पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ. आर. सी. त्रिपाठी से *टेलीफोन वार्ता*

उमेश चतुर्वेदी

भूमंडलीकरण के दौर में भाषाई मीडिया

> *यदि यह निर्णय मुझे करना हो कि हमें बिना समाचारपत्र की कोई सरकार या बिना किसी सरकार के समाचारपत्र चाहिए, तो मुझे सरकार के बिना समाचारपत्र को चुनने में एक पल को भी हिचक नहीं करनी चाहिए।*
> *-थॉमस जैफरसन*

भूमंडलीकरण ने अर्थतंत्र से लेकर सामाजिक व्यवस्था तक बहुत कुछ बदल दिया है। ऐसी स्थिति में पत्रकारिता की दुनिया उससे अछूती कैसे रह सकती थी! भूमंडलीकरण के दौर में भाषाई मीडिया पर एक विहंगम दृष्टि

भूमंडलीकरण के दौर में भाषाई पत्रकारिता की यात्रा का जिक्र हो, हिंदी पत्रकारिता के दिग्गज बाबू राव विष्णु राव पराड़कर की याद ना आए, संभव नहीं है। हिंदी पत्रकारिता ही नहीं, भाषा को भी माँजने और उसे सौष्ठव प्रदान करने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ललित निबंधकार कृष्ण बिहारी मिश्र इसे कृती भूमिका कहते हैं। इतिहास के कालक्रम में भाषाई पत्रकारिता की यात्रा की चर्चा के दौरान पराड़कर जी का एक कथन स्वाभाविक ही स्मरण हो आता है। 1925 में संपन्न वृंदावन के अखिल भारतीय संपादक सम्मेलन की अध्यक्षीय पीठ से उन्होंने कहा था,

"पत्र निकालकर सफलतापूर्वक चलाना बड़े-बड़े धनियों अथवा सुसंगठित कंपनियों के लिए ही संभव होगा। पत्र सर्वांग सुंदर होंगे, आकार में बड़े होंगे, छपाई अच्छी होगी, मनोहर, मनोरंजक और ज्ञानवर्धक चित्रों से सुसज्जित होंगे, लेखों में विविधता होगी, कल्पकता होगी, गंभीर गवेषणा की झलक होगी, ग्राहकों की संख्या लाखों में गिनी जाएगी। यह सब कुछ होगा, पर पत्र प्राणहीन होंगे। पत्रों की नीति देशभक्त, धर्मभक्त अथवा मानवता के उपासक महाप्राण संपादकों की नीति न होगी। इन गुणों से संपन्न लेखक विकृत मस्तिष्क समझे जाएंगे। संपादक की कुर्सी तक उनकी पहुंच भी न होगी। वेतनभोगी संपादक मालिक का काम करेंगे और बड़ी खूबी के साथ करेंगे। वे हम लोगों से अच्छे होंगे। पर आज भी हमें जो स्वतंत्रता प्राप्त है, वह उन्हें न होगी। वस्तुतः पत्रों के जीवन में यही समय बहुमूल्य है।"[1]

पराड़कर ने जब यह बात कही थी, तब उनके समक्ष 'वसुधैव कुटुंबकम्' वाला वैश्वीकरण का पारंपरिक विचार ही रहा होगा, कम से कम मौजूदा व्यवस्था वाले भूमंडलीकरण का नक्शा नहीं था। लेकिन उन्होंने काल के पार की पत्रकारिता और उसमें बदलाव के जिस स्वरूप की कल्पना की थी, वह उनके जीवनकाल में तो साकार नहीं हुई, अलबत्ता भूमंडलीकरण के दौर में वही सोच तेजी से रूपायित हुई। अखबारों की करीब एक सदी की यात्रा को परखें तो देखेंगे कि पूर्व के अखबारों की तुलना में सिर्फ भारतीय भाषाओं ही नहीं, दुनियाभर के अखबार ज्यादा सुघड़, सुंदर, बेहतर एवं चमकीले हुए हैं। अखबारों का प्रसार भी बढ़ा है, लेकिन पराड़कर जी ने उनमें जिस प्राणहीनता की आशंका जताई थी, वह सचमुच अब साफ दिखने लगी है। पराड़कर ने करीब एक सदी पहले चमकदार अखबारों में देशभक्तिहीनता, धर्मभक्ति के प्रति उपेक्षाभाव और मानवता की उपासना के उपहास की जो कल्पना की थी, वह मौजूदा पत्रकारिता परिदृश्य में स्पष्ट दिखता है। आज के सुघड़

और सुंदर पत्रों में जिस तरह भारत विरोध के सुर को स्थान मिलता है, जिस तरह धर्म - विशेषकर हिंदू धर्म का उपहास उड़ाया जाता है, कई चीजों के प्रति जो उपेक्षात्मक दृष्टि दिखती है; वह बिलकुल वैसा ही है जैसा पराड़कर ने सोचा या समय के पार देखा था।

निश्चित तौर पर पराड़कर तब नहीं जानते होंगे कि आने वाले दौर में ऐसा भूमंडलीकरण आएगा, जिसके केंद्र में बाजार होगा और आर्थिकी के इर्द-गिर्द ही उसकी दृष्टि विकसित होगी। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के 'वसुधैव कुटुंबकम्' वाले वैश्वीकरण में जो ऊष्मा है, वह मौजूदा वैश्वीकरण में कम ही नजर आता है। कभी वह ऊष्मा दिखती भी है तो उसके पीछे भी कहीं न कहीं बाजार की ही कोई चिंता होती है या फिर उसका कोई निहित स्वार्थ होता है। वैश्वीकरण की पारंपरिक अवधारणा में न तो बाजार कहीं नजर आता है और न ही कोई स्वार्थ। उसमें अगर हम स्वार्थ ढूंढ़ने की कोशिश करेंगे तो अधिक से अधिक इस नतीजे पर पहुँचा जा सकता है कि वह स्वार्थ इहलौकिक ना होकर पारलौकिक है।

बहरहाल मौजूदा भूमंडलीकरण ने भारत में करीब तीन दशक की यात्रा पूरी कर ली है। बीसवीं सदी के आखिरी दशक की शुरुआत में भारत ने उदारीकरण के सहारे वैश्वीकरण की राह पर अपने कदम बढ़ाए थे। स्वाधीनता के बाद से भारत ने अपना भाग्य रचने के लिए जिस राह को अपनाया था, वह किंचित वाममार्ग की ओर नत समाजवादी दर्शन पर आधारित था। उदारीकरण की शुरुआत के दौर तक भारतीय समाज, शासन-व्यवस्था और उसके मुखापेक्षी बौद्धिक समाज के एक बड़े हिस्से ने चार दशक से ज्यादा की यात्रा पूरी कर ली थी। जाहिर है कि माहौल में उनकी ही अनुगूँज ज्यादा थी। चूँकि उदारीकरण के सहारे भारत में प्रवेश कर रहे भूमंडलीकरण को लेकर उन दिनों वाममार्गी और समाजवादी दर्शन आशंकित था, लिहाजा भारत द्वारा तब अपनाई जा रही नई राह को लेकर भी आशंकाएँ ज्यादा थीं। उम्मीदों से अगर कोई भरा हुआ था, तो निश्चित तौर पर वह तत्कालीन शासक वर्ग था, जिसके समक्ष अपनी अर्थव्यवस्था को बचाने और करीब एक अरब की जनसंख्या को आगे बढ़ाने की चुनौती थी। जिसके पूर्ववर्ती को भारतीय अर्थव्यवस्था को चलाने के लिए अपनी स्वर्ण संपदा को अमेरिकी बैंकों के समक्ष गिरवी रखने के लिए मजबूर होना पड़ा था। इसलिए भूमंडलीकरण की यात्रा में इस ओर बढ़ते हुए तत्कालीन राज व्यवस्था को आशावान होना ही था। लेकिन जब इस यात्रा के बरक्स भाषाई पत्रकारिता की यात्रा को देखते हैं तो वहाँ उम्मीदी से कहीं ज्यादा नाउम्मीदी नजर आती है।

चूँकि तब भारतीय बौद्धिकों का बड़ा वर्ग वाम और समाजवादी दर्शन के वैचारिक आधार पर ज्यादा खड़ा था, इसलिए उसे इस भूमंडलीकरण से सबसे ज्यादा आशंकाएँ थीं। उन आशंकाओं का प्रक्षेप तत्कालीन भाषाई मीडिया के प्रमुख आधार अखबारों पर खूब दिखता था। अप्रैल 1993 में जब उदारीकरण की राह की आखिरी बाधा को पार करने की दिशा में तत्कालीन राजव्यवस्था ने कदम बढ़ाए, तब भाषाई अखबार उसकी आलोचनाओं से भर गए थे। अफ्रीकी देश मोरक्को को चौथे बड़े और खूबसूरत शहर मराकेश में 15 अप्रैल 1994 को जब तत्कालीन वाणिज्य मंत्री प्रणब मुखर्जी ने भारत की ओर से शुल्क और व्यापार के लिए सामान्य समझौता यानी गेट पर 123 देशों के साथ हस्ताक्षर किया था। उसके अगले दिन के भारतीय अखबारों ने इसे गुलामी के नए प्रतीक के तौर पर देखा था। भारत में उदारीकरण की शुरुआत कायदे से 25 जुलाई 1991 को संसद में तत्कालीन वित्तमंत्री मनमोहन सिंह के भाषण से होती है। जिसमें उन्होंने भारत में आर्थिक सुधार के लिए नई आर्थिक नीतियों की शुरूआत की। वैसे तो इंस्पेक्टर राज को कमजोर करने की शुरूआत इंदिरा गांधी ने 1980 में सत्ता में वापसी के साथ ही कर दी थी। लेकिन उसमें वह गति नहीं थी, जैसी गति 1991 के बाद दिखती है। जाहिर है कि उसका असर भारतीय खासकर भाषाई मीडिया पर भी था। बेशक आपातकाल के काले दिनों में मीडिया तत्कालीन सत्ता से लोहा लेकर अपने जुझारूपन का परिचय दे चुका था। हालांकि जनता पार्टी के छिन्न-भिन्न होने और उसके बाद सत्ता में इंदिरा गांधी की वापसी के बाद एक बार फिर भाषाई, खासकर हिंदी के अखबार मुखापेक्षी बनने की राह पर चल पड़े थे। इसके बावजूद भाषाई पत्रकारिता में कुछ ऐसे लोग शेष थे जिन्होंने उसे पूरी तरह सत्ता का मुखापेक्षी नहीं बनने दिया।

भूमंडलीकरण के प्रति आशंकित भाव रखने वालों में वाम और समाजवादी दर्शन के साथ ही

राष्ट्रीय विचारधारा भी शामिल थी। वाम दर्शन के साथ ही राष्ट्रीय विचारधारा की भी सोच थी कि वैश्वीकरण की गति जैसे-जैसे भारतीय सीमाओं में तेज होती जाएगी, वैश्वीकरण नया लोकवृत्त रचेगा। जर्मन समाजशास्त्री हेबरमास ने पब्लिक स्फीयर की जो अवधारणा दी है, हिंदी में लोकवृत्त को उसका समानार्थी माना गया है। वैसे पब्लिक स्फीयर का एक मतलब वह सार्वजनिक जगह भी होता है, जिसमें समाज विशेष के जीवन मूल्य समाहित होते हैं। यह निश्चित ही है कि हर नया विचार और उसके जरिए स्थापित होने वाली नई व्यवस्था नई संस्कृति को गढ़ते हैं। इस प्रक्रिया में नया लोकवृत्त भी रचा जाता है। निश्चित तौर पर वह लोकवृत्त नए मूल्यों से लैस होते हैं। बाबूराव विष्णुराव पराड़कर के सामने भले ही भूमंडलीकरण न रहा हो,

बेशक आपातकाल के काले दिनों में मीडिया तत्कालीन सत्ता से लोहा लेकर अपने जुझारूपन का परिचय दे चुका था। हालांकि जनता पार्टी के छिन्न-भिन्न होने और उसके बाद सत्ता में इंदिरा गांधी की वापसी के बाद एक बार फिर भाषाई, खासकर हिंदी के अखबार मुखापेक्षी बनने की राह पर चल पड़े थे। इसके बावजूद भाषाई पत्रकारिता में कुछ ऐसे लोग शेष थे जिन्होंने उसे पूरी तरह सत्ता का मुखापेक्षी नहीं बनने दिया

उसके जरिए विकसित होने वाली संस्कृति का ढांचा न रहा हो, लेकिन इसमें दो राय नहीं है कि उन्होंने हिंदी समाज के साथ विकसित होने वाले हिंदी मीडिया के भावी विचलन, उसके द्वारा अपनाए जाने वाले मूल्यों को भाँप लिया था।

इसे स्वीकार करने में हर्ज नहीं है कि भूमंडलीकरण के साथ आए उदारीकरण ने मीडिया परिदृश्य को पूरी तरह बदल दिया है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि जब भी भारतीय पत्रकारिता की मीमांसा होती है, उसे अतीत खासकर स्वाधीनता आंदोलन के दौरान विकसित मूल्यों के आधार पर परखा जाता है। दरअसल भारतीय भाषाई पत्रकारिता की पूरी विकास यात्रा स्वाधीनता आंदोलन के साथ हुई है। कहा जा सकता है कि हिंदी समेत समूची भारतीय भाषाई पत्रकारिता का जन्म स्वाधीनता आंदोलन की कोख से हुआ है। हर बच्चा जिस तरह अपनी माँ के गुणों को आत्मसात करता है, भाषाई पत्रकारिता ने जो भी मूल्य गढ़े या आत्मसात किए, वे ज्यादातर स्वाधीनता आंदोलन के ही मूल्य हैं। यही वजह है कि मूल्यों के संदर्भ में जब भी भाषाई पत्रकारिता पर विमर्श होता है, उन्हें स्वाधीनता आंदोलन के दौरान स्वीकृत सार्वजनिक मूल्यों के आधार पर ही परखा जाता है।

ब्रिटिश लेखिका और भारतविद् फ्रांचेस्का आर्सिनी ने भारतीय जीवन मूल्यों को रचने में आजादी के पहले के 1920 से 1940 तक के बीच प्रकाशित होते रहे हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका को लेकर अध्ययन किया है। इस अध्ययन में वह इस निष्कर्ष पर पहुँची हैं कि अछूतोद्धार, नारी शिक्षा, बराबरी का हक और तत्कालीन समाज की कई अन्य बुराइयों के खिलाफ नए जीवन मूल्य रचने और सार्वजनिक एवं सामाजिक जीवन में उन्हें स्थापित करने में उस दौर के हिंदी पत्र-पत्रिकाओं यथा सरस्वती, मर्यादा, जागरण, हंस, माधुरी, चाँद आदि ने गहरा योगदान दिया है। आर्सिनी का यह शोध अध्ययन अंग्रेजी में 'पब्लिक स्फीयर ऑफ हिंदी' नाम से प्रकाशित है, जिसका अनुवाद 'हिंदी का लोकवृत्त' नाम से प्रकाशित हो चुका है। इस पुस्तक की भूमिका में फ्रांचेस्का लिखती हैं, "1920 के दशक में साहित्यिक और राजनीतिक कार्यकर्ताओं, सार्वजनिक स्थानों और संस्थाओं, छपे हुए शब्द के बाजार और साहित्यिक-राजनीतिक पाठक-श्रोतावर्ग के परिमाणगत विस्तार ने एक गुणात्मक विकास भी पैदा किया।"[2]

भूमंडलीकरण जब शुरू हो रहा था तो भारतीय चिंतक दत्तोपंत ठेंगड़ी जी कहा करते थे कि भूमंडलीकरण के जरिए सिर्फ आर्थिक बदलाव ही नहीं आएगा, बल्कि उसके साथ भारतभूमि सांस्कृतिक बदलाव की भी भागीदार बनेगी। भूमंडलीकरण की व्यवस्था के विरोध के पीछे यह चिंता भी थी। लेकिन जैसे-जैसे भूमंडलीकरण ने अपने कदम आगे बढ़ाए, भारत ने आर्थिक मोर्चे पर गाथाएं लिखनी शुरू कीं, भूमंडलीकरण को लेकर रही चिंताएँ किनारे होती चली गई

भूमंडलीकरण जब शुरू हो रहा था तो भारतीय चिंतक दत्तोपंत ठेंगड़ी जी कहा करते थे कि भूमंडलीकरण के जरिए सिर्फ आर्थिक बदलाव ही नहीं आएगा, बल्कि उसके साथ भारतभूमि सांस्कृतिक बदलाव की भी भागीदार बनेगी। भूमंडलीकरण की व्यवस्था के विरोध के पीछे यह चिंता भी थी। लेकिन जैसे-जैसे भूमंडलीकरण ने अपने कदम आगे बढ़ाए, भारत ने आर्थिक मोर्चे पर गाथाएं लिखनी शुरू कीं, भूमंडलीकरण को लेकर रही चिंताएँ किनारे होती चली गई। ऐसे में भारत भूमि पर भी वैश्वीकरण खुलकर अपना पाँव फैलाता चला गया। इस संदर्भ में अगर भूमंडलीकरण के भाषाई प्रकाशनों पर ध्यान देते हैं तो उसका अलग ही रूप देखते हैं।

भूमंडलीकरण के दौर में विकसित भाषाई पत्रकारिता को दो हिस्सों में बाँट सकते हैं। पहले हिस्से में 1991 से लेकर 2014 तक की पत्रकारिता को रखा जा सकता है। जबकि दूसरे हिस्से में 2014 के बाद की पत्रकारिता की चर्चा की जानी चाहिए। चाहे 2014 के पहले की भाषाई पत्रकारिता हो या फिर राष्ट्रीय राजनीतिक परिदृश्य में नरेंद्र मोदी के उभार के बाद की कलमकारी, दोनों में एक चीज समान नजर आती है। पत्रकारिता का पूरा ध्यान आर्थिक कमाई पर केंद्रित रहा है। मूल्य रचने या मूल्यों के साथ जीने और मरने की जिजीविषा लगातार कम होती गई है। अखबारों के पृष्ठ लगातार रंगीन हुए हैं, उनकी छपाई सुधरी है। अखबारों में काम करने वाले लोगों का अपने पूर्ववर्ती समधर्मियों की तुलना में वेतन भी अच्छा हुआ है। लेकिन अखबारों के पन्नों से वे पारंपरिक मूल्य लगातार छीजते गए हैं, जिन्हें हिंदी पत्रकारिता ने अपने 190 साल की यात्रा में अर्जित किए थे। (हिंदी का पहला पत्र उदंत मार्तण्ड कोलकाता से 1830 में निकला था।) बाबू राव विष्णुराव पराड़कर के शब्दों में कहें तो अखबारों की सुंदरता तो बढ़ी, लेकिन उनमें प्राणहीनता भी बढ़ी है। इसे वरिष्ठ पत्रकार राम बहादुर राय के शब्दों में इस तरह समझा जा सकता है। रामबहादुर राय की नजर में यह पत्रकारिता का नैतिक पतन है। अपने निबंध 'हिंदी पत्रकारिता: आचार और व्यवहार' में श्री राय कहते हैं, "अखबारों का प्रसार बढ़ा है। वह करोड़ों में पहुंचा है...पर उन अखबारों में सामाजिक सरोकार कहाँ है? यह खोजना पड़ता है, क्योंकि पाठक उपभोक्ता मान लिए गए हैं। इन अखबारों ने हिंदी को भी बिगाड़ा है।"[3]

भूमंडलीकरण और उसके जरिए आए उदारीकरण को लेकर एक अवधारणा स्थापित हो चुकी है, वह कि जिंदगी का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक हितों को बढ़ाना और मजबूत आर्थिक सुरक्षा हासिल करना है। इस सोच का असर भूमंडलीकरण के दौर की भाषाई पत्रकारिता पर खूब नजर आता है। दिलचस्प यह है कि नए दौर के इस मूल्य को स्वीकार करने और पारंपरिक मूल्यों को नकारने में वेपत्र भी आगे रहे, जिनकी स्थापना ही स्वाधीनता की लड़ाई और उसके मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए हुई थी। 1920 में वाराणसी के विख्यात स्वाधीनता सेनानी शिवप्रसाद गुप्त ने राष्ट्रीय विचारधारा के प्रचार-प्रसार के साथ ही भारतीय मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए काशी 'दैनिक आज' अखबार निकालना

शुरू किया। आजादी के पहले तक यह अखबार राष्ट्रीय आंदोलन की आवाज बना रहा, लेकिन आजादी के बाद विशेष तौर पर पिछली सदी के नब्बे के दशक के बाद उसमें भी स्वाधीनता आंदोलन के मूल्यों से विचलन दिखने लगता है। यहाँ शिवप्रसाद गुप्त के नाती और बाद के दौर में आज अखबार के प्रकाशक एवं संपादक रहे सत्येंद्र कुमार गुप्त से जुड़ा एक किस्सा याद किया जाना चाहिए। जब भी इसकी चर्चा आज अखबार के स्वर्णिम दिनों और मूल्य आधारित पत्रकारिता की अब भी आज अखबार के कर्मचारियों-पत्रकारों के बीच प्रचलित है। एक बार प्रेस में जाने से पहले अखबार के फाइनल पृष्ठ को देखने प्रोडक्शन कक्ष पहुँचे सत्येंद्र गुप्त ने जब अखबार के मुखपृष्ठ पर बड़े विज्ञापन को देखा तो उन्होंने संपादकों से पूछ लिया था कि 'आज' अखबार को पाठक क्या मुख्य पृष्ठ पर विज्ञापन पढ़ने के लिए खरीदते हैं। जाहिर है कि इसका संतोषजनक जवाब अखबार के पत्रकारों और विज्ञापन विभाग के अधिकारियों के पास नहीं था। कहना न होगा कि सत्येंद्र गुप्त ने उस विज्ञापन को मुखपृष्ठ से हटवा दिया था। लेकिन उदारीकरण की आँधी में अब वही 'आज' अखबार निस्तेज नजर आ रहा है। उसने भी कमाई के लिए कई रास्ते अपना रखे हैं।

लॉस एंजेल्स टाइम्स के मालिक ने घोषणा की थी, "अमेरिकी समाचार पत्र प्रकाशन की अर्थव्यवस्था विज्ञापन पर आश्रित है, इसकी बिक्री पर नहीं।" तब से दुनिया भर में मान लिया गया है कि अखबारों की मूल आय विज्ञापन ही है। इससे भारतीय अखबार भी अलग नहीं हैं, लिहाजा भारत का भाषाई मीडिया भी लगातार विज्ञापनों की बाट जोहता रहा है। हालांकि हकीकत में अखबार को बुनियादी रूप से पाठकोन्मुखी उत्पाद माना जाता रहा है। इस वजह से अखबारों में विज्ञापन और समाचार-विचार सामग्री के बीच संतुलित संबंध बनाने की कोशिश हुई है। जिसे चालीस और साठ फीसद के संतुलित अनुपात में रखने का मानदंड स्वीकार किया गया। लेकिन उदारीकरण में यह अनुपात लगातार गिरता गया है। अखबार इस मानदंड को पालन करने से लगातार बचते रहे हैं। कभी-कभी तो अखबार विज्ञापनों का ढेर तक नजर आने लगते हैं।

देश में पत्रकारिता के पहले विश्वविद्यालय, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता और संचार विश्वविद्यालय के कुलपति और जनसत्ता के कार्यकारी संपादक रहे अच्युतानंद मिश्र कहा करते हैं कि आज के दौर में अखबार समाचारों के लिए नहीं निकाले जाते, बल्कि विज्ञापन के लिए प्रकाशित होते हैं। हास्य में तो पत्रकारिता में यह कहावत ही कही जाती है कि विज्ञापनों से बची जो जगह है, वही समाचार है।

भारत की समाचार पत्र क्रांति में रॉबिन जेफ्री कहते हैं, "1994 तक क्षेत्रीय अर्थात् भारतीय भाषाओं में विज्ञापनों के नए अवसर सामने आए और एजेंसियाँ, लेखकों की कमी का रोना रोने लगीं। अपना सामान बेचने के क्रम में लोगों के सामने यह बात आई कि क्षेत्रीय भाषाओं का उपयोग करके ही कस्बों और गांवों में सामान बेचे जा सकते हैं।"[4] भूमंडलीकरण के दौर में भाषाई मीडिया के लिए यह सोच कारगर साबित हुई। इसका असर यह हुआ कि भाषाई अखबारों में अपना सर्कुलेशन बढ़ाने पर जोर बढ़ा। इसमें बढ़ती साक्षरता दर ने भी भूमिका निभाई। रॉबिन जेफ्री कहते हैं, "ज्यादा से ज्यादा विज्ञापन प्राप्त करने के लिए अखबारों की प्रसार संख्या बढ़ाने की होड़ मच गई और अखबारों ने अपने बल पर विज्ञापन बनाया और जुटाया।"[5]

आजादी के दौरान से लेकर कुछ काल बाद तक हिंदी पत्रकारिता को जूट पत्रकारिता कहा जाता था। इसकी वजह यह थी कि हिंदी के ज्यादातर बड़े प्रकाशनों के मालिकों का मूल व्यवसाय जूट उद्योग था। चाहे हिंदुस्तान टाइम्स समूह हो या फिर इंडियन एक्सप्रेस या फिर टाइम्स ऑफ इंडिया समूह, सबकी कमाई के मूल स्रोत जूट उद्योग थे। जूट प्रेस कहकर हिंदी पत्रकारिता का एक तरह से मजाक उड़ाया जाता था। माना जाता था कि हिंदी प्रेस ज्यादातर जूट उद्योग के हितों की रक्षा करता है। यहाँ यह कहना अनुचित नहीं होगा कि उदारीकरण के दौर में हिंदी ही नहीं, भाषाई पत्रकारिता ने जो आचार-व्यवहार स्वीकार किया, उसके आगे यह उलाहना भी फीका पड़ गया। उदारीकरण के दौर में उसके द्वारा स्थापित मूल्यों को आत्मसात करने में हिंदी अखबारों ने उन अंग्रेजी अखबारों तक मात दे दिया है, जिनकी माटी से ही उदारीकरण की शुरूआत हुई है। उदारीकरण और भूमंडलीकरण को बढ़ावा देने में अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन और ब्रिटेन की पूर्व प्रधानमंत्री मार्गरेट थैचर की भूमिकाएँ बेहद महत्वपूर्ण रही हैं। दोनों का कार्यकाल लगभग साथ-साथ रहा। 1990 में सोवियत संघ के विघटन और शीतयुद्ध के खात्मे के बाद दोनों ने वैश्विक अर्थव्यस्था को उदारीकरण के चक्के में बाँधने का अभियान छेड़ दिया था। इसी वजह से भूमंडलीकरण और उदारीकरण की व्यवस्था को रीगन-थैचर व्यवस्था भी कहा जाता है। अमेरिका में एक अखबार है, लॉस एजेंल्स टाइम्स। मौजूदा सदी के पिछले दशक में उसने अपने यहाँ प्रयोग शुरू किया। आर्थिक उदारीकरण के लिहाज से देखें तो वह क्रांतिकारी कदम था। अखबार के प्रबंधन ने अखबार के हर पृष्ठ के प्रभारी के साथ विज्ञापन विभाग के एक अधिकारी को जोड़कर दोनों को अपने पृष्ठ को कमाई का बेहतर स्रोत बनाने का लक्ष्य दिया। इस व्यवस्था में अखबार प्रबंधन ने आगे बढ़कर अपने संपादकीय पृष्ठ पर भी ऐसी व्यवस्था लागू कर दी। अव्वल तो उदारीकरण की

अखबारों की मूल आय विज्ञापन ही है। इससे भारतीय अखबार भी अलग नहीं हैं, लिहाजा भारत का भाषाई मीडिया भी लगातार विज्ञापनों की बाट जोहता रहा है। हालांकि हकीकत में अखबार को बुनियादी रूप से पाठकोन्मुखी उत्पाद माना जाता रहा है। इस वजह से अखबारों में विज्ञापन और समाचार-विचार सामग्री के बीच संतुलित संबंध बनाने की कोशिश हुई है

धरती अमेरिका पर इसका समर्थन होना चाहिए था। लेकिन अमेरिकी पत्रकारिता जगत इसके खिलाफ मुखर हो उठा। उसका तर्क था कि विज्ञापनों के दबाव में हर पृष्ठ पर विज्ञापनदाता की मनचाही खबरें छपेंगी। इसी व्यवस्था के तहत अखबार के संपादकीय पृष्ठ पर भी विज्ञापनदाता को मुफीद लगने वाले ही विचार या लेख छपेंगे। फिर इसमें अमेरिकी सामाजिक मूल्य और अखबार की अपनी नीति कहाँ होगी? कहना न होगा कि लॉस एंजेल्स टाइम्स प्रबंधन कम से कम संपादकीय पृष्ठ से यह व्यवस्था हटाने के लिए मजबूर हो गया। लेकिन हिंदी पत्र तो इससे भी आगे निकल गए हैं। कोलकाता के एक बहुप्रसारित हिंदी अखबार के संपादकीय पृष्ठ पर तो अक्सर निविदा के विज्ञापन तक छपते हैं। मध्य भारत में प्रतिष्ठित रहे एक अखबार से पहले कभी-कभार संपादकीय पृष्ठ गायब होता था, लेकिन अब तो लगभग पूरी तरह ही गायब हो गया है।

यह उदाहरण प्रस्तुत करने का यह भी मतलब नहीं है कि हिंदी अखबारों में विज्ञापनदाता अपना असर नहीं डालते। हिंदी में भी विज्ञापनदाता का प्रभाव कमोबेश हर पृष्ठ पर नजर आता है। इसमें बड़े कारपोरेट हाउस भी शामिल हैं और सरकारें भीं। इसके बावजूद यदा-कदा अखबारों में विज्ञापनदाता की सोच से इतर सामग्री छपती भी है तो इसकी वजह होता है अखबार व्यवसाय का मूल चरित्र। अभी तक हिंदी अखबारों में यह ताकत नहीं आई है कि वे खुलकर कह सकें कि उनका अखबार विज्ञापनदाता के लिए ही निकलता है। अखबार के पारंपरिक चरित्र की वजह से अखबारों या चैनलों के प्रोमोटर मजबूरी में कहते हैं कि उनके अखबार या चैनल की सबसे बड़ी पूँजी उसके पाठक और दर्शक हैं। वैसे भी अगर अखबार के पाठक या चैनल के दर्शक नहीं होंगे तो अपना सामान बेचने के लिए विज्ञापनदाता कहाँ जाएगा।

उदारीकरण के बाद के दौर में हिंदी मीडिया अमेरिकी मूल्यों को परोसने में पूरी तरह रच-बस गया है। हिंदी मीडिया की पड़ताल करने से पता चलता है कि उसमें यह बदलाव 11 सितंबर 2001 को न्यूयॉर्क के ट्विन टॉवर पर हुए आतंकी

हमले के बाद आतंकवाद के विरोध में तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश जूनियर के वैश्विक युद्ध की घोषणा के बाद ज्यादा दिखता है। तब अमेरिकी सरकार और उसके सूचना तंत्र ने स्थापित किया कि अमेरिकी व्यवस्था, संस्कृति और सोच ही श्रेष्ठ है। इसके जरिए एक वर्चस्ववादी व्यवस्था स्थापित हुई और इसके चक्कर में हिंदी मीडिया भी नजर आता है। प्रसिद्ध मीडिया चिंतक नॉम चोम्स्की इसे अपने ढंग से पारिभाषित करते हैं। उन्होंने 19 फरवरी 2002 को जेडनेट वेबसाइट को दिए एक साक्षात्कार में कहा था, "हमारी (अमेरिकी) संस्कृति, उच्च संस्कृति है। ऐसा सभी सोचते हैं। एक तरह से यह दबाने की संस्कृति है।" भूमंडलीकरण के दौर में जिस तरह भाषाई मीडिया में आह अमेरिका- वाह अमेरिका की संस्कृति व्याप्त हुई है, उसके पीछे अमेरिकी माध्यमों और सरकारी तंत्र की यह सफल कोशिश ही है। हालांकि इस मायने में बाकी भारतीय भाषाओं का मीडिया कुछ अलग दिखता है। उसके यहाँ अमेरिका का गुणगान तो है, लेकिन अपनी उपराष्ट्रीय संस्कृति की कीमत पर नहीं।

1925 के वृंदावन के संपादक सम्मेलन में पराड़कर जी ने कहा था, "पत्र बेचने के लाभ से अश्लील समाचारों को महत्व देकर तथा दुराचरणमूलक अपराधों का चित्ताकर्षक वर्णन कर हम परमात्मा की दृष्टि में अपराधियों से भी बड़े अपराधी ठहर रहे हैं, इस बात को कभी न भूलना चाहिए। अपराधी एकाध अत्याचार करके दण्ड पाता है और हम सारे समाज की रूचि बिगाड़ कर आदर पाना चाहते हैं।"[6] हिंदी या भारतीय मीडिया के लिए यह स्वाधीनता आंदोलन की दृष्टि थी। लेकिन भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी ही नहीं, पूरे भारतीय मीडिया ने इसे फैशन मान लिया। उसे अपनी उस सोच से ही पीछे हटने का अफसोस नहीं हुआ, जिसे वह पिछली सदी के नब्बे के दशक में सतही मानकर नकार चुका था। उदारीकरण के ठीक पहले से उसकी शुरूआत के कुछ काल तक हिंदी का सर्वाधिक प्रसार वाला अखबार पंजाब केसरी था। तब उसके मुखपृष्ठ पर अर्धनग्न हीरो-हीरोइनों के फोटो खूब छपते थे। तब इसे प्रसार का घटिया हथकंडा माना जाता था। यह अलग बात है कि भूमंडलीकरण के बाद के दौर में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने अपना प्रसार बढ़ाने के लिए इसी प्रवृत्ति को स्वीकार करने में हिचक नहीं दिखाई। ऑस्ट्रेलियन मीडिया चिंतक रॉबिन जेफ्री इस प्रवृत्ति को अपने अध्ययन 'भारत में समाचर पत्र क्रांति' में 'हिंदी प्रेस का पंजाबकेसरीकरण' कहते हैं।

हिंदी पत्रकारिता के पंजाबकेसरीकरण के दौर में अखबारों में घटिया विषयों का प्रचलन बढ़ा। नग्न-अर्धनग्न तसवीरों से लेकर सामान्य शयनकक्ष के गोपन विषयों पर अखबारों के पन्नों में खुलकर लिखा जाने लगा। हिंदी मीडिया को भूमंडलीकरण

की एक देन यह भी है। भूमंडलीकरण ने घटिया विषयों को भी खुलकर लिखने का मौका दिया, जो कभी छुपकर बेची और पढ़ी जाने वाली पत्रिकाओं के विषय थे। वरिष्ठ पत्रकार सुशील त्रिवेदी इस विषय पर अपने निबंध 'बाजार की पत्रकारिता बनाम पत्रकारिता का बाजार' में बखूबी प्रकाश डालते हैं। उनका कहना है, "पत्रकारिता की नैतिकी के पतन के साथ ही पत्रकारिता में आने वाले विषयों के चयन में घटियापन आया और इस तरह चुने गए विषयों की अभिव्यक्ति के लिए अपनाई जाने वाली भाषा भी घटिया होने लगी।...पत्रकारिता में भाषाई संस्कार को अनदेखा किया जाने लगा।"[7] भूमंडलीकरण के दौर में पाठकों को सोचने-समझने वाले विचारवान मानव मानने से ज्यादा उन्हें उपभोक्ता मानने की प्रवृत्ति बढ़ी। इस सोच को आगे बढ़ाने में टाइम्स ऑफ इंडिया समूह के उपाध्यक्ष समीर जैन की मुखर भूमिका रही। वे खुलकर कहते भी हैं कि अखबार विज्ञापन के लिए निकलते हैं। समीर जैन अखबार को बाकायदा प्रोडक्ट यानी उत्पाद मानते हैं। इसका असर उनके अखबारों की प्रिंटलाइन में भी दिखता है, जहाँ प्रकाशन की घोषणा वाले स्तंभ में प्रकाशक, मुद्रक और संपादक के लिए खास बाजार और प्रोडक्ट के प्रकाशक, संपादक और मुद्रक के तौर पर प्रस्तुत किया जाता है। चूँकि टाइम्स समूह की स्थिति अगुआ की है, लिहाजा भूमंडलीकरण के दौर में उसकी सोच हिंदी के दूसरे अखबारों पर भी दिखती है। उपभोक्तावाद की सोच का असर हिंदी के साथ खिलवाड़ के रूप में भी नजर आता है। रामबहादुर राय कहते हैं कि हिंदी अखबारों ने हिंदी को भी बिगाड़ा है। भूमंडलीकरण के दौर ने अंग्रेजी की ताकत को और बढ़ाया ही है। हालांकि स्थानीय बोध ने अपनी भाषाओं को लेकर सम्मान बोध भी बढ़ाया है। फिर भी कुछ अखबारों ने हिंदी के साथ अंग्रेजी के शब्दों को जबरदस्ती ठूंसने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है। हालांकि यह प्रवृत्ति दूसरे भाषाई अखबारों में नहीं दिखती। बांग्ला, मराठी, मलयालम, तमिल, कन्नड़ आदि में तो अपनी संस्कृति और अपनी भाषा के प्रति आग्रह कुछ ज्यादा ही नजर आता है। वैसे हिंदी मीडिया अपने यहाँ हिंग्लिश को बढ़ावा देने के लिए दिलचस्प तर्क देता है, उसका कहना है कि चूँकि यह युवाओं को पसंद है, लिहाजा वे इसे पाप्युलर कल्चर के तौर पर स्वीकार कर रहे हैं।

उदारीकरण के पहले भाषाई पत्रकारिता राष्ट्रीयता के धागे को मजबूत बनाने का आधार रही है। हालांकि वह आधार उदारीकरण के दौर में किंचित कमजोर होता नजर आ रहा है। अमेरिकी लेखक सेलिंग हैरिसन ने 1960 के दशक में एक अवधारणा दी थी।[8] हैरिसन की उस अवधारणा के मुताबिक जैसे-जैसे भारत में शैक्षिक स्तर बढ़ेगा, भारतीय राष्ट्र राज्य के लिए खतरा बढ़ेगा। उन्होंने लिखा था, "भारत में अपकेंद्रीय और अभिकेंद्रीय शक्तियाँ बारी-बारी से वर्चस्व स्थापित करेंगी। जिसके परिणामस्वरूप उथल-पुथल की आशंका है। इसमें ज्यादा से ज्यादा नुकसान आजादी के अस्तित्व को होगा और इन सर्वाधिक खतरनाक दशकों में यह मुद्दा अहम होगा कि क्या भारतीय राज्य का अस्तित्व सुरक्षित रह पाएगा।"[9] दरअसल हैरिसन को लगता था कि भारत में साक्षरता बढ़ने के साथ ही भारतीय समाज की ताकतें चेतन होंगी और अपनी अतीत की ग्रंथियों के चलते राष्ट्र को नुकसान पहुंचाएंगी। लेकिन इसका ठीक उलटा हुआ। हिंदी समेत भाषाई प्रकाशनों ने भारतीय राजव्यवस्था को मजबूत करने के साथ ही हैरिसन की अवधारणा को खारिज करने में बड़ी भूमिका निभाई। 'भारत की समाचार पत्र क्रांति' में रॉबिन जेफ्री का अध्ययन से भी यह साबित होता है। इस अध्ययन के मुताबिक, जैसे-जैसे भारतीय मीडिया का प्रसार बढ़ा, कम पढ़े-लिखे लोगों तक उसकी पहुँच बढ़ी, वैसे-वैसे लोगों में हैरिसन की सोच के ठीक उलट असर हुआ। समाचार पत्रों की क्रांति के चलते भारतीय राज व्यवस्था मजबूत हुई। रॉबिन जेफ्री अपने अध्ययन की भूमिका में लिखते हैं, "भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों में आई क्रांति ने भारतीय राज्य की एकता को तोड़ने की बजाय जोड़ने का काम किया।"[10]

निश्चित तौर पर इसके पीछे वे मूल्य भी काम करते रहे, जिन्हें फ्रांचेस्का आर्सिनी ने अपने अध्ययन का विषय बनाया था। लेकिन भूमंडलीकरण की आँधी के बाद भाषाई मीडिया के एक वर्ग में इस सोच से विचलन बढ़ने लगता है। कतिपय वामपंथी पत्रकार, लेखक और बुद्धिजीवी कश्मीर में जनमत संग्रह का समर्थन करने लगते हैं, उन्हें नक्सलवादी व्यवस्था में खूनखराबे से ज्यादा प्रगतिशील बदलाव नजर आने लगता है। हालांकि इसका प्रतिकार लोकस्तर पर जारी रहता है। इसलिए हिंदी मीडिया इस बदलाव को आत्मसात उस अंदाज में नहीं कर सका, जिससे हिंदी का सार्वजनिक मूल्य स्वीकार किया जा सके।

चूँकि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के साथ ही टेलीविजन का विस्तार बढ़ा, लिहाजा भाषाई अखबारों ने टेलीविजन के साथ जारी प्रतियोगिता के बीच खुद को प्रासंगिक बनाए और बचाए रखने के लिए टीवी मीडिया के गुणों और अवगुणों को भी खुद में समाहित किया है। रेटिंग प्वाइंट के दबाव में टेलीविजन ने सनसनी पर जोर दिया, सेक्स का तड़का लगाया और सिनेमा के साथ ही अपराध की खबरों पर फोकस किया। जिसे सुशील त्रिवेदी विषयों का घटियापन कहते हैं, वह टेलीविजन में कुछ ज्यादा ही दिखता है। रामबहादुर राय को मीडिया से जो सरोकार गायब नजर आते हैं, दरअसल वह सबसे ज्यादा टेलीविजन में दिखता है।

चूँकि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के साथ ही टेलीविजन का विस्तार बढ़ा, लिहाजा भाषाई अखबारों ने टेलीविजन के साथ जारी प्रतियोगिता के बीच खुद को प्रासंगिक बनाए और बचाए रखने के लिए टीवी मीडिया के गुणों और अवगुणों को भी खुद में समाहित किया है। रेटिंग प्वाइंट के दबाव में टेलीविजन ने सनसनी पर जोर दिया, सेक्स का तड़का लगाया और सिनेमा के साथ ही अपराध की खबरों पर फोकस किया

अंग्रेज समीक्षक ईएम फास्टर ने एक अवधारणा दी है, किसी भी रचना को अंतरराष्ट्रीय बनने के लिए स्थानीय होना पड़ता है। हालांकि भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो यह अवधारणा हजारों साल से विद्यमान है। भारतीय संदर्भ में कहा जाता है कि ज्यादा जड़ों वाला बरगद ही ज्यादा छतनार होता है। बहरहाल उदारीकरण और भूमंडलीकरण में स्थानीय होने के विचार को बढ़ावा मिला

अपनी रचना 'उपन्यास के पक्ष' में अंग्रेज समीक्षक ईएम फास्टर ने एक अवधारणा दी है, किसी भी रचना को अंतरराष्ट्रीय बनने के लिए स्थानीय होना पड़ता है। हालांकि भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो यह अवधारणा हजारों साल से विद्यमान है। भारतीय संदर्भ में कहा जाता है कि ज्यादा जड़ों वाला बरगद ही ज्यादा छतनार होता है। बहरहाल उदारीकरण और भूमंडलीकरण में स्थानीय होने के विचार को बढ़ावा मिला। इसमें विज्ञापन के बाजार ने भी बड़ी भूमिका निभाई। चूँकि अखबारों में स्थानीयता का पुट बढ़ने के बाद उनका प्रसार बढ़ता था, इस नाते उनकी विज्ञापनी आय बढ़ रही थी, लिहाजा उन्होंने स्थानीय होने पर जोर दिया। भूमंडलीकरण के दौर में स्थानीयकरण की शुरूआत कायदे से तेलुगु अखबार इनाडु ने की, जिसने तहसील स्तर तक अपने संवाददाता रखे, उन्हें फैक्स मशीनें मुहैया कराईं। इसके आगे बढ़कर उसने जिला अखबार की कल्पना की। इस परिपाटी को हिंदी में अमर उजाला अखबार ने पहले-पहल स्वीकार किया और इसका असर उसके भी प्रसार पर दिखा। रपटीली और पथरीली राहों के बावजूद वह उत्तराखंड के गाँव-गाँव तक पहुँच गया। कालांतर में इनाडु के इस चलन को समूचे भारतीय भाषाई मीडिया ने स्वीकार किया। बेशक कुछ मीडिया में अंग्रेजी को बढ़ावा मिला, लेकिन स्थानीयकरण की इस आंधी में स्थानीय भाषाई मुहावरों को भी जगह मिली।

1970 के दशक, जिसमें आपातकाल की काली आँधी भी रही, तक हिंदी अखबारों का मूल स्वर राष्ट्रीय भावना रही। लेकिन स्थानीयकरण की होड़ में इसके कमजोर पड़ने की आशंका रही। यद्यपि रॉबिन जेफ्री अपने अध्ययन में पाते हैं कि स्थानीयबोध के बढ़ते दौर में भी भाषाई मीडिया में राष्ट्रवाद बढ़ा। जेफ्री लिखते हैं, "तेलुगु समाचार पत्रों के प्रसार के साथ-साथ एक बात सामने आई कि जहाँ वे अपने को 'भारतीय' कहने में गर्व महसूस करते हैं, वहीं उन्हें अपने तेलुगु होने पर भी गर्व है। तेलुगु समाचार पत्र खुद के लिए कहता है कि यह तेलुगु में छपने वाला भारतीय समाचार पत्र है। वैसे ही मलयालम का अखबार 'मातृभूमि' भी कहता है कि वह मलयालम भाषा में छपने वाला भारतीय समाचार पत्र है।"[11]

इसके बावजूद इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी समेत भारतीय भाषाओं के अखबारों में जहाँ प्राणहीनता बढ़ी, वहीं टेलीविजन पर जबरदस्ती सनसनीखेज समाचार पैदा करने का आरोप लगा। माना जाता है कि चूँकि हिंदी के टेलीविजन चैनलों ने हिंदी सिनेमा की फॉर्मूलेबाजी की तर्ज पर तमाशा संस्कृति को स्वीकार किया, लिहाजा तमाशे के नाम पर उसने तात्कालिक घटनाओं को सनसनीखेज तरीके से प्रस्तुत किया तो कई बार स्टिंग के नाम पर हंगामा खड़ा किया। टेलीविजन के पर्दे पर जीवंतता और सनसनी दिखाने के लिए लगातार प्रायोजित खबरों की खोज भी की गई। 'उदारीकरण, तमाशा कल्चर और हिंदी के खबरिया चैनल' निबंध में इस चलन पर स्पष्ट प्रकाश डाला गया है। इस निबंध में लिखा है, "खबरिया चैनलों पर तमाशावाद का यह असर ही है कि 9 जुलाई 2011 की रात को गुवाहाटी के पब से निकली लड़की से सरेआम छेड़खानी हुई।..वहाँ तमाशा के लिए ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। इसका आरोप एक स्थानीय न्यूज चैनल के संवाददाता पर लगा। 13 अगस्त 2010 को गुजरात के मेहसाणा में एक व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए उकसाने का आरोप टीवी 9 के दो संवाददाताओं पर लगा। दिल्ली में 31 अगस्त 2007 को शिक्षिका उमा खुराना पर अपनी छात्राओं को वेश्यावृत्ति में धकेलने को लेकर फर्जी स्टिंग करने का आरोप भी लगा।"[12] इसी निबंध में नवंबर 2007 में वाराणसी में कुछ चैनलों के स्थानीय संवाददाताओं पर आरोप लगा कि उन्होंने कुछ दिव्यांगों को आत्महत्या के लिए उकसाया।

भूमंडलीकरण का एक और उपहार है- यह सोच कि हर चीज बिकाऊ है और भव्यता बिकाऊ बनने में मददगार होती है। लिहाजा टेलीविजन चैनलों ने फिल्मकार संजय लीला भंसाली के सेटों की तरह भव्यता को स्वीकार किया। इस सोच के तहत सेट तो बेहतर बनाए जाने लगे, लेकिन समाचारों से मुद्दे और सरोकार गायब होने लगे। चूँकि मुद्दे रहे नहीं, लिहाजा तमाशा संस्कृति पर जोर रहा। ऐसे में सरोकार भला कहाँ टिकते। यह बात और है कि जब सामाजिक दबाव बढ़ना शुरू हुआ तो चैनलों को सरोकारों की रस्म अदायगी करने के लिए दिखावा करना पड़ा। हालाँकि मौजूदा दौर सूचना क्रांति का है। लिहाजा सूचनाएँ अबाध गति से कई माध्यमों से दर्शकों और पाठकों तक लगातार पहुँच रही हैं। इसलिए दर्शक और पाठक भी मानते हैं कि चैनल या अखबार उनके सामने या तो रस्म अदायगी कर रहे हैं या फिर खानापूरी।

उदारीकरण के दौर में विकसित समाचार टेलीविजन चैनलों की इस सरोकारहीनता के लिए माना जाता है कि इसके लिए उनका आर्थिक ढाँचा जिम्मेदार है। माना जाता है कि चूँकि उनकी कमाई दर्शकों के बजाय विज्ञापनों के जरिए होती है और विज्ञापन टेलीविजन रेटिंग प्वाइंट पर टिका है, लिहाजा वे वही चीजें दिखाने को बाध्य हैं, जो कथित तौर पर टीआरपी रेटिंग देने वाले दर्शकों को पसंद आए। मीडिया पत्रिका 'आंचलिक पत्रकार' के नवंबर 2020 के अंक में प्रकाशित निबंध 'टीआरपी की माया' में इस पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इसमें कहा गया है, "भारत में करीब 912 टेलीविजन चैनल हैं, जिनमें 384 समाचार चैनल हैं, जबकि 528 चैनल सामान्य मनोरंजन की श्रेणी के हैं। भारत

में मीडिया के विज्ञापन का बाजार करीब 25.7 अरब डॉलर हो गया है। टीवी के विज्ञापन बाजार की हिस्सेदारी इसके आधे से कुछ ही कम यानी 12.93 अरब डॉलर की है। ब्राडकास्ट ऑडियंस रिसर्च यानी बार्क के मुताबिक रूपए में यह रकम करीब 32 हजार करोड़ है। पश्चिम में टेलीविजन चैनलों की कमाई का साठ फीसद हिस्सा जहाँ ग्राहकों से हासिल शुल्क और चालीस फीसद हिस्सा विज्ञापन से आता है। इसीलिए वहाँ कार्यक्रमों के निर्माण पर उपभोक्ताओं की रुचि और लोकवृत्त के मूल्यों को ध्यान में रखना पड़ता है।"[13]

इसी लेख में बताया गया है कि भारत में चैनलों की कमाई का कुछ ही हिस्सा ग्राहकों से हासिल सब्सक्रिप्शन शुल्क से आता है। भारत में सिर्फ 326 चैनल ही पे चैनल हैं, जिनके लिए सब्सक्रिप्शन फीस चुकानी होती है। जबकि 584 चैनल फ्री टु एयर हैं। भारत में टेलीविजन चैनलों की रेटिंग मापने वाली ब्रॉडकास्ट ऑडियंस रिसर्च यानी बार्क के मुताबिक भारत में टेलीविजन विज्ञापन का बाजार 32 हजार करोड़ का है। जिस पर कब्जे के लिए टेलीविजन चैनलों में स्तरहीनता की होड़ चलती रहती है। मौजूदा व्यवस्था में जिसकी ज्यादा टीआरपी होती है, उसे ही ज्यादा और महंगे विज्ञापन मिलते हैं। इसलिए हर चैनल टीआरपी हासिल करने के लिए लगातार जुटा रहता है।"

कहना न होगा कि इस होड़ में सरोकार कहीं पीछे छूट जाते हैं और बाजार हावी हो जाता है। बाजार जब हावी होता तो कंटेंट की परवाह भी नहीं रहती। चूँकि चैनलों के उभार के दौर में अखबारों को अपने प्रसार के घटने का डर सताने लगा था, लिहाजा उन्होंने टेलीविजन से ना सिर्फ कंटेंट के स्तर पर होड़ शुरू की, बल्कि उसकी साज-सज्जा को भी बढ़ाने पर जोर देना शुरू किया। इसका असर यह हुआ कि भूमंडलीकरण के दौर में सबसे ज्यादा फोकस कमाई पर भी बढ़ाया। चाहे टेलीविजन हो या अखबार, आर्थिक पक्ष को मजबूत करना जरूरी तो है, लेकिन इतना भी जरूरी नहीं कि अखबार या टेलीविजन का कंटेंट पक्ष और अखबार के सामाजिक सरोकार पीछे छूट जाएँ।

भूमंडलीकरण के दौर में भाषाई मीडिया में प्रवृत्तिगत बदलाव भी नजर आता है। 1991 से 2014 तक के दौर में मीडिया सरोकारी चिंताओं को पीछे छोड़ता नजर आता है, साहित्य उसके पृष्ठों से गायब होता गया है। उसका ज्यादा जोर बाजार की अपसंस्कृति और अश्लीलता के साथ फूहड़ता को प्रस्तुत करने पर दिखता है, वहीं वह सामाजिक और राजनीतिक तौर पर राजनीति के मुहावरों में बोलता भी नजर आता है। कृष्ण बिहारी मिश्र अपनी पुस्तक 'पत्रकारिता, इतिहास और प्रश्न' में कहते हैं, "आज का पत्रकार राजनीति और राजसत्ता का अनुकूल्य उपलब्ध करने के लिए उनके मुहावरे में बोलने लगा है। उपभोक्ता संस्कृति के अभिशाप को लक्ष्य कर राजनेताओं की तरह आवाज टेरने वाले पत्रकार स्वयं व्यावसायिक चाक चिक्य के प्रति सतृष्ण हो गए हैं और उपभोक्ता संस्कृति ही इनकी संस्कृति बनती जा रही है।"[14]

साभार : http://mediacultureandglobalization.yolasite.com/

बात यहीं तक होती तो गनीमत होती, लेकिन 2014 के बाद के दौर की भाषाई पत्रकारिता एक और ही रंग में नजर आ रही है। पश्चिमी विचारक इस दौर की पत्रकारिता को पोस्ट ट्रुथ यानी सच के बाद की पत्रकारिता कहते हैं। वाम विचारकों ने सोची-समझी रणनीति के तहत इस दौर की पत्रकारिता को मौजूदा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से प्रभावित या फिर उनके इशारे पर काम करने वाली केवल बताया ही नहीं, बल्कि इस अवधारणा को एक हद तक स्थापित भी कर दिया। यह भी मान लिया गया कि मोदी के इशारे पर मीडिया वही लिख, बोल या दिखा रहा है, जो केंद्र सरकार चाहती है। इसके बावजूद यह भी सच है कि मीडिया के दोनों रूपों में पोस्ट ट्रुथ दौर में मौजूदा सरकार का विरोध के लिए विरोध भी ज्यादा नजर आता है।

इस पूरी मीमांसा में एक और तथ्य पर ध्यान देने की जरूरत है। उदारीकरण के बाद 'आजादी बचाओ', 'स्वदेशी जागरण मंच' और 'जीन कैंपेन' जैसे आंदोलन और अभियान चले। इनका एक ही मकसद था, पारंपरिक भारतीय व्यवस्था, ज्ञान और कृषि परंपरा के साथ ही कुटीर उद्योगों को बचाना। इसका असर यह हुआ कि इन आंदोलनों के चरम दिनों में इन्हें मीडिया के हर रूपों का सहयोग मिला। लेकिन जैसे-जैसे उदारीकरण के जरिए आर्थिक चमक बढ़ने लगी, इन आंदोलनों के मूल्यों की मीडिया में तवज्जो घटने लगी। हालांकि जब भारतीय ज्ञान परंपरा, आयुर्वेद, योग, देसी भोजन, देसी पहनावा और जैविक उत्पादों को भव्य पैकेजिंग में आधुनिक उदारीकृत व्यवस्था के अंग के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा तो उन्हें तवज्जो मिलने लगी।

भाषाई मीडिया में आए इस बदलाव को सहज वृत्ति मानकर आसानी से स्वीकार नहीं किया जा सकता। पत्रकारिता के मूल में

चूँकि अपने समय और समाज की घटनाओं को सार्वजनिक मूल्यों के निकष पर चीरफाड़ कर देखने की प्रवृत्ति समाहित है, इसलिए भूमंडलीकरण के साथ-साथ पत्रकारिता में जो विचलन आए हैं, उनकी मीमांसा होती रहेगी। भारत में संवाद की जो परंपरा रही है, आधुनिक पत्रकारिता एक अर्थ में उसी का विस्तार है। लिहाजा भारतीय परंपरा की तरह उसका एक उद्देश्य 'कीरति भनिति भूति भल सोई। सुरसरि सम सबकर हित होई' की तरह सबका हित चिंतन भी है। इस चिंतन में समय के खलनायकों का उद्घाटन करना अपने-आप समाहित हो जाता है, इसलिए भूमंडलीकरण के दौर में पत्रकारिता में आए इन बदलावों, जिनमें विचलन ज्यादा है पर सवाल उठाना ही होगा।

भूमंडलीकरण के दौर में भाषाई पत्रकारिता पर नजर डालते हैं तो पता चलता है कि दत्तो पंत ठेंगड़ी भूमंडलीकरण के साथ उसके साथ आने वाली जिस अपसंस्कृति को आते देख रहे थे, उससे मीडिया अछूता नहीं रह सका। उसने पारंपरिक भारतीय मूल्यों को तिलांजलि देने में हिचक भी नहीं दिखाई। हिंदी टेलीविजन की दुनिया तमाशा संस्कृति के साथ सेक्स, सिनेमा, क्राइम और सनसनी की खुराक पर आगे बढ़ रही है। चूँकि खबरिया चैनलों की दुनिया में भाषाई पत्रकारिता के लिए हिंदी मीडिया ही अगुआ की भूमिका में है, लिहाजा उसकी सोच का असर पूरे भाषाई समाचार चैनलों पर स्पष्ट नजर आता है। पिछली सदी के नब्बे के दशक में टेलीविजन को बुद्धू बक्सा कहा गया था। उस बुद्धू बक्से ने चमक-दमक को आत्मसात तो किया, लेकिन उससे मूल्य

उदारीकरण के दौर में टेलीविजन मीडिया विकसित हुआ, संचार क्रांति ने इसमें सहयोगी भूमिका निभाई, लिहाजा वही इस दौर का प्रमुख मीडिया माध्यम बना। आज भारतीय बौद्धिकी हो या आर्थिकी या राजनीति, सबकी दिशा टेलीविजन तय कर रहा है। इसके साथ प्रतियोगिता में बने रहने के लिए अखबारों ने भी अपनी मर्यादा में ही टेलीविजन बनने की कोशिश की है। इस परंपरा में उन्होंने आपाधापी वाले मीडिया माध्यम टेलीविजन के ही मूल्य आत्मसात किए हैं

गायब होते गए। उसके जरिए भारतीय ड्राइंग रूम में वे सारे मूल्य घुसते गए, जिनका सार्वजनिक पारिवारिक विमर्श तीन-चार दशक पहले तक वर्जित था। फूहड़ता की संस्कृति को मुख्यधारा की संस्कृति के रूप में स्थापित करने में इस मीडिया ने सफल भूमिका निभाई है। अब तो स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि फूहड़ता पर सवाल उठाना ही पिछड़ेपन की निशानी बन गया है।

चूँकि उदारीकरण के दौर में टेलीविजन मीडिया विकसित हुआ, संचार क्रांति ने इसमें सहयोगी भूमिका निभाई, लिहाजा वही इस दौर का प्रमुख मीडिया माध्यम बना। आज भारतीय बौद्धिकी हो या आर्थिकी या राजनीति, सबकी दिशा टेलीविजन तय कर रहा है। इसके साथ प्रतियोगिता में बने रहने के लिए अखबारों ने भी अपनी मर्यादा में ही टेलीविजन बनने की कोशिश की है। इस परंपरा में उन्होंने आपाधापी वाले मीडिया माध्यम टेलीविजन के ही मूल्य आत्मसात किए हैं। इस पूरी प्रक्रिया में उन्हें भी पारिवारिक और सार्वजनिक विमर्श से दूर रहने वाले विषयों पर विमर्श करने से परहेज नहीं रहा। बेशक समाज में उतने गहरे बदलाव नहीं आए हैं, जैसा टेलीविजन या अखबार दिखाते-पढ़ाते हैं। लेकिन यह भी सच है कि अपनी व्यापक पहुँच के चलते वे प्रभावित भी कर रहे हैं। इसका असर यह हुआ है कि नग्नता की ऐसी संस्कृति विकसित हो चुकी है, जिसे फैशन और आधुनिकता का पर्याय माना जाने लगा है। भूमंडलीकरण के दौर में मीडिया ने मूल्यहीनता को इस कदर स्वीकार किया है कि नई पीढ़ी इस मूल्यहीनता को ही मूल्य मानने लगी है। पारिवारिक और सामाजिक मूल्य किनारे होते चले गए हैं। फ्रांचेस्का आर्सिनी जिसे हिंदी का लोकवृत्त कहती हैं, वह भूमंडलीकरण के दौर में पीछे छूटता चला गया है। लेकिन हजारों साल की भारतीय संस्कृति के लिए यह चिंता की बात है। इसकी तरफ समाज के जिम्मेदार लोगों को आगे आना पड़ेगा। पारंपरिक भारतीय सांस्कृतिक, सामाजिक और पारिवारिक मूल्यों की स्थापना के लिए यत्न करने ही होंगे। इसके लिए मजबूत आवाज मीडिया के मोहल्ले से भी उठानी होगी।

संदर्भ

1. व्यास, लक्ष्मीशंकर (सं); संपादक पराड़कर, पृष्ठ 120
2. आर्सिनी, फ्रांचेस्का; *हिंदी का लोकवृत्त*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 33-34
3. श्रीधर, विजयदत्त (सं); *समकालीन पत्रकारिता*, पृष्ठ संख्या 32
4. जेफ्री, रॉबिन; *भारत की समाचार पत्र क्रांति*, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 65
5. वही, पृष्ठ संख्या 66
6. तिवारी, अर्जुन; *पत्रकारिता के युग निर्माता: बाबूराव विष्णु पराड़कर*, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली (2010), पृष्ठ 70
7. श्रीधर, विजयदत्त (सं); *समकालीन पत्रकारिता*, पृष्ठ संख्या 45
8. चतुर्वेदी, जगदीश्वर; *युद्ध, ग्लोबल संस्कृति और मीडिया*, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 20
9. वही
10. जेफ्री, रॉबिन; *भारत की समाचार पत्र क्रांति*, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 07
11. वही, पृष्ठ 205
12. चतुर्वेदी, उमेश; *बाजारवाद के दौर में मीडिया*, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर (2017), पृष्ठ 30-31
13. *आंचलिक पत्रकार*, नवंबर 2020, सप्रे संग्रहालय, भोपाल, पृष्ठ संख्या 39
14. मिश्र, कृष्ण बिहारी; *पत्रकारिता: इतिहास और प्रश्न*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

प्रभात

नवनूतन प्रकाशन की गौरवशाली परंपरा

दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय (पंद्रह खंडों का सैट)

संपादक मंडल

• प्रो. देवेंद्र स्वरूप • श्री रामबहादुर राय • श्री अच्युतानंद मिश्र • श्री जवाहरलाल कौल
• श्री नंदकिशोर त्रिखा • श्री के.एन. गोविंदाचार्य • श्री ब्रजकिशोर शर्मा • डॉ. विनय सहस्रबुद्धे
• श्री अशोक टंडन • डॉ. सीतेश आलोक • श्री आलोक कुमार • श्री बलबीर पुंज
• डॉ. चमनलाल गुप्त • डॉ. भारत दहिया • श्री बनवारी • श्री हितेश शंकर • श्री प्रफुल्ल केतकर
• डॉ. रामप्रकाश शर्मा 'सरस' • श्री अतुल जैन • डॉ. राजीव रंजन गिरि • डॉ. वेद मित्र शुक्ल
• श्री राहुल देव • श्री उमेश उपाध्याय • श्री जगदीश उपासने • श्री सुशील पंडित
• श्री ज्ञानेंद्र बरतरिया • श्री भरत पंड्या • श्री मुज़फ़्फ़र हुसैन • श्री प्रभात कुमार • श्री स्वदेश शर्मा

9 अक्तूबर, 2016 को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में पं. दीनदयाल उपाध्याय जन्म शताब्दी वर्ष के अवसर पर डॉ. महेश चंद्र शर्मा द्वारा संपादित एवं प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय' के पंद्रह खंडों का लोकार्पण भारत के प्रधानमंत्री मान. श्री नरेंद्र मोदी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरकार्यवाह मान. श्री सुरेश (भय्याजी) जोशी व भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष मान. श्री अमित शाह के करकमलों द्वारा संपन्न हुआ।

''यह पंडितजी की जीवन-यात्रा, विचार-यात्रा और संकल्प-यात्रा की त्रिवेणी है। यह दिन इस त्रिवेणी का प्रसाद लेने का दिन है। पं. दीनदयाल उपाध्यायजी कहा करते थे कि अपने सुरक्षाबलों को मजबूत किए बिना कोई राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता को अक्षुण्ण नहीं रख सकता, इसलिए सुरक्षा-तंत्र मजबूत होना ही चाहिए। पंडितजी द्वारा कही गई बातें आज भी इतनी ही प्रासंगिक हैं।''

–श्री नरेंद्र मोदी, प्रधानमंत्री, भारत

''विचारों का छोटा सा बीज पं. दीनदयालजी ने बोया था, आज वह वटवृक्ष के रूप में खड़ा होकर न केवल भारत बल्कि पूरे विश्व की समस्याओं को सुलझाने की दिशा में अग्रसर है। उनका साहित्य उनकी सरलता, दूरदर्शिता और संकल्पशक्ति का परिचय कराएगा।''

–श्री अमित शाह, राष्ट्रीय अध्यक्ष, भाजपा

प्रभात प्रकाशन

ISO 9001:2008 प्रकाशक

4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002

हेल्पलाइन नं. 7827007777 ☎ 011-23257555

E-mail : prabhatbooks@gmail.com ✤ Website : www.prabhatbooks.com

एकात्म मानवदर्शन

अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान

एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002

दूरभाष : 011-23210074

इ-मेल : ekatmrdfih@gmail.com

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

'मंथन' की सदस्यता लें

एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान से प्रकाशित शोध त्रैमासिक पत्रिका 'मंथन' की सदस्यता लें। भारत–विचार–दर्शन पर केंद्रित इस पत्रिका की सदस्यता के लिए व्यक्ति/संस्थान कृपया निम्न पते पर सूचित करें और शुल्क एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के नाम से स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, एकाउंट नं. 10080533188, आईएफएससी–एसबीआईएन0006199 में जमा करें।

सदस्यता विवरण

नामः .....

पताः .....

..... राज्यः ..... पिनकोड : .....

लैंड लाइनः ..... मोबाइलः (1)..... (2).....

ई मेलः .....

जन–मार्च 2019 से पुनर्निधारित मूल्य

	भारत में	विदेश में
एक प्रति	₹ 200	US$ 9
वार्षिक	₹ 800	US$ 36
त्रिवार्षिक	₹ 2000	US$ 100
आजीवन	₹ 25,000	

प्रंबध संपादक

'मंथन' त्रैमासिक पत्रिका

एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002

दूरभाष : +91-9868550000, 011-23210074

ई–मेलः manthanmagzin@gmail.com, ekatmrdfih@gmail.com

हमारे किसान
हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता

मध्यप्रदेश शासन

श्री नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

श्री शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

किसानों के लिए मध्यप्रदेश सरकार के प्रयास

- कृषि अधोसंरचना विकास फंड में मध्यप्रदेश देश में सबसे आगे। अधोसंरचना विकास के लिए आत्मनिर्भर कृषि मिशन का गठन।
- प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि के साथ किसान कल्याण योजना में प्रदेश के किसानों को ₹ 4000 प्रति वर्ष देने का निर्णय। प्रदेश के 78 लाख पात्र किसानों को लगभग ₹ 3200 करोड़ की राशि का भुगतान होगा।
- प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना में कुल ₹ 8646 करोड़ का भुगतान।
- 16 लाख किसानों से 1 करोड़ 29 लाख मीट्रिक टन गेहूं का रिकॉर्ड उपार्जन, ₹ 27000 करोड़ से अधिक का भुगतान।
- पिछले 8 माह में 2 करोड़ 10 लाख किसानों को विभिन्न योजनाओं में ₹ 46000 करोड़ से अधिक का भुगतान।
- उर्वरकों का अग्रिम भण्डारण।
- पिछले 8 माह में लगभग ₹ 8000 करोड़ से अधिक की 7सिंचाई परियोजनाओं की स्वीकृति।
- 2002-03 में प्रदेश का कुल सिंचित रकबा मात्र 7 लाख 50 हजार हेक्टेयर था, जिसे 15 साल में बढ़ाकर 40 लाख हेक्टेयर तक कर दिया।
- 15 वर्षों में सिंचाई बजट ₹ 1005 करोड़ से बढ़ाकर ₹ 10,928 करोड़ किया गया।
- तीन वर्षों में 1000 नये "कृषि उत्पादक संगठन" का होगा गठन।
- शून्य ब्याज दर पर ऋण योजना वर्ष 2020-21 में पुनः प्रारंभ।
- मंडी नियमों में ऐतिहासिक सुधार। मंडी टैक्स 1.5% से घटाकर 0.5% किया गया।
- सहकारी बैंकों की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए ₹ 800 करोड़ जारी।

"किसान मेरे लिये भगवान हैं,
हम उनकी सेवा में
कोई कसर नहीं छोड़ेंगे।"

- शिवराज सिंह चौहान

सशक्त किसान, समृद्ध खेती, आत्मनिर्भर मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2020

Regd. R.No. 32486/78 (Hindi)

श्री नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

मध्यप्रदेश शासन

श्री शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

मुख्यमंत्री किसान कल्याण
योजनान्तर्गत

5 लाख किसानों को 100 करोड़ रुपये का लाभ वितरित

समृद्ध एवं सुरक्षित भविष्य की राह पर मध्यप्रदेश में कृषि और किसान

पिछले 8 माह में 2 करोड़ 10 लाख किसान हितग्राहियों को विभिन्न योजनाओं के तहत 46 हजार करोड़ रुपए से अधिक की राशि अंतरित।

कृषि का विकास आत्मनिर्भर मध्यप्रदेश की बुनियाद का निर्माण करने जैसा है। कृषि को लाभ का धंधा बनाने के लिए मध्यप्रदेश सरकार द्वारा हर संभव प्रयास किये जा रहे हैं। कम लागत से ज्यादा उत्पादन, उपज का सही दाम, सिंचाई सुविधाएँ, कृषि इंफ्रास्ट्रक्चर तथा खेती में आधुनिक तकनीकों का उपयोग सुनिश्चित कर किसानों के जीवन में समृद्धि और खुशहाली लाना हमारा सर्वोच्च संकल्प है।

शिवराज सिंह चौहान

आत्मनिर्भर रोडमैप के तहत

कृषि को उन्नत बनाने के लिए किए गए प्रयास

- कृषि अधोसंरचना विकास फंड में मध्यप्रदेश देश में सबसे आगे। अधोसंरचना विकास के लिए आत्मनिर्भर कृषि मिशन का गठन।
- प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि में पात्र किसानों को केंद्र सरकार द्वारा प्रतिवर्ष मिलने वाली 6 हजार रुपए की राशि पर प्रदेश सरकार द्वारा दो किस्तों में प्रतिवर्ष 4 हजार रुपए की अतिरिक्त सहायता। किसानों को अब प्रतिवर्ष 10 हजार रुपए की सहायता।
- प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि के पात्र किसानों को केंद्र सरकार द्वारा 5348 करोड़ रुपए तथा प्रदेश सरकार द्वारा 3500 करोड़ रुपए की राशि का भुगतान।
- प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के तहत वर्ष 2018-19 में 18.46 लाख किसानों को 3228 करोड़ एवं वर्ष 2019-20 में 23.59 लाख किसानों को 5418 करोड़ रुपए दावा राशि का भुगतान।
- लॉकडाउन की कठिन स्थितियों के बावजूद उपार्जन के कुल 50 दिनों में लगभग 16 लाख किसानों से 1 करोड़ 29 लाख मीट्रिक टन गेहूं का उपार्जन। मध्यप्रदेश देशभर में सबसे अधिक गेहूं उपार्जन करने वाला राज्य।
- उपार्जन कार्य में प्रदेश के किसानों के खातों में 27 हजार करोड़ रुपए से अधिक की राशि अंतरित।
- शून्य ब्याज दर पर ऋण योजना का वर्ष 2019-20 के लिए क्रियान्वयन। वर्ष 2020-21 में भी दिए जाने का निर्णय।
- उद्यानिकी फसल बीमा के लिए 100 करोड़ रुपए की राशि।
- मंडी नियमों में आवश्यक परिवर्तन। मंडी टैक्स में कमी जैसे महत्वपूर्ण निर्णय। किसानों को उनकी उपज का बेहतर दाम दिलाना सुनिश्चित।
- सहकारी बैंकों की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए 800 करोड़ रुपए जारी।
- मनरेगा अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में जल संरक्षण, वाटरशेड प्रबंधन, सिंचाई, वनीकरण, भूमि विकास एवं सुधार, आजीविका गतिविधियों के लिए शेड निर्माण, पशुपालन, मछली पालन जैसे कार्य बड़े पैमाने पर प्रारंभ। 10 लाख 26 हजार से अधिक कार्यों पर 2 हजार 7 सौ 48 करोड़ रुपए से अधिक का व्यय।
- पिछले 8 माह में लगभग 8 हजार करोड़ रुपए से अधिक की 7 सिंचाई परियोजनाओं को स्वीकृति।
- एक जिला एक उत्पाद योजना लागू। एक्सपोर्ट आधारित क्लस्टर बनाकर अंतर्राष्ट्रीय बाजार में मध्यप्रदेश के कृषकों को सशक्त बनाने के प्रयास।
- कृषि को अधिक व्यापक और लाभप्रद बनाने के लिए जैव प्रौद्योगिकी, रिमोट सेन्सिंग, जीआईएस, डाटा एनालिसिस, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और रोबोटिक्स जैसी नई तकनीकों का कृषि में उपयोग। इंफॉर्मेशन टेक्नोलॉजी तथा मोबाइल बेस्ड एप्लीकेशंस के साथ किसानों के लिए उपयोगी सूचना तंत्र के विकास को बढ़ावा।

आगामी तीन वर्षों में किए जाने वाले प्रयास

- फसलों की उत्पादकता में वृद्धि तथा विविधीकरण।
- कृषि में जोखिम प्रबंधन हेतु नवीन तथा उन्नत तकनीक के कृषि क्षेत्र में शीघ्र उपयोग को प्रोत्साहित करना।
- कृषि अधोसंरचना का विकास ताकि घरेलू एवं विदेशी उपभोक्ताओं हेतु उत्पादन एवं कुशल वितरण तंत्र को सहयोग मिले।
- प्रमाणित जैविक कृषि उत्पादन में बढ़ोत्तरी।
- एक राष्ट्र एक बाजार के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कृषि विपणन कानूनों में सुधार।
- कृषि एवं उद्यानिकी उत्पादनों का मूल्य संवर्द्धन।
- पशुपालन विकास।
- ग्रामों में डेयरी व्यवसाय का विकास।
- अतिरिक्त रोजगार हेतु मत्स्य पालन एवं रेशम पालन विकास।

समृद्ध किसान, समृद्ध मध्यप्रदेश